चिदंबरा

श्री सुमित्रानंदन पंत

राजकमल प्रकाशन
दिल्ली बम्बई इलाहाबाद पटना मद्रास

प्रथम संस्करण — १९५९

मूल्य १० रुपये

प्रकाशक
राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड
दिल्ली

मुद्रक
सम्मेलन मुद्रणालय
प्रयाग

ग्रंथ-क्रम

नाग भुवन का जन्म हुआ अब
जो अतश्चैतन्य अगोचर,
विश्व ध्वस बल से रखता जो
अत. रचना शक्ति महत्तर।
अशुभ असुर मे अतिशय शुभ वह,
विजयी होगी ज्योति तमस पर,
मर्त्यलोक को नव जीवन का
पिला स्वर्ण मजीवन निर्जर।

चरण चिह्न

'चिदबरा' को पाठको के सम्मुख रखने से पहिले उस पर एक विहगम दृष्टि डाल लेने की इच्छा होती है। इस परिदर्शन में, अपने विगत कृतित्व को, आलोचक की दृष्टि से देखने की अनधिकार चेष्टा नही करना चाहता, युग की मुख्य प्रवृत्तियो से मेरा काव्य किस प्रकार सबद्ध रहा, उस ओर, सक्षेप मे, ध्यान भर आकृष्ट कर देना पर्याप्त समझता हूँ।

'पल्लविनी' मेरी प्रथम उत्थान की रचनाओ की चयनिका थी, जिसमे 'वीणा', 'ग्रथि', 'पल्लव', 'गुजन', 'ज्योत्स्ना' तथा 'युगात' की विशिष्ट कविताएँ सकलित है। इस सचरण के कृतित्व के प्रति मेरे आलोचक प्राय कृपालु और उदार रहे हैं, सभवत, इसलिए कि इस उत्थान के कृतित्व ने छायावाद के बहिरग को सँवारने तथा उसे कोमल कात कलेवर की शोभा प्रदान करने के प्रयत्न मे हाथ बँटाया है।

छायावाद की सार्थकता, मेरी दृष्टि मे, उस युग के विशिष्ट भावनात्मक दृष्टिकोण तक ही सीमित है, जो भारतीय जागरण की चेतना का सर्वात्मवादमूलक कैशोर समारभ भर था, उस युग की कविता मे और भी अनेक प्रकार के अभिव्यजना के तत्व, तथा रूप शिल्प की विशेषताओ के व्यापक उपकरण है, जो खडी बोली के गद्य-पद्य के लिए स्थायी देन के रूप मे रहेगे। मेरी रचनाओं मे वह भावनात्मक दृष्टिकोण, अधिकतर, 'वीणा' मे तथा 'पल्लव' की कुछ रचनाओ मे मिलता है, मेरा तब का काव्य मुख्यत. प्रकृति काव्य है। 'ग्रथि', 'गुजन' और 'ज्योत्स्ना' मे छायावादी दृष्टिकोण प्राय उनके रूपविधान तक ही सीमित है, 'युगात' में विधान-शिल्प मे भी मौलिक रूपातर के चिह्न प्रकट होते है। कुछ आलोचको का कहना है कि 'युगवाणी-ग्राम्या' के बाद, 'स्वर्ण किरण', 'उत्तरा' की रचनाओं में, मै फिर छायावादी शैली मे लौट आया हूँ, जिससे म सहमत नही। छायावादी शैली में भाव और रूप अन्योन्याश्रित होकर शब्द की चित्रात्मकता मे प्रस्फुटित होते है। मेरे उत्तर काव्य में स्वत चेतना या प्रेरणा अपनी अतिशयता में रूपविधान को अतिक्रम करती रही है, जो मेरा व्यक्तिगत अनुभव है। 'स्वर्ण किरण', 'उत्तरा' तथा 'अतिमा' की शब्द-योजना मे प्रस्फुटन से अधिक परिणति है।

'चिदबरा' मेरी काव्य-चेतना के द्वितीय उत्थान की परिचायिका है, उसमे 'युगवाणी' से लेकर 'अतिमा' तक की रचनाओ का संचयन है, जिसमें 'युगवाणी',

'ग्राम्या' तथा 'स्वर्ण किरण', 'स्वर्ण धूलि', 'युग पथ' के अतर्गत 'युगातर', 'उत्तरा', 'रजत शिखर', 'शिल्पी', 'सौवर्ण' अथच 'अतिमा' की चुनी हुई कृतियो के साथ 'वाणी' की अतिम रचना 'आत्मिका' भी सम्मिलित है। 'पल्लविनी' मे, सन् '१८ से लेकर '३६ तक, मेरे उन्नीस वर्षों के कृतित्व के पदचिह्न है, और 'चिदबरा' मे, सन् '३७ से '५७ तक, प्राय बीस वर्षों की विकास श्रेणी का विस्तार। मेरी द्वितीय उत्थान की रचनाएँ, जिनमे युग की, भौतिक आध्यात्मिक दोनो न-णो की, पगध्वनि की चापे ध्वनित है, समय-समय पर, विशेष रूप से, कटु आलोचनाओ एव आक्षेपा की लक्ष्य रही है। ये आलोचनाएँ, प्रकारातर से, उस युग के साहित्यिक मूल्यो तथा रूप-शिल्प सबधी सघर्षों तथा द्वन्द्वो की निदर्शन है, और, स्वय अपने म एक मनो-रजक अध्ययन भी। आने वाली पीढियाँ निश्चयपूर्वक देख सकेगी कि उस युग का साहित्य, विशेषकर, आलोचना क्षेत्र, किस प्रकार सकीर्ण, एकागी, पक्षधर तथा वादग्रस्त रहा है और उसमे तब की राजनीतिक दलबदियो के प्रतिफल स्वरूप किस प्रकार मान्यताओ तथा कला-रुचि सबधी साहित्यिक गुटबदियाँ रही ह। भविष्य, निश्चय ही, इस युग के कृतित्व पर अधिक निष्पक्ष निर्णय दे सकेगा, काल ही वह राज-मराल हे जो नीर-क्षीर विवेक की क्षमता रखता है।

मुझे स्मरण है, 'पल्लव' की प्रमुख रचना "परिवर्तन" लिखने के बाद मेरा काव्य-बोध का क्षितिज बदलने लगा था, जिसका आभास "छायाकाल" शीर्षक 'पल्लव' की अतिम रचना मे मिलता है, जिसमे मैने अपने किशोर मन से प्रकट रूप से बिदा ली है।

स्वस्ति, जीवन के छाया काल,
मूक मानस के मुखर मराल,
स्वस्ति, मेरे कवि बाल!

. . . . .

दिव्य हो भोला बालापन,
नव्य जीवन, पर, परिवर्तन!
स्वस्ति, मेरे अनंग नूतन,
पुरातन मदन दहन!

इसके अतिरिक्त कि "बालापन", "परिवर्तन" तथा "अनग" 'पल्लव' की रचनाओं के शीर्षक है, इस प्रगीत मे अन्य बातो की ओर भी सकेत है। मैने अपने मानस को मूक कहा है, मेरा विचारो का मन तब जाग्रत् नही था, केवल भावो का मराल मुखर था। मैने अनग नूतन के रूप मे अनागत अरूप नूतन का स्वागत किया है साथ ही पुरातन—रूढि-रीतियो मे बद्ध जीवन—का मदन दहन करने की इच्छा प्रकट की है, जो युगात मे मुखरित हो सकी है। यह सपूर्ण कविता मेरी उस काल की मनोवृत्ति की सच्ची दर्पण है, उसे मैने 'पल्लव' के अत मे विशेष रूप से स्थान दिया है।

"परिवर्तन" मे अकित मानव जीवन के दुख-दैन्य के कारण-बीज अधिकतर

हमारी पुरातन रूढि-रीतियो तथा मध्ययुगीन सामाजिक व्यवस्था मे हैं, इसका बोध मुझे तब होने लगा था। 'पल्लव' सन् '२६ मे प्रकाशित हुआ है, तब से सन् '३२ तक —जब 'गुजन' प्रकाशित हुआ—मेरे मानस मथन का युग रहा है, जिसमे मुझे एक सूक्ष्म दृष्टि भी प्राप्त हुई है, जिसके प्रारभिक स्फुरण "जग के उर्वर आँगन मे" तथा "लाई हूँ फूलो का हास" आदि सन् '३० की रचनाओ मे, और व्यापक स्वरूप के दर्शन 'ज्योत्स्ना' के नवीन युग प्रभात मे मिलते है, जो सन् '३४ मे प्रकाशित हुई है। 'गुजन' मे मेरी नवीन साधना के प्रगीत है। अवश्य ही 'पल्लव' कालीन किशोर मानस तब अपना सहज सतुलन खो चुका था, जो प्रकृतिगत जीवन-सिद्ध सस्कारो तथा ससार के प्रति जन्मजात विश्वासो का बना होता है। 'गुजन' काल मे मुझे अपने प्रति पुन नवीन आत्म-विश्वास जाग्रत् करने की आवश्यकता थी। पारिवारिक अवलब छूट जाने के कारण, जिसकी चर्चा 'आत्मिका' मे है, व्यक्तिगत सुख-दु खो एव मानसिक ऊहापोहो को नवीन बोध के धरातल पर उठाने के साथ ही जग जीवन से भी नवीन रूप से सबध स्थापित करने की जीवनाकाक्षा मुझे प्रेरित करने लगी थी। "जग जीवन मे है सुख दुख" अथवा "स्थापित कर जग मे अपनापन" आदि, अनेक रचनाएँ इस इच्छा की द्योतक है। "तप रे मधुर मधुर मन" मे—जो 'गुजन' की प्रथम रचना है—मै अनुभवो की आँच मे तप कर अपने मन को नवीन रूप से नवीन विश्वासों मे ढालना चाहता हूँ। "सुदर विश्वासो से ही बनता रे सुखमय जीवन" भी इसी मानस-रचना के प्रयत्न का परिचायक है। वह जिज्ञासाओ के सघर्ष का युग था, 'गुजन' की "अप्सरा" जब पीछे 'ज्योत्स्ना' के रूप मे प्रस्फुटित होकर मेरे मन मे अवतीर्ण हुई तब तक मुझे अनेक नवीन विश्वासो, आदर्शो तथा विचारों की उपलब्धियाँ हो चुकी थी।

मानव समाज के रूपातर की भावना का उदय मेरे मन मे 'ज्योत्स्ना' काल ही मे हो गया था। 'ज्योत्स्ना' मे मन स्वर्ग से अनेक नवीन सृजन शक्तियाँ भू-मानस पर अवतरित होती है। उनका गीत इस प्रकार है

हम मनःस्वर्ग के अधिवासी,
जग जीवन के शुभ अभिलाषी,
नित विकसित, नित वर्धित अर्चित,
युग युग के सुरगण अविनाशी!
हम नामहीन, अस्फुट नवीन,
नव युग अधिनायक, उद्भासी!

इस गीत मे नित विकसित, नित वर्धित तथा हम नामहीन, अस्फुट नवीन, नवयुग अधिनायक—विशेषण विशेष ध्यान देने योग्य है। स्वप्न और कल्पना ज्योत्स्ना से कहते है "इन मानवीय भावनाओ के वस्त्र पहनाकर एव मानवीय रूप रग आकार ग्रहण कराकर हमे आपने उन्मुक्त नि सीम से किस दिव्य प्रयोजन के लिए अवतीर्ण करवाया, सम्राज्ञि।" उसी दृश्य मे वेदव्रत कहता है· "जिस

प्रकार पूर्व की प्राचीन सभ्यता अपने एकागी तत्वावलोचन के दुष्परिणामस्वरूप काल्पनिक मुक्ति के फेर मे पड कर जन समाज की ऐहिक उन्नति के लिए बाधक हुई उसी प्रकार पश्चिमी सभ्यता एकागी जडवाद के दुष्परिणामस्वरूप विनाश के दलदल मे डूब गई।" और भी, "पाश्चात्य जडवाद की मासल प्रतिमा मे पूर्व के अध्यात्म प्रकाश की आत्मा भर एव अध्यात्मवाद के अस्थि-पजर मे जड विज्ञान के रूप रग भर कर हमने नव युग की सापेक्षत परिपूर्ण मूर्ति का निर्माण किया हे। उसी पूर्ण मूर्ति के विविध अग स्वरूप पिछले युगो के अनेक वादविवाद यथोचित रूप ग्रहण कर सके है।" भौतिक आध्यात्मिक समन्वय तथा रूपातरित भू-जीवन के मूल्यो की नीव—जिन्हे मेरी आगे की रचनाओ मे अधिक पूर्ण अभिव्यक्ति मिल सकी हे—मेरे मन मे इसी काल मे पड गई थी। 'ज्योत्स्ना' की सूक्ष्म दृष्टि मेरी आँखो के सामने एक गहरी वर्णमैत्री के विराट् इन्द्रधनुष की तरह खुली थी। मेरे मन को एक सूक्ष्म आनन्द—जो आस्था भी था—स्पर्श कर चुका था। 'ज्योत्स्ना' का ज्योति-अधकार का युद्ध मेरे ही मन का युद्ध था, जिसकी चर्चा मैने 'आत्मिका' मे की हे

मानस तल में ऊपर नीचे चलता तब सघर्षण अविरत
तम पर्वत, सागर प्रकाश का मंथित रहते शिखरो में शत !

. . . .

करवट लेता भावी नव युग, गत भू मन को कर क्षत विक्षत,

. . .

मुह तक तम से भर जाता मन उपचेतन आवेशों से श्लथ !

. . .

अविदित भय से कँपता अतर स्वर्गिक सकेतो से पोषित,

. . . . .

तम प्रकाश की युग संध्या में होता मन में मौन अवतरित
'ज्योत्स्ना' का जीवन प्रभात नव, भू पर श्री सुख शोभा कल्पित !

'युगात' तक मेरी भावना मे नवीन के प्रति एक आग्रह उत्पन्न हो चुका था, जिसे "द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र" अथवा "गा, कोकिल, बरसा पावक कण"—"रच मानव के हित नूतन मन"—आदि रचनाओ मे मैने वाणी दी है। इस नवीन भाव-बोध के सम्मुख मेरा 'पल्लव' युग का कलात्मक रूप मोह ('पल्लव' की भूमिका जिसका निदर्शन है) पीछे हटने लगा। मेरा मन युग के आदोलनों, विचारो, भावों तथा मूल्यो के नवीन प्रकाश से ऐसा आदोलित रहा कि 'पल्लव' 'गुजन' की सूक्ष्म कला-रुचि को मै अपनी रचनाओ मे बहुत बाद को, परिवर्तित एव परिणत रूप मे, सभवत , 'अतिमा-वाणी' के छदो मे, पुन प्रतिष्ठित कर सका हूँ, जिनमे उसका विकास तथा परिष्कार भी हुआ है और उसमें कला वैभव के साथ भाव वैभव भी उसी अनुपात मे अनुस्यूत हो सका है, जो 'पल्लव-गुजन' काल की रचनाओ मे सभव न था।

कुछ आलोचको को 'युगवाणी' से 'उत्तरा' तक की मेरी रचनाओ मे कला-

ह्रास के चिह्न दृष्टिगोचर होते है, जिसे मै दृष्टि-भेद की विडबना कहूँगा। 'उत्तरा' को सौदर्यबोध तथा भाव ऐश्वर्य की दृष्टि से, मै अब तक की अपनी सर्वोत्कृष्ट कृति मानता हूँ। उसके अनेक गीत, जो 'चिदबरा' मे सम्मिलित है, अपने काव्यतत्व तथा भाव चैतन्य की ओर, समय आने पर, पाठको का ध्यान आकर्षित कर सकेंगे। 'उत्तरा' के पद नव मानवता के मानसिक आरोहण की सक्रिय चेतन आकाक्षा से झकृत है। चेतना की ऐसी क्रियाशीलता मेरी अन्य रचनाओ मे नही मिलती है।

स्वप्नज्वाल धरणी का अंचल,
अंधकार उर आज रहा जल!

तुम रजत वाष्प के अबर से
बरसाती शुभ्र सुनहली झर!

स्वप्नो की शोभा बरस रही
रिम झिम झिम अंबर से गोपन!

लो, आज झरोखो से उड़ कर
फिर देवदूत आते भीतर!

कैसी दी स्वर्ग विभा उडेल
तुमने भू मानस में मोहन! इत्यादि।

ऐसे अनेक उदाहरण 'उत्तरा' से दिये जा सकते है जो युग मानव के भीतर नवीन जीवन आकाक्षा के उदय की सूचना देते है, जिस नवीन भावबोध की पृष्ठ-भूमि (मनोभूमि) के कारण ही आज बहिर्जीवन का दैन्य मनुष्य को इतना कुत्सित तथा कुरूप प्रतीत होने लगा है। 'उत्तरा' मे मैंने पृथ्वी पर स्वर्गिक शिखरो का वैभव लुटाने का दावा किया है

मै स्वर्गिक शिखरो का वैभव,
हूँ लुटा रहा जन धरणी पर!

देवो को पहना रहा पुनः
मै स्वप्न-मास के मर्त्य वसन!

'ग्राम्या' मे भी, मेरी दृष्टि मे, ग्राम जीवन के भाव क्षेत्र के अनुरूप कला शिल्प वर्तमान है। 'ग्राम्या' की भाषा गाँवो के वातावरण की उपज है

गंजी को मार गया पाला
अरहर के फूलो को झुलसा,

हाँका करती दिन भर बदर
अब मालिन की लडकी तुलसा!

बैठी छाती की हड्डी अब
झुकी पीठ कमठा सी टेढी,
पिचका पेट, गढे कधो पर,
फटी बिवाई से है एडी!

खैर, पैर की जूती, जोरू
एक न सही, दूसरी आती,
पर जवान लडके की सुध कर
साँप लोटते, फटती छाती। इत्यादि।

'ग्राम्या' के भाव पक्ष मे—जिसे मैने कोरी भावुकता से बचा कर, सहानुभूति पूर्वक, मान्यताओ के प्रकाश मे सँवारा है—लोक जीवन के कलुष पक को धोने के लिए, नए मानव की अतर-पुकार है। 'युगवाणी' और 'स्वर्ण धूलि' मे भाव ऐश्वर्य की तुलना मे, कलापक्ष, सभवत गौण हो गया है, जो मेरी दृष्टि मे स्वाभाविक है। इनमे मेरी कल्पना ने अनुद्घाटित नवीन भूमियो तथा क्षितिजो मे प्रवेश किया है। वह केवल मेरे भाव प्रवण हृदय का आवेग ज्वार था, जो विगत युगो की भौतिक, सामाजिक, नैतिक, आध्यात्मिक मान्यताओ से ऊब-खीझ कर, अपनी अबाध जिज्ञासा के प्रवाह मे, अध-रूढियो के बधनों तथा निषेध-वर्जनो के अवरोधो को लाँघता हुआ, पार्थिव-अपार्थिव नवीन चैतन्य के धरातलों तथा शिखरो की ओर बढता एव आरोहण करता गया। वास्तव मे वह आरोहण मेरे लिए स्वय एक कलात्मक अनुभव एवं सास्कृतिक अनुष्ठान रहा है। कविता और कला-शिल्प मेरी दृष्टि मे फूल और उसके रूप मार्दव की तरह अभिन्न है। रूप-मार्दव ?—हाँ, किन्तु रंग गध मधु फल ही फूल का वास्तविक दान है। अन्न भरी सुनहली बाल, नाल पर खडी रहने के बदले, यदि अपने ऐश्वर्य भार से झुक जाती है, तो उसे विधाता की कला की परिणति ही समझना चाहिए। कुछ ऐसा ही कलात्मक सबध मेरे मन का, 'युगवाणी', 'स्वर्ण किरण' तथा 'स्वर्ण धूलि' की रचनाओं से रहा है। 'स्वर्ण धूलि' मे आर्षवाणी के अतर्गत वैदिक साहित्य के अध्ययन से प्रभावित जो मेरी रचनाएँ है, वे अक्षरश वैदिक छदों के अनुवाद नही है। मेरे भाव-बोध ने उन मन्त्रो को जिस प्रकार ग्रहण किया है वही उनका मुख्य तत्व और स्वर है। कही-कही तो मैंने उन मंत्रो की व्याख्या कर दी है।

'पल्लव' के सौन्दर्यबोध के क्षितिज से बाहर निकलते-निकलते जब मै अपने तथा बाहर के जगत के प्रति प्रबुद्ध हुआ तो मुझे जीवन की भीतरी बाहरी परिस्थितियों का बोध पीडित करने लगा। 'पल्लव' काल मे मैं परमहंस देव के वचनामृत

तथा स्वामी विवेकानद और रामतीर्थ के विचारो के सपर्क मे आ गया था। अपने देश मे स्वतत्रता-युद्ध के स्वरूप तथा गाधीजी के व्यक्तित्व ने मेरा ध्यान भारत के मानस-महत्व तथा जीवन-दैन्य की ओर आकृष्ट किया। सन् '२१ के असहयोग मे मै अपने छात्र-जीवन से बिदा ले चुका था। गाधीजी का तप पूत, कर्मठ व्यक्तित्व, जो धीरे-धीरे, गाधीवाद का रूप ग्रहण करने लगा था, मन को अधिकाधिक आकर्षित करता था। 'गुजन' के आत्म सस्कार के स्वर मे, अप्रत्यक्ष रूप से, गाधीजी का भी प्रभाव हो सकता है। उनके सास्कृतिक चैतन्य को, मैने, उस युग की अनेकानेक छोटी बडी रचनाओ मे, श्रद्धाजलि अर्पित की है।

देश के जीवन-दर्शन से बाहर मेरा ध्यान सर्वाधिक तब जिन वस्तुओ की ओर आकृष्ट हुआ था वे थे मार्क्सवाद तथा रूसी क्राति। गाधीवाद के साथ तब प्राय समाजवाद–साम्यवाद के विचारो, आदर्शों तथा कार्यप्रणालियो की प्रतिध्वनियाँ कानो मे पडती थी। मेरे किशोर सखा पूरन (जो पी० सी० जोशी के नाम से प्रसिद्ध है) तब प्रयाग विश्वविद्यालय मे इतिहास के छात्र थे। उनसे प्राय ही नये राजनीतिक आर्थिक सिद्धातो की चर्चा और उन पर वाद-विवाद होता था। उनका व्यक्तित्व एव मानस, उन तीन चार वर्षों के भीतर, मेरी आँखो के सामने ही, धीरे-धीरे, डलिहया के भरे-पुरे फूल की तरह, पूर्ण साम्यवादी के रूप मे प्रस्फुटित हुआ था। ऐतिहासिक चेतना से प्रभावित होने के कारण उनको जीवन के समस्त क्रिया-कलापो, अभावो तथा दैन्यो का निदान और समाधान बाह्य जगत मे ही दिखाई देता था। उनकी मानसिक परिणति ने मार्क्सवाद तथा साम्यवाद के अनेक दुर्बल-सशक्त पक्षो को मेरी आँखों के सामने अपने आप खोल दिया और उनकी निष्कपट मैत्री के स्पर्श ने उन उग्र सिद्धातो को ममता तथा सहानुभूति की दृष्टि से देखना सिखला दिया। मार्क्सवाद का जटिल आर्थिक पक्ष मुझे मेरे भाई स्व० देवीदत्त पत ने समझाया था। वह तब प्रयाग विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र में एम० ए० कर चुके थे और कुशाग्र बुद्धि होने के कारण अपने विषय के मर्मज्ञ थे। अपने मित्र तथा भाई के सपर्क मे आकर मै मार्क्सवाद के गहन कातार को, अपने ढीठ कल्पना पखो से, साहसपूर्वक, अत्यन्त उत्साह तथा हर्षानुभूति के साथ पार कर सका, (तब, जब हिन्दी मे, संभवत, इस प्रकार की कविता का जन्म भी नही हुआ था, जो पीछे प्रगतिशील कविता कहलाई) और कालाकाँकर के गाँवो का वातावरण पाकर 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' की रचनाओ मे अपनी उस नवीन जीवन-दृष्टि की प्रक्रियाओ को उन्मुक्त रूप से वाणी दे सका। 'युगवाणी' की रचनाएँ सन् '३७-'३८ मे लिखी गई थी। उनमें से अधिकाश सन् '३८ मे 'रूपाभ' के अको मे प्रकाशित हो चुकी थी। 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' मे ('ग्राम्या' मे सन् '३९-'४० की रचनाएँ है) अनेक नवीन सामाजिक, सास्कृतिक तथा आध्यात्मिक दृष्टिकोण मेरे मन मे उदय हुए है। आज भी, जब नव मानवतावाद की दृष्टि से, मै विश्व जीवन के बाह्य पक्ष की समस्याओ पर विचार करता हूँ तो मार्क्सवाद की उपयोगिता मुझे स्वय-सिद्ध प्रतीत होती है।

आज की राजनीतिक दलबदी मे खोये हुए, पूर्वग्रह पीडित आलोचको को जब छायावाद त्रयी या चतुष्टय मे, केवल मै ही अप्रगतिशील लगता हूँ और वे सब प्रगतिशील लगते है, जो, सभवत , तब युग-दायित्व के प्रति पूर्णत प्रबुद्ध भी न थे, तो मै उनका प्रतिवाद नही करता। मानव-जीवन के व्यापक सत्यो को, चाहे वे आर्थिक हो या आध्यात्मिक, पूर्वग्रह और विद्वेष की टेढी-मेढी सँकरी गलियो मे भटकाकर, झुठलाया नही जा सकता, समय पर वे लोक मानस मे अपना अधिकार अवश्य स्थापित करेगे। सभवत , जिस सकीर्ण अर्थ मे अब प्रगतिवाद का प्रयोग किया जाता है, उस अर्थ मे मै प्रगतिवादी हूँ भी नही।

अपने अपने 'हीरो' (नायक) के उपासक, ये पक्षधर आलोचक जब 'पल्लव' की कला का समर्थन करते है, तो मै जानता हूँ, वे पाठको का ध्यान मेरी उन कृतियो से विरत करने का बहाना खोजते हैं जिनमें उन्हे अपनी दलगत सकीर्णता तथा एकागिता का समर्थन नही मिलता। काव्य-गुण तथा लोक-मागल्य की दृष्टि से मेरी उत्तर कृतियो के चैतन्य तथा कला-बोध के सामने 'पल्लव' की कला अल्प-प्राण बालिका के समान तुतलाती प्रतीत होती है। वे पूछते हैं, प्रकृति तथा इद्र-धनुष को देखकर मेरे मन मे अब भी वैसी ही विस्मयकारी कैशोर प्रतिक्रियाएँ क्यो नही होती, जैसी 'पल्लव' काल मे होती थी। ऐसे अबोध प्रश्नो का क्या उत्तर हो सकता है ?

कला के कोमल फेन का मूल्य मानवीय सवेदना के स्वस्थ सौन्दर्य से अधिक है, इसे मेरा मन नही मानता। फिर कला के अनेक रूप है, जिनसे वह मर्म को स्पर्श करती है। 'युगवाणी' की अनेक पक्तियाँ 'पल्लव' की मासल कल्पना एव अलकरणो से रहित होने पर भी अपनी कलात्मक क्षमता रखती है। "आज असुन्दर लगते सुदर" इस आधे चरण से आज के युग जीवन की विपन्न रूप-रेखा आँखो के सामने आ जाती है, क्या यह कला की शक्ति नही ? "बन गए कलात्मक भाव, जगत के रूप नाम" मे समस्त मानव भविष्य के निर्माण का चित्र खिच जाता है। "ककाल जाल जग मे फैले फिर नवल रुधिर, पल्लव लाली" का गतिशील स्वस्थ सौन्दर्य छिपा नही है। वनस्पति शास्त्री कहते है, जब वन मे वसत आता है तो वनस्पति जगत् के जीवन मे इतनी अधिक गति का सचार होता है कि वन के जीव-जतुओ का जीवन भी अपनी भागदौड मे उससे होड नही ले पाता। उपर्युक्त चरण मे भी उसी वेग से नवजीवन का रुधिर दौडता दिखाई देता है। "इस धरती के रोम रोम मे भरी सहज सुदरता"—'पल्लव' में ऐसी व्यापक अनुभूति की सरल कलात्मक अभिव्यक्ति कही नही मिलती। ऐसी सैकडो पक्तियाँ पल्लवोत्तर काव्य ग्रथो से चुनी जा सकती है। मैने अधिकाश उदाहरण 'युगवाणी' से इसलिए दिए हैं कि उसमे कला का एकात अभाव बताया जाता है। 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' की कलात्मक अभिव्यक्ति वस्तुपरक है। 'युगवाणी' के तीसरे सस्करण की भूमिका मे मैने इस पर प्रकाश डाला है। वह हमारे युग की अदम्य कलात्मक न्याय की पुकार थी जिसने मुझे 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' लिखने को बाध्य किया। 'स्वर्ण किरण' और बाद की रचनाओ का कला पक्ष भी भाव सौन्दर्य मडित,

अंतर्दीप्त एवं मागल्य शक्ति सपन्न है, यह दूसरी बात है कि उनमे राजनीतिक दल-बंदी की रिक्त पुकार तथा रुक्ष प्रचार न हो।

वास्तव में, हमारे साहित्य में जीवन-यथार्थ की धारणा इतनी एकागी, खोखली तथा रुग्ण हो गई है कि हमे शोषित, जर्जर और लघु मानव के रुग्ण चित्रण मे ही कलात्मक परितृप्ति मिलती है। हम स्वस्थ मानवता की दिशा की ओर दृष्टिपात नही करना चाहते, क्योकि वहाँ हम अपनी मध्यवर्गीय कुठाओ से ग्रस्त, आत्मपराजित, क्षुद्र, सकीर्ण, द्वेषदग्ध, काममूढ जीवन के लिए सहानुभूति नही जगा पाते, जिसे युग जीवन तथा कला का परिधान पहना कर दूसरो के करुणा कण प्राप्त करने के लिए हम आत्म विस्तार का माध्यम बनाना चाहते है,–जो नव लेखन का दृष्टिकोण है, जो सद्य और क्षणिक की अँगुली पकडे हुए है। –अथवा, हम राजनीतिक आवेगो एव शक्तिमद की आकाक्षा से प्रेरित होकर आलोचना के नाम मे मतवाद तथा गाली-गलौज का अधड उठाकर उसमे साहित्यिक मूल्यो को, आमूल, वृक्षो की तरह, उखाड फेकना चाहते है, जो हमारा प्रगतिशील दृष्टिकोण रहा है। दोनो ही मे धन यथार्थ की धारणा का अभाव है–ऐसा धन या भाव यथार्थ जो आज के विश्वव्यापी ह्रास से मानव जीवन को ऊपर उठाकर उसे शाति, प्रकाश तथा कल्याण के भुवनो की ओर ले जा सके।

प्रेमचद जी का यथार्थ राजनीतिक दाँव-पेचो का यथार्थ न होकर मानवीय तथा साहित्यिक यथार्थ था। वह लघु मानव की कुठाओ से भग्न, तुच्छ, आत्म-पीडित यथार्थ नही, जिसमे मनुष्य परिस्थितियो की निर्ममता को अपनी रीढ तोडने देता है और अपनी आगे न बढ सकने की लुजपुज क्षोभ भरी वास्तविकता का चित्रण कर आत्म-तृप्ति का अनुभव करता है। प्रेमचद का यथार्थ सामाजिक जीवन के साथ सघर्ष करता हुआ, विकासशील, आशा-क्षमतापूर्ण, मनुष्य को आगे बढाने वाला, व्यापक यथार्थ था, जिसमे लोक मागल्य के नव अकुरित बीज मिलते हैं।

यदि प्रगतिशील विचारको का ध्येय साहित्यिक नेतागीरी तथा यान्त्रिक तार्किक मूल्यो का प्रचार करना रहा है, तो नव लेखन का ध्येय, अधिकतर, रूप-विधान का मोह तथा रीढहीन, आत्म सुख-दुख के कर्दम मे रेगने वाले लघु यथार्थ के कला-फेन की सृष्टि करना, –जिसमे भाव की समस्त शक्ति रूप की भूलभुलैयाँ मे खो जाती है। लोक जीवन एव विश्वजीवन प्रवाह की मुख्य मान्यताओ का परित्याग कर और व्यापक मानवीय मूल्यो की ओर आँख मूँदकर, अधिकाश नव लेखको के गौण, अतिवैयक्तिक, भावोच्छ्वासपरक तथा कुछ अशो मे प्रतिक्रियात्मक मान्यताओ को अपनाया है। उनमे से अनेक प्रतिभा सपन्न लेखक जनतत्रवादी देशो से विभीत पश्चिम के कोमल अस्थि, अल्प सख्यक बौद्धिको तथा अस्तित्ववादियो से प्रभावित हैं, जो समतल निराशा एव विषाद के कारण, महत् के प्रति सदिग्ध तथा क्षणिक एव अल्प के प्रति सुखवादियो की तरह मुग्ध होकर, सक्रातिकालीन मध्य-वर्गीय तुच्छ दुख-दर्द के प्रति आस्था ममता रखने वाली अहता, कुठा एव आत्म रति भरी वास्तविकता को कला के ललित फेन मे लपेट कर, कला को कला के लिए

सँवार कर, उसे साहित्य के रूप मे प्रस्तुत कर रहे है। आज की नयी कविता अपनी प्रयोगवादी सीमाओ को अतिक्रम करने के प्रयत्न मे, नवीन मानव मूल्यो की खोज मे, सामाजिक चेतना की वास्तविकता के घनत्व से हीन एक भयानक शून्य मे भटक गई है और उपचेतन व्यक्तित्व के मोहक गर्त मे फँस कर ऐसे अति वैयक्तिक छायाभासो तथा व्यक्तिगत रुचियो के भावना मूढ भेदोपभेदो, अतिवास्तविक प्रतीको तथा शशक शृग बिम्बो को जन्म दे रही है जिनका मानवता तथा लोक-मागल्य से दूर का भी सबध नही,—मागल्य, जो बहुमुखी मानव सत्य की एक मात्र कसौटी है। इस प्रकार वह एक कृत्रिम भाविक अलकरण मात्र बनती जा रही है।

प्रयोगवादी कविता की भविष्य मे क्या सभावनाएँ है यह अभी नही कहा जा सकता। अभी तक तो उसमे असपृक्त खडित बिम्बो तथा भग्न प्रतिमाओ के खँड-हरो में इधर उधर क्षण-सौन्दर्य की झाकी के साथ चकाचौध और कृत्रिम चमत्कार ही अधिक मिलता है। प्रकाश जो अतस्तल एव अतर्गठन है, उसके बीज तथा अकुर अभी नही दिखाई पडते है। किन्तु भविष्य की कविता अवश्य ही मानवता की सर्व-श्रेष्ठ सिद्धि होगी, जिसमे सौन्दर्य, प्रेम, प्रकाश और आनद अपने क्षितिजो के पार के ऐश्वर्य को रूप-बोध के सूक्ष्म सूत्रो मे गूँथ सकेगे, इसमे सन्देह नही। अपनी अनेक सीमाओ के रहते हुए भी जो भविष्य मे मिटाई जा सकती है,—हिन्दी काव्य के राजपथ पर, अभी तक तो छायावाद ही, नवीन सौन्दर्य मजरियो का मुकुट लगाए, नवीन प्रकाश दिशा की खोज मे, मद धीर गति से चरण बढा रहा है, ऐसा मेरा अनु-मान है।

नए लेखक-आलोचक, आत्म विज्ञापन की धुन मे, छायावाद का परिचय अपने पाठको को उसी प्रकार देते हैं जिस प्रकार कोई रामायण मे तुलसी की नारीत्व के प्रति भावना को "ढोल गँवार शूद्र पशु नारी" का उदाहरण देकर उपस्थित करे। छायावाद तथा काव्य मूल्यो के सबध मे दोनो दलो के लेखको के जो अधिकाश आलोचनात्मक ग्रथ तथा लेख विगत वर्षों मे निकले है, वे इस बात के प्रमाण है। मै यह सब लिखकर सामान्य हिन्दी पाठको के लिए—जो लेखक वर्ग मे नही है—इधर की काव्य मान्यताओ तथा साहित्यिक आलोचनाओ की पृष्ठभूमि स्पष्ट किए दे रहा हूँ, जिससे उन्हे युग साहित्य को समझने मे सहायता मिले।

'पल्लव' काल तक मेरा कवि आत्म प्रबुद्ध नही हुआ था, उसके बाद ही वह अपने बाहर भीतर के जीवन प्रवाह के प्रति सचेत हो सका, और अपने बाहर के सामाजिक जीवन की सीमाओ से क्षुब्ध होकर उसने 'युगात', 'युगवाणी' तथा 'ग्राम्या' मे, पुरानी दुनिया की अध रूढि रीति परपराओ तथा वैज्ञानिक युग से पहिले की संकीर्ण आर्थिक राजनीतिक प्रणालियो तथा सामाजिक परिस्थितियों में पथराई हुई बाह्य जीवन की चेतना पर निर्मम आघात किए और अपने युग की सभावनाओ से नई दृष्टि प्राप्त कर नवीन परिस्थितियो के विकसित सत्य को वाणी देने का प्रयत्न किया। साथ ही, विगत युगों के नैतिक धार्मिक विचारो एव आदर्शों की सीमाओ मे परिचित होने

पर मानव जीवन तथा मन को व्यापक धरातल पर उठाने के अभिप्राय से युग का ध्यान नवीन चैतन्य तथा अध्यात्म के शिखरो की ओर आकृष्ट किया और शतियो के पुजीभूत निष्क्रिय मानस अधकार को नवीन स्वप्नो की सुनहली लपटो मे जगाने की चेष्टा की। इसमे मेरी निर्मम सीमाएँ परिलक्षित होती हो, पर ये वे सीमाएँ नही, जिनकी कि पक्षधर आलोचक घोषणा करते है।

मेरा भावप्रवण हृदय बचपन से ही सौन्दर्य के प्रेरणाप्रद स्पर्शों के प्रति सवेदनशील रहा है, वह सौन्दर्य चाहे नैसर्गिक हो या सामाजिक, मानसिक हो या आध्यात्मिक। मै हिमालय तथा कूर्माचल के प्राकृतिक ऐश्वर्य से उसी प्रकार किशोरावस्था मे प्रभावित हुआ हूँ, जिस प्रकार युवावस्था मे गाधी जी तथा मार्क्स से अथवा मध्य वयस मे श्री अरविद के दर्शन तथा व्यक्तित्व से। हिमालय पर मेरी सबसे बडी रचना मद्रास मे लिखी गई, जहाँ विशाल समुद्र के तट पर हिमालय के विराट् सौन्दर्य की शुभ्र स्मृति मनश्चक्षुओ के सामने निखर उठी और किशोर जीवन की अनेक मधुर स्मृतियो एव अनुभवो मे पुजीभूत प्रवासी मन मे "हिमाद्रि" तथा "हिमाद्रि और समुद्र" शीर्षक रचनाएँ मूर्त हो उठी। युवावस्था के आरभ मे रवीद्रनाथ तथा अग्रेजी कवियो ने भी मेरी कला-रुचि का सस्कार किया है, किन्तु कला-रुचि एव सौन्दर्यबोध से भी अधिक मूल्यवान जो इस युग के लिए नवीन भाव-चैतन्य, नवीन सामाजिकता तथा नवीन मानवता का बोध है वह मुझमे गाधी, मार्क्स तथा श्री अरविद के सपर्क से विकसित हुआ। निस्सदेह, मेरे भीतर अपने विशिष्ट सस्कार रहे हैं। प्रबुद्ध होने पर अपने युग तथा समाज से मुझे घोर असतोष रहा है। धरती के जीवन को नवीन मानवीय ऐश्वर्य एव सौन्दर्य से मडित देखने की दुर्निवार आकाक्षा मुझमे, अधिक कल्पनाशील होने के कारण, युवावस्था ही मे उत्पन्न हो गई थी। साथ ही, मेरे भीतर अनेक प्रकार की बौद्धिक, भाविक सूक्ष्म प्रक्रियाएँ भी निरतर चलती रही है, जिनसे, ग्रहणशीलता की वृद्धि के अतिरिक्त, मुझे अनेक उपलब्धियाँ भी होती रही हैं। मैंने बाहर के प्रभावो को सदैव अपने ही अतर के प्रकाश मे ग्रहण किया है, और वे प्रभाव मेरे भीतर प्रवेश कर नवीन दृष्टिकोणो तथा उपकरणो से मडित होकर निखरे है, जिन्हे मै समय समय पर अपनी रचनाओ मे वाणी दे सका हूँ। जब मानव-मन की सूक्ष्म अनुभूतियो के प्रति, आधुनिकता का दावा रखने वाले, आज के कोरे बौद्धिक सदेह प्रकट करते है, तो यह समझने मे देर नही लगती कि उनकी बौद्धिकता तथा आधुनिकता कितने गहरे पानी मे है। 'चिदबरा' की पृथु-आकृति मे मेरी भौतिक, सामाजिक, मानसिक, आध्यात्मिक सचरणो से प्रेरित कृतियो को एक स्थान पर एकत्रित देखकर पाठको को उनके भीतर व्याप्त एकता के सूत्रो को समझने मे अधिक सहायता मिल सकेगी। इनमे, मैंने अपनी सीमाओ के भीतर, अपने युग के बहिरतर के जीवन तथा चैतन्य को, नवीन मानवता की कल्पना से मडित कर, वाणी देने का प्रयत्न किया है। मेरी दृष्टि मे 'युगवाणी' से लेकर 'वाणी' तक मेरी काव्य-चेतना का एक ही सचरण है, जिसके भौतिक और आध्यात्मिक चरणो की सार्थकता, द्विपद मानव की प्रगति के लिए सदैव ही, अनिवार्य रूप से रहेगी।

'युगवाणी' और 'ग्राम्या' मे भी मेरा दृष्टिकोण मानव जीवन के सत्य के प्रति समन्वयात्मक ही रहा है, जैसा कि मै 'आधुनिक कवि भाग दो' की भूमिका मे कह चुका हूँ। मैने मानव जीवन के विकास के लिए भौतिक आध्यात्मिक दोनो मूल्यों की अनिवार्य आवश्यकता बतलाई है

भूतवाद उस धरा स्वर्ग के लिए मात्र सोपान,
जहाँ आत्मदर्शन अनादि से समासीन अम्लान!

अतर्मुख अद्वैत पडा था युग युग से निष्क्रिय, निष्प्राण,
जग मे उसे प्रतिष्ठित करने दिया साम्य ने वस्तु विधान!

मनुष्यत्व का तत्व सिखाता निश्चय हमको गांधीवाद,
सामूहिक जीवन विकास की साम्य योजना है अविवाद!

इसी प्रकार 'ग्राम्या' मे मने युग-सघर्ष को राजनीति-अर्थनीति तक ही सीमित नही रखा है

राजनीति का प्रश्न नही रे आज जगत् के सम्मुख,
आज वृहत् सास्कृतिक समस्या जग के निकट उपस्थित!

नव प्रकाश मे तमस युगो का होगा शनैः निमज्जित!

मध्ययुगीन नैतिकता के प्रति मेरे मन की प्रतिक्रिया 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' मे इस प्रकार व्यक्त हुई है

स्वर्ण पींजरे मे बदी है मानव आत्मा निश्चित!

. .

विविध जाति वर्गों धर्मों को होना सहज समन्वित,
मध्ययुगो की नैतिकता को मानवता में विकसित!

यत्रो के लिए 'ग्राम्या' मे मने कहा है

जड नही यंत्र, वे भावरूप, सस्कृति द्योतक!

. . .

दार्शनिक सत्य यह नही यत्र जड, मानव कृत,
वे है अमूर्त, जीवन विकास की स्थिति निश्चित!

ऐसे और भी बीसियों उद्धरण दिए जा सकते हैं जिनमे मानव जीवन की समस्याओ एव उनके समाधान के रूप में मेरा निश्चित दृष्टिकोण प्रकट होता है, जो आगे चलकर 'स्वर्ण किरण' से 'वाणी' तक की रचनाओ मे विकसित होकर अधिक

पूर्ण अभिव्यक्ति पा सका है। अपनी उत्तरकालीन रचनाओ मे मैंने इस समन्वयात्मक दृष्टिकोण को अतिक्रम कर और भी अधिक व्यापक क्षितिजो का उद्घाटन किया है। भूतवाद अथवा अध्यात्मवाद दोनो ही मुझे अपने में अधूरे लगे हैं। कोरे भूतवादियो से मैंने 'युगवाणी' मे कहा है

हाड़ मास का आज बनाओगे तुम मनुज समाज ?
हाथ पाँव संगठित चलाएँगे जग जीवन काज ?
दया द्रवित हो गए देख दारिद्रय असंख्य तनो का ?
अब दुहरा दारिद्रय उन्हें दोगे असहाय मनो का ?

'उत्तरा' मे मने भूतवाद तथा अध्यात्मवाद के एकागी समर्थको की भर्त्सना की है

तुम भाप उन्हें कहते हँसकर, वे तुमको मिट्टी का ढेला
वे उड़ सकते, तुम अड़ सकते, जीवन तुम दोनो का मेला !
फिर भी यदि जड़ता तुमको प्रिय, उनको चेतनता—दुख नितात,
है सत्य एक,—जो जड़ चेतन, क्षर अक्षर, परम, अनंत शांत।

आध्यात्मिकता के पैर मैंने सदैव पृथ्वी पर स्थिर रखे है। मानवता के स्वर्ग को मैंने भौतिकता के ही हृदय कमल मे स्थापित किया है। आध्यात्मिकता के निष्क्रिय, निषेधात्मक तथा ऋण-पक्ष की अवहेलना कर मैंने उसे भू-जीवन विकास तथा जनमगल का साधन बनाने का प्रयत्न किया है, जिसका सर्वप्रथम उदाहरण 'ज्योत्स्ना' का रूपक है। 'स्वर्ण किरण' मे "द्वा सुपर्णा" शीर्षक रचना मे मैंने वैदिक ऋषि के द्रष्टा तथा भोक्तारूपी पक्षियो (जीवो) को पृथक् रूप मे स्वीकार न कर ऋषि से प्रश्न किया है

कहीं नहीं क्या पक्षी ? जो चखता जीवन फल
विश्व वृक्ष पर वास, देखता भी है निश्चल ?
परम अहम् औ' द्रष्टा भोक्ता जिसमें सँग सँग ?

और इसका उत्तर भी दिया है

ऐसा पक्षी जिसमें हो संपूर्ण सतुलन
मानव बन सकता है निर्मित कर तरु जीवन।

मैंने कहा है शाति, आनद अथवा ईश्वर-प्राप्ति के लिए भू-जीवन का त्याग करने की आवश्यकता नही, उसके लिए नवीन रूप से लोक-जीवन निर्माण करने की आवश्यकता है। 'स्वर्णकिरण' मे अपनी 'इंद्रधनुष' तथा 'स्वर्णोदय' नामक रचनाओ मे मैंने जीवन मूल्यो पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डालने की चेष्टा की है

हमें विश्व संस्कृति पृथ्वी पर करनी आज प्रतिष्ठित,
मनुष्यत्व के नव द्रव्यों से मानव उर कर निर्मित।

. .. ..

नव मूल्यों से हो जो कल्पित पुनः लोक संस्कृति पर ज्योतित,
हो कृत काम नियति मानव की, स्वर्ग धरा पर विचरे जीवित।

भू रचना का भूतिपाद युग हुआ विश्व इतिहास में उदित,
सहिष्णुता, सद्भाव, शांति से हो गत संस्कृति धर्म समन्वित!
वृथा पूर्व पश्चिम का दिग् भ्रम मानवता को करे न खंडित,
बहिर्नयन विज्ञान हो महत् अंतर्दृष्टि ज्ञान से योजित।

.

एक निखिल धरणी का जीवन एक मनुजता का संघर्षण,
अर्थ ज्ञान संग्रह भव पथ का विश्व क्षेम का करे उन्नयन!

मानवता के भविष्य पर अपनी अमिट आस्था प्रकट करते हुए मैंने कहा है

सस्मित होगा धरती का मुख, जीवन के गृह प्रांगण शोभन,
जगती की कुत्सित कुरूपता सुषमित होगी, कुसुमित दिशि क्षण!
विस्तृत होगा जन मन का पथ, शेष जठर का कटु संघर्षण,
संस्कृति के सोपान पर अमर सतत बढ़ेंगे मनुज के चरण।

इस प्रकार पाठक देखेंगे कि मैंने भौतिक आध्यात्मिक, दोनों दर्शनों से जीवनोपयोगी तत्वों को लेकर, जड़ चेतन संबंधी एकांगी दृष्टिकोण का परित्याग कर व्यापक सक्रिय सामंजस्य के धरातल पर, नवीन लोक-जीवन के रूप में, भरे-पूरे मनुष्यत्व अथवा मानवता का निर्माण करने का प्रयत्न किया है, जो इस युग की सर्वोपरि आवश्यक समस्या है। 'वाणी' में, जिसे आप मंच-काव्य या प्रवचन-काव्य भी कह सकते हैं, मेरा मानव-भविष्य का दर्शन अधिक महत्वपूर्ण स्तर पर "आत्मिका" में अवतीर्ण हुआ है

सत्य तथ्य विज्ञान ज्ञान, दो पक्ष एक ब्रह्म के पोषक नित,
लोकश्रेय, जीवन उद्भव हित रहें विषम सम चरण समन्वित!

..

वैयक्तिक सामूहिक गति के दुस्तर द्वन्द्वों में जग खंडित,
ओ अणुमृत जन, भीतर देखो, समाधान भीतर, यह निश्चित!

.. .

देश खंड से भू मानव का परिचय देने का क्या क्षण यह,
मानवता में देश जाति हों लीन, नए युग का सत्याग्रह।

आज विशेषीकरण समाजीकरण साथ चल रहे धरा पर
महत् धैर्य से गढ़ने सबको मन के मंदिर, जीवन के घर !

मनुज धरा को छोड़ कहीं भी स्वर्ग नहीं संभव, यह निश्चित !
. . .

ईश्वर से इद्रिय जीवन तक एक सचरण रे भू पावन !

ऐसे अनेक उदाहरण 'वाणी' से प्रस्तुत किए जा सकते है।

सामाजिक सास्कृतिक मान्यताओ का विकास इस युग मे बहिरतर सयोजित मानवता की रचना के रूप में होना चाहिए, जिस पर अनेक दृष्टिकोणो से प्रकाश डालने की आवश्यकता है, और जिसका सर्वाधिक दायित्व हमारी नवीन पीढियो की प्रतिभाओ के कधो पर है। कवीन्द्र रवीन्द्र के युग से हमारे युग की जीवन मान्यताओ का सघर्ष अत्यधिक प्रबल तथा जटिल हो गया है। 'वाणी' मे मैने कवीन्द्र रवीन्द्र शीर्षक रचना मे नवीन युग-बोध की समस्या को प्रस्तुत किया है

मग्न अचेतन कर्दम मे भू जीवन शतदल,
उसे उठा, कर सके कलुष का मुख तुम उज्वल ?

विश्व कवे, तुम जिस मानवता के प्रतिनिधि बन
आए, वह खो चुकी हाय, मानुष्य परम धन !

क्या सोचा था ? नरक स्वर्ग ही का लघु उपक्रम,
जागेगा सोया प्रकाश, धरती का जो तम ?

महाकवे, युग पलको पर झूला नव सावन,
दिग् विराट् नव मनुष्यत्व का दिव्य स्वप्न बन।

कवि या द्रष्टा, ततुवाय की तरह, अपने ही भीतर से किसी काल्पनिक सत्य का जाल नही बुनता। उसकी अतर्दृष्टि काल के अभ्यतर या विश्व-मानस मे चल रही सूक्ष्म शक्तियो की क्रीडा के प्रति सजग रहती है, वह उसी सत्य को अपने अनुभव की वाणी मे गूँथ कर लोक-मानस के सम्मुख रख देता है।

युग-सघर्ष के अनेक रूपो को मैने अपने काव्य रूपको द्वारा भी प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। "फूलो के देश" मे मैने सस्कृति और विज्ञान के समन्वय के प्रश्न को उठाया है। "ध्वसशेष" मे अणुयुद्ध के बाद नवीन मानवता के निर्माण की समस्या प्रस्तुत की है। 'विद्युत् वसना' मे मैने मानव-स्वतत्रता के सिद्धात को मानव-एकता के अधीन रखने की उपयोगिता पर प्रकाश डाला है। 'शिल्पी' मे कला मूल्यो तथा 'रजतशिखर' मे उपचेतन की समस्याओ तथा जीवन मान्यताओ के सघर्ष का

समाधान प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। "ध्वसशेष" के तृतीय दृश्य मे, जो इस सकलन मे जा रहा है, मैंने वर्तमान सभ्यता के विविध तत्वो का मूल्याकन किया है और उसके अतिम दृश्य में नवीन मानवता के सास्कृतिक मूल्यो को विकसित लोकतत्र के रूप मे प्रतिष्ठित कर ध्वस के बाद नवीन मानव सस्कृति के उद्भव तथा निर्माण की दिशा की ओर सकेत किया है। अपने "सौवर्ण" नामक काव्य रूपक मे मैंने प्राचीन निष्क्रिय अध्यात्म को सक्रिय बनाने की आवश्यकता पर बल दिया है। उसका क्रान्त-द्रष्टा कहता है

देख रहा मै, बरफ बन गया, बरफ बन गया,
मानव का चैतन्य शिखर, नीरव, एकाकी,
निष्क्रिय, नीरस, जीवन-मृत, सब बरफ बन गया !

आह, उसे प्राणो का स्पदित ताप चाहिए,
जीने को जन मन का भावोच्छ्वास चाहिए।

सौवर्ण के व्यक्तित्व मे, जिसका बाह्य रूप वर्तमान जनयुग के सघर्ष की झझा का द्योतक है—सौवर्ण झझा के रथ पर चढ कर आता है—मैंने जीवनोपयोगी धन आध्यात्मिकता का मानवीकरण कर भावी मानवता का स्वरूप उपस्थित किया है। अपने काव्य रूपको को मै नाटक न कह कर कथोपकथन प्रधान श्रव्य काव्य ही की सज्ञा दूगा।

"आत्मिका" शीर्षक इस सग्रह की अतिम रचना मे मैंने विगत युगो की आध्यात्मिकता का विश्लेषण प्रस्तुत किया है। 'वाणी' की "बुद्ध के प्रति" नामक रचना मे भी नवीन मूल्यो का प्रतिपादन मिलता है

जड़ से चेतन, जीवन से मन, जग से ईश्वर को वियुक्त कर,
जिस चिन्तक ने भी युग दर्शन दिया भ्रांति वश जन मन दुस्तर
किया अमंगल उसने भू का, अर्ध सत्य का कर प्रतिपादन,
जड़ चेतन जीवन मन आत्मा एक, अखंड, अभेद्य, संचरण !

भूपर संस्कृत इंद्रिय जीवन मानव आत्मा को रे अभिमत,
ईश्वर को प्रिय नहीं विरागी, सन्यासी, जीवन से उपरत !
आत्मा को प्राणों से बिलगा अधिदर्शन ने की जग की क्षति,
ईश्वर के सँग विचरे मानव भू पर, अन्य न जीवन परिणति !

इस प्रकार अपनी अनेक रचनाओं मे मैंने धार्मिक, साप्रदायिक, दार्शनिक विचारो के आवर्तों से जीवनोपयोगी सिद्धातो को उबार कर पाठको के मन क्षितिज में नवीन आध्यात्मिक शिखरो का सौन्दर्य चित्रित करने का प्रयत्न किया है, जो आने वाली मानवता की ऊँचाई, गहराई एव व्यापकता का द्योतक है। मैंने

अपना जीवन दर्शन, युग की आवश्यकताओ एव मानवता के विकास की सभावनाओ को सम्मुख रख कर, अनेक महान ग्रथो तथा महापुरुषों से प्रेरणा ग्रहण कर, उनके उपयोगी तत्वो को आत्मसात् कर, लोक-कल्याण एव भू-मगल की भावना के उद्देश्य से, अपने काव्य-पट मे गुफित करने का साहस किया है।

'स्वर्ण किरण' और 'उत्तरा' मे कही-कही दीप्त लावण्य के स्थल आए है, जिनसे मेरे कुछ मित्रो तथा आलोचको को आपत्ति है। विशेषत, इसलिए कि उनकी सगति मेरे आध्यात्मिक काव्य के साथ नही बैठती। कवि दृष्टि निर्वैयक्तिक होती है, वह स्त्री-सौन्दर्य को उपभोग के गुठन मे सुरक्षित रखने के बदले उसे व्यापक आनन्द के लिए वितरित कर देती है। यह आदि कवि वाल्मीकि काल से प्रचलित व्यास, कालिदास की परम्परा है, जिसके गवाक्ष से स्त्री-सौन्दर्य पर मधुर प्रखर भावोष्ण प्रकाश पडता रहा है। स्त्री की शोभा पृथ्वी पर कला की पीठिका है, उसका शील–सदाचार और अध्यात्म का द्वार। मेरी दृष्टि में इसमे युग्म जीवन तथा सहजीवन के मूल्यो का प्रश्न भी निहित है, जिस पर नवीन युग की भूमिका पर अधिक व्यापक दृष्टि से विचार करना उचित होगा। भौतिक आध्यात्मिक मान्यताओ के अतिरिक्त मेरी इस काल की रचनाओ मे रागात्मक मूल्यो का भी एक विशिष्ट तथा महत्वपूर्ण स्तर है। आने वाली सस्कृति के धरातल पर नारी-सौन्दर्य मानव जीवन के उन्नयन मे बाधक न होकर सहायक ही होगा। तब नर-नारी का एक दूसरे के प्रति सहज अनुराग का चद्र यतियो की कृच्छ्, जीवन विरत कल्पना के राहु से मुक्त हो सकेगा। भावी की प्रबुद्ध मानवता के सम्मुख स्त्री देह को "चाम की तुच्छ थैली" के रूप मे चित्रित करना लज्जाजनक प्रतीत होता है। कला देह-सौष्ठव के साथ कामना की अग्नि को भी सौन्दर्य-बोध तथा राग की लय मे वेष्टित कर उज्ज्वल बना देती है, उससे उद्दीपन से अधिक आह्लाद और तृप्ति का ही अनुभव होना चाहिए।

वास्तव मे सौन्दर्य-चित्रण से अधिक, राग भावना के प्रति जो मौलिक दृष्टिकोण का प्रश्न है, उसी पर मैंने इस उत्थान की रचनाओ मे अधिक प्रकाश डाला है। इस विषय पर, समय आने पर, अधिक गभीर तथा रूढि ग्रह मुक्त विवेचना हो सकेगी। राग भावना को, स्वस्थ मानवता के स्तर पर, उन्मुक्त, परिणत तथा सस्कृत होना ही पडेगा। वैराग्यवाद तथा निषेध वर्जनाओ के आधार पर मानवता अथवा सामाजिकता से उसका उन्मूलन नही किया जा सकता। भावी पीढियो को, मैं पिछले युगो का देह-बोध का भार वहन करते हुए, धूप और छाँह की तरह, दो अनमेल इकाइयो में विच्छिन्न नही देखना चाहता। यह मात्र मध्ययुगीन नैतिक दृष्टिकोण है जो स्त्री-सपर्क को आध्यात्मिकता का विरोधी मानता है। सच तो यह है कि पिछली आध्यात्मिकता तथा नैतिकता की धारणा ही खोखली, एकागी तथा अवास्तविक रही है, जिसे स्त्री-स्पर्श तथा सपर्क उन्नत करने के बदले कलुषित कर सका है। निश्चय ही, वह जीवनोन्मुखी अध्यात्म न होकर रिक्त, जीवन विरत तथा अप्राकृतिक अध्यात्म रहा है जिसका दूसरा छोर हमारा वाममार्गी, वज्रयानी,

साधना पथ, तथा पडो, पुरोहितो और महतो का धार्मिक जीवन रहा है। स्त्री-ससर्ग तथा उच्च धर्म सबधी दृष्टिकोण मे सभवत अति प्राचीन काल मे इसलिए विरोध रहा हो कि तब मनुष्य पहली बार पाशविकता तथा बर्बरता के जगल से बाहर निकला था। अब भी, सभवत, विशिष्ट परिस्थितियो मे, धर्म और काम को विच्छिन्न करने की आवश्यकता पड सकती है, किन्तु विकसित सामाजिकता के लिए स्त्री पुरुष का सतुलित सस्कृत रागात्मक सहजीवन अनिवार्य सत्य है, और बहुत सभव है, कभी वह विभिन्न इकाइयो मे विभक्त गृहो की सकीर्ण देहलियो एव प्रागणो को लाँघ कर एक अधिक व्यापक विकसित धरातल पर आत्म सयमित स्वत निर्देशित, शील-सौम्य मानवता मे परिणत हो सकेगा।

क्षुधा/काम के सामजस्य का प्रश्न मानवता के सम्मुख महत्वपूर्ण तथा जटिल प्रश्न है। उदर क्षुधा के समाधान का प्रश्न यदि आज की राजनीति एव अर्थनीति का प्रश्न है, तो युग्म भावना एव रागात्मकता का प्रश्न कल की सस्कृति का प्रश्न है। क्षुधा काम तब देह और व्यक्ति के मूल्य न रह कर सामाजिकता तथा सस्कृति के मूल्यो, आत्मा तथा लोक-मगल के मूल्यो मे बदल जाएँगे। इद्रिय विषयक मूल्य मनुष्य की पिछली बहिरतर की सीमाओ से निर्धारित है, नैतिक मूल्यो तथा लोकाचार को बदलने से पहिले हमे अपनी चेतना तथा मानस के अचल को, जिसमे पिछले मूल्यो की छाप है, व्यापक, परिष्कृत रागभावना मे डुबो कर प्रक्षालित कर लेना होगा। लोककर्म से सयमित रागात्मकता वैसे भी अत शुद्ध होगी, जब स्त्री-पुरुष तटस्थ, आत्मस्थ, मोह मुक्त, दो समातर रेखाओ-से होगे, और लोकमगल के विकासशील लक्ष्य से प्रेरित होकर परस्पर संयुक्त रहेगे।

यदि हम प्राण भावना के धरातल से अतश्चैतन्य के शिखर की ओर देखे तो रति काम की अत शुद्ध स्थिति ही पार्वती परमेश्वर का रूप है, जो अत प्रेम मे सपृक्त है, और उन्ही का बहिरतर सतुलित सास्कृतिक रूप कृषियुग की परिस्थितियो के अनुरूप, श्री सीताराम तथा राधाकृष्ण का युगल रूप अपने यहाँ है। स्त्री-पुरुषो के बीच रागात्मक सामजस्य सस्कृति का मूल उपादान है। वैरागियो के दमन मे युग्मेच्छा का सतुलित उन्नयन, सस्कृति की दृष्टि से, अधिक लोकोपयोगी एव सौन्दर्य उर्वर है। ऐसे समाज की प्रतिष्ठा अवश्य ही अत्यन्त धैर्य, शील, सहिष्णुता तथा जागरूकता से ही पृथ्वी पर सभव है। आध्यात्मिक-लौकिक मूल्यो को परस्पर विरोधी पृथक् मूल्यो में विच्छिन्न करने का यही कारण है कि मानव राग भावना का अभी विकास या परिष्कार नही हो सका है। इसीलिए न हमारा गृह जीवन और सामाजिक जीवन ही संस्कृति की दृष्टि से पूर्ण बन सका है, न हमारे आश्रमो, तपोवनो तथा तीर्थस्थानो का जीवन ही वास्तविक अर्थ मे भगवत् जीवन बन सका है, दोनों ही एकांगी, स्वर्ग (पुण्य) भीरु तथा धरा (पाप) भीत होकर पगु, निष्क्रिय या अर्ध-सक्रिय, अपूर्ण तथा अक्षम ही रह गए हैं; न हमारे दिव्य जीवन की ही धारणा पूर्णता प्राप्त कर सकी है, न लौकिक जीवन की ही। पूर्णता प्राप्त करने के लिए हमे समग्र लोक-जीवन को ही रागात्मक विकास की उपयुक्त पीठिका

बनाना होगा। ये विचार मै केवल भावी सामाजिक-सास्कृतिक मूल्यो के रूप मे ही यहाँ दे रहा हूँ, जिन पर आधारित मानव जीवन आसक्ति मुक्त, राग शुद्ध, अत स्थित होकर, घृणा, उपेक्षा तथा कामद्वेष से रहित, व्यापक प्रेम मे सगठित हो सकेगा। वास्तव मे जिस भगवत् प्रेम को आज हम अत शुद्धि तथा यम नियमो के आधार पर मानसिक भावना के स्तर पर प्राप्त करना चाहते है वह हमे सस्कृत लोक जीवन के धरातल पर उपलब्ध होना चाहिए। श्रीकृष्ण की रासलीला तथा चैतन्य की भावलीला मे हमे परिष्कृत राग भावना की आशिक झाकियाँ मिलती है।

'युगवाणी' की "राग साधना" कविता से लेकर 'वाणी' की "पुनर्मूल्याकन" रचना तक मैंने अपनी अनेकानेक कृतियो मे नव युग की इस अभीप्सा को वाणी दी है। "मानसी" नामक गीत रूपक मे भी मैंने इसी भावना का विकास दिखाया है। और "स्वर्णोदय" में इस सत्य को इस प्रकार व्यक्त किया है

क्यों मानव यौवन वसंत सा हो न लोक जीवन में कुसुमित
मधुर प्रीति हो सामाजिक सुख, प्राण भावना आत्म संयमित!
करें मुक्त उपभोग हृदय का नर नारी निज रुचि से प्रेरित,
आदर प्रीति विनय हो उर में, अंग लालसा का मुख संस्कृत!
हृदय तमस आलोक स्रोत पा हो जीवन सौन्दर्य में द्रवित,
प्राण कामना सृजन शील बन, धरा स्वर्ग रचना में योजित!

रागात्मिका वृत्ति के परिष्कार को मैंने नव मानवता के निर्माण के लिए अनिवार्य मूल्य माना है। स्त्री पुरुष सबधी और समस्त मान्यताएँ तथा नैतिक सामाजिक दृष्टिकोण मुझे अपूर्ण, कृत्रिम, अव्यावहारिक, अस्वाभाविक तथा मानवता के अतर्विकास के लिए घातक प्रतीत हुए है। यह प्रवृत्ति पथ नही, निवृत्ति पथ नही, निवृत्ति सतुलित, प्रीति सयमित प्रवृत्ति पथ है। इद्रिय पथ नही, इद्रिय मूल्यो पर आधारित शीलपथ है। मै साधु सतो के तपोमय जीवन का प्रेमी हूँ, पर जीवन के अतरतम वारियो मे जो मुक्त अबाध व्यापक अनुराग की धारा बहती है उसी को मै उपर्युक्त शील पथ के रूप मे स्वस्थ लोक-जीवन-निर्माण के लिए प्रस्तुत कर रहा हूँ, जिसका लक्ष्य भू-रचना तथा जनमगल है।

मै यहाँ यह भी स्पष्ट कर दूँ कि मेरा काव्य मुख्यत आध्यात्मिक काव्य नही है, और, यदि है भी, तो प्राचीन रूढ अर्थ मे नही, जिसमे अध्यात्म, वैराग्य के सोपान पर, अन्न, प्राण मन की श्रेणियो को पार कर, केवल ऊर्ध्व मुख चिदाकाश की ओर आरोहण करता है। मेरे द्वितीय उत्थान के काव्य के लिए उपयुक्त सज्ञा होगी, नवीन चेतना काव्य, जिसके अतर्गत मानव जीवन मन के उच्च एव समदिक् दोनो स्तरो की सस्कृत, सतुलित, व्यापक सामाजिकता तथा नव मानवता के तत्व वर्तमान है। मेरी काव्य चेतना मुख्यत नवीन सस्कृति की चेतना है, जिसमे आध्यात्मिकता तथा भौतिकता का नवीन मनुष्यत्व के धरातल पर सयोजन है। मेरा काव्य प्रथमतः इस युग के महान् सघर्ष का काव्य है। जो लोग युग सघर्ष को वर्ग सघर्ष तक ही

सीमित रखकर उसे केवल बाहरी आर्थिक राजनीतिक स्तरो पर ही देख सकते है, उनकी बात मै नही करता, अन्यथा 'युगवाणी' से 'वाणी' तक मेरा समस्त काव्य युग मानव एव नव मानव के अतरतम सघर्ष का काव्य है। मेरी काव्य चेतना केवल मध्ययुगीन नैतिक बोद्धिक अधकार तथा जीवन के प्रति तद्-जनित सीमित दृष्टिकोण से ही नही सघर्ष करती रही, वह भावी मानवता के पथ के बहिरतर के दुर्गम अवरोधो से भी निरतर जूझती रही है। आज के विराट् मानवीय सघर्ष को वर्ग सघर्ष तक ही सीमित करना विगत युगो की खर्व चेतना तथा ऐतिहासिक अधकार की एक हिस्र प्रतिक्रिया मात्र है। दूसरे शब्दो मे, मेरा काव्य भू-जीवन, लोक-मगल तथा मानव मूल्यो का काव्य है, जिसमे मनुष्यत्व और लोकगण दो भिन्न तत्व नही, एक दूसरे के गुण राशि वाचक पर्याय है। वैसे तुलसी रामायण भी लोक-मगल का काव्य है, पर वह मुख्यत आध्यात्मिक काव्य और धर्मग्रथ है, जिसमे लोक जीवन सत्ता और भगवत् सत्ता दो पृथक् मूल्यो मे विभक्त है। उसमे श्रद्धा भक्ति से मानस अजिर उज्वल रखने तथा नाम कीर्तन, आराधना द्वारा अपवर्ग तथा मोक्ष-प्राप्ति का सदेश निहित है। मेरे चेतना काव्य मे नवीन भू-जीवन तथा भगवत् जीवन "सियाराम मय सब जग जानी" के भावनात्मक अर्थ मे ही नही, इससे भी व्यापक अर्थ में, अभिन्न सत्ता है। उसमे भगवत्-प्रेम जीवन-मुक्ति का नही, जीवन-रचना-मगल का उपादान है। तप पूत व्यक्ति का मन ईश्वर का मदिर है, इस पर अधिक बल न देकर मैने सयुक्त, सस्कृत, बहिरतर सयोजित सामाजिक जीवन ही भगवत् चेतना की मूर्त पीठ है और उन्नत लोक-जीवन-रचना ही भगवत् सान्निध्य प्राप्ति का साधन है, इसको अधिक महत्व दिया है। भू-जीवन तथा भगवत् जीवन के मध्य मुझे किसी प्रकार का ज्ञान वैराग्य जनित आध्यात्मिक व्यवधान अभिप्रेत नही है, तथा सस्कृत मानव-जीवन एव उन्नत भू-रचना के अतिरिक्त मुझे आध्यात्मिकता के लिए अन्य उपकरण उतने मूल्यवान नही प्रतीत होते। आध्यात्मिक दृष्टिकोण के प्रति यह मौलिक अतर मेरी रचनाओ मे ध्यान देने योग्य है। विकसित, परिपूर्ण, लोक जीवन ही भगवत् पूजन का प्रतीक हो, मुझे यह अधिक स्वाभाविक लगता है। इस सबध में मुझे 'उत्तरा' की कुछ पक्तिया स्मरण आ रही है

> आज व्यक्ति के उतरो भीतर, निखिल विश्व मे बिचरो बाहर
> कर्म वचन मन जन के उठकर बनें युक्त आराधन!
>
> जगतीं मानव में देवोत्तर मिट्टी की प्रतिमाएँ नश्वर,
> युग प्रभात छवि स्नात निखरते भू जनपद, पुर, प्रातर।

धरती के जीवन से भगवत् सत्ता को पृथक् कर, लोक मानवता के बदले किसी कल्पना या सिद्धि के मन स्वर्ग मे, ध्यान धारणा के शिखर पर, ईश्वर साक्षात्कार की भावना को सीमित करना, भविष्य की दृष्टि से, मुझे कृत्रिम और अस्वाभाविक

लगता है। इससे मानव जीवन का हित होने के बदले उसकी उपेक्षा एव अहित ही हुआ है। एक ही अखड सत्य की सत्ता पारलौकिक ऐहिक रूपो मे विभक्त हो गयी है। मध्ययुग की समस्त नैतिकता और सदाचार के मानदड तथा भगवत् सबधी ज्ञान, आध्यात्मिक मान्यताएँ और विचारधाराएँ इसका उदाहरण हैं। भौतिक आध्यात्मिक सचरणो का परस्पर विरोधी समझे जाने का भी यही कारण है, क्योकि समतल जीवन की उपेक्षा के कारण ऊर्ध्व के साथ उसका सयोजन नही किया जा सका। यह सच होने पर भी, हमे मध्ययुगीन विचारको, दार्शनिको, सतो तथा कवियो के प्रति कृतज्ञ रहना चाहिए, जिन्होने उस घोर सास्कृतिक विघटन, ह्रास के कुहा से, जीवन नैराश्य तथा धरती के अधकार से निरतर सघर्ष कर, हमारे भीतर किसी न किसी रूप मे, सत्य की ज्योति को प्रज्वलित रखा है। किन्तु नवीन युग को इस जड धरती के जीवन को ही उच्च विकास की उपयुक्त पीठिका बनाना है। विज्ञान और धर्म को भविष्य में नव मानवता के रूप मे सयोजित होना है

ईश्वर के सँग विचरे मानव भू पर,
अन्य न जीवन परिणति।

हमारी अनेक ऊर्ध्व (आध्यात्मिक) मान्यताएँ इसलिए भी रहस्य मे खोई हुई आकाश कुसुम सी लगती है कि वे समदिक् लौकिक जीवन से विच्छिन्न तथा असयोजित रहने के कारण उच्च सिद्धातो के सूक्ष्म धरातल पर भी ठीक से ग्रहण नही की जा सकी हैं। इसलिए, एक दृष्टि से, पुरानी दुनिया का अध्यात्म तथा ईश्वर बोध, अधिकतर कल्पना ही मे लिपटा हुआ रह गया है। मेरी दृष्टि मे भू-जीवन को भगवत् जीवन बनाने के लिए हमे कही ऊपर नही खो जाना है, प्रत्युत् जीवन आकाक्षाओ का पुनर्मूल्याकन कर विगत मूल्यो को अधिक व्यापक बनाना है। निश्चय ही जो आध्यात्मिकता मानव जीवन के रक्तमास के उपादानो का बहिष्कार या अवहेलना कर किसी उच्च जीवन की कल्पना करती है वह जीवन-मगल की द्योतक नही हो सकती। मुझे यह अनुभूति 'युगवाणी-ग्राम्या' काल ही मे हो चुकी थी। 'युगवाणी' की "मानव पशु", "जीवन तम", "राग", "रागसाधना" तथा "जीवन मास" आदि रचनाएँ मेरी इसी अनुभव की द्योतक हैं, "ईश्वर है यह मास पूर्ण यह!" या "रूपमास है अमर प्रकाश!" कहकर मैने 'युगवाणी' मे रूप-मास अर्थात् सस्कृति शुद्ध जीवन ही को भगवत् प्रकाश का मूर्त उपादान बतलाया है।

जैसा कि ऊपर कह चुका हूँ, मै आध्यात्मिकता के विकास को सामाजिक जीवन से पृथक्, वैराग्य के स्फटिक शीत मदिर मे रह कर, सभव नही मानता। वह तो पुरानी आध्यात्मिकता है जिसने भगवत् चेतना को जीवन मे प्रतिष्ठित करने के बदले "भूतेषु भूतेषु विचिन्त्य धीरा" कहकर, अतरतम मे उसके अमृत प्रकाश का स्पर्श पाकर, सतोष कर लिया। जगत् या सृष्टि के मूल मे जो ईश्वर या भागवत चेतना है, उसे विकास क्रम मे मनुष्य के सामाजिक जीवन एव विश्व जीवन में मूर्त होना ही चाहिए, यही मेरी दृष्टि मे मात्र भागवत

साक्षात्कार है,—ईश्वरत्व को जीवन की वास्तविकता प्रदान करना; और सब चाहे भले ही ईश्वर बोध हो। भगवत् साक्षात्कार मेरे चेतना काव्य मे एक लबी विकासशील सामाजिक प्रणाली है। दूसरा यह कि इद्रिय जीवन तथा भागवत जीवन मे विरोध मानना, मेरी दृष्टि मे, भ्रम है। सस्कृत सतुलित इद्रिय जीवन ही मे—जो अतत सामूहिक या सामाजिक स्तर पर ही पूर्णत सभव हो सकता है—केवल भागवत् जीवन का साक्षात्कार किया जा सकता है। उपनिषदो का "स प्रत्यागाच्छुक्रमकायमव्रण" ब्रह्म सत्य है, वह जीवन चेतना का अतरतम या ऊर्ध्वतम, सूक्ष्मात्पर, शाश्वत, अतिचेतन स्तर है। किन्तु पदार्थ, प्राण और मन की भूमिका का परित्याग कर उसे प्राप्त करने या आत्ममुक्ति के अनुसधान मे उसकी ओर जाने का प्रश्न मध्ययुगीन ध्येय या आदर्श का प्रश्न रहा है। हमारा युग-सत्य है जगत जीवन और भू-क्षेत्र को ही ब्रह्म की मूर्तिमान वास्तविकता मे परिणत करना। ऐसे अत सगठित जीवन मे नि सदेह रागद्वेष, लोभ मोह, क्रोध अहकार आदि की उपयोगिता नही रहेगी—जोकि विकास पथ के स्थूल और क्रूर साधन रहे है,—और रागवृत्ति भी परिष्कृत होकर आनन्द, सौन्दर्य, प्रेम, शाति तथा सहज व्यापक पवित्रता मे परिणत हो जाएगी। जिस सीमित नैतिक या धार्मिक अर्थ मे पवित्रता का प्रयोग होता है, उस अर्थ मे नही,—जीवन का व्यापक सचरण ही अपनी समग्रता मे अत सतुलित होकर मन मे पवित्रता का उद्रेक करेगा, पवित्रता के अर्थ मे अधिक घनत्व तथा वास्तविकता आ जाएगी। जैसा मैने 'ज्योत्स्ना' मे भी प्रतिपादित किया है, आनद, सौन्दर्य, प्रेम, शाति आदि उस सृजन चेतना के मौलिक मूलभूत गुण हैं जो सृष्टितत्व मे अभिव्यक्त हुई है, और मानव जगत को उसी सत्य का दर्पण बनाना है। यही एकमात्र सभ्यता, सस्कृति तथा धर्मो का अनादिकाल से प्रश्न और लक्ष्य रहा है। इतिहास के उत्थान-पतन तो मानव-समाज के अपने अत सत्य के अपरिचय तथा ब्रह्माड के अत स्वरूप के अज्ञान तथा उन्नत जीवन साधना के अभाव के कारण, विकास-क्रम की श्राति, क्लाति उद्वेग-जनित, अश्रुस्वेद-रक्तमय, बाहरी वास्तविकता के छिलके भर है।

मेरी प्रेरणा के स्रोत, निस्सदेह मेरे ही भीतर रहे है, जिन्हे युग की वास्तविकता ने सींच कर समृद्ध बनाया है। मैने अपने अतर के प्रकाश मे ही बाह्य प्रभावों को ग्रहण तथा आत्मसात् किया है। मैं अत्यन्त विनम्रतापूर्वक अपने समस्त प्रेरकों, शिक्षकों तथा अभिभावकों के प्रति अनन्य हृदय से कृतज्ञता प्रकट करता हूँ, जिनके सपर्क मे आकर मैं कुछ सीख सका हूँ। मै न दार्शनिक हूँ, न दर्शनज्ञ ही, न मेरा अपना ही कोई दर्शन है, और न मुझे यही लगता है कि दर्शन द्वारा मनुष्य को सत्य की उपलब्धि हो सकती है। ये केवल मेरे कवि मन के प्रकाश स्फुरण अथवा भाव प्ररोह है जिन्हे मैंने अपनी रचनाओ में शब्द-मूर्त करने का प्रयत्न किया है। अपनी भावना तथा कल्पना के पखों से मैं जिन सौन्दर्य क्षितिजों को छू सका हूँ वे मुझे दार्शनिक सत्यों से अधिक प्रकाशवान एव सजीव लगते है। दर्शन ग्रन्थो तथा महापुरुषो के वचनो मे अपनी भावात्मक उपलब्धियो का समर्थन पाकर मै आश्वस्त हुआ हूं

और मुझे उससे मनोबल भी प्राप्त हुआ है। मेरे काव्य दर्शन की कुजी निश्चय ही 'ज्योत्स्ना' मे है। उसी के भौतिक सचरण का विकास मेरे मन मे मार्क्सवाद के ज्ञान से हुआ, जिससे मै अपनी भौतिक जीवन सबधी धारणा को व्यापकता, शब्दार्थ-सगति तथा वैज्ञानिक रूप दे सका। 'ज्योत्स्ना' का चेतनात्मक सचरण मेरी उत्तर रचनाओ मे पूर्व-पश्चिम के दर्शनो तथा विचारधाराओ के अध्ययन मनन तथा गाधी जी और श्री अरविन्द के महत् सपर्क मे आने से प्रस्फुटित तथा विकसित हुआ है। सामूहिक जीवन निर्माण के लिए गाधी जी का सक्रिय अहिंसा का सास्कृतिक राजस दान नव मानवता के अमूल्य उपादानो मे रहेगा। 'युगातर' मे मैने गाधी जी को इन शब्दो मे स्मरण किया है

आत्म दान से लोक सत्य को दे नव जीवन
नव संस्कृति की शिला रख गए भू पर चेतन!

आओ, उसकी अक्षय स्मृति को नीव बनाएँ
उस पर सस्कृति का लोकोत्तर भवन उठाएँ।
स्वर्ण शुभ्र धर सत्य कलश स्वर्गोच्च शिखर पर
विश्व प्रेम में खोल अहिंसा के गवाक्ष वर!

'वाणी' मे श्री अरविन्द को नव युग सारथि के रूप मे मैने इस प्रकार श्रद्धाजलि दी है।

सारथि श्री अरविन्द रहे तब ऐसे भगवत् द्रष्टा भू पर
विश्व ग्लानि कर गए विलय जो अति मानस से धर्म हानि भर!
प्रातः रवि सा स्फुरत् रश्मि स्मित था भगवत् चैतन्य तपोज्वल
भू मानस मे पूर्ण प्रस्फुटित अंतः स्वर्णिम हो सहस्रदल!

मैने अपनी काव्य चेतना मे अन्न प्राण मन के विकसित, सस्कृत जीवन से विच्छिन्न किसी उच्च जीवन की कल्पना को स्वीकार नही किया है। एक तो वह लोक जीवन एव सामाजिकता की दृष्टि से सभव नही, दूसरा वह इद्रिय सस्कारो की परिणति को, उनकी मौलिक चेतनाओ की क्रियाओ को अग्राह्य कर, सभव बतलाती है। मुझे उन्नत इद्रिय जीवन अदिव्य तथा अपावन नही लगता है, भागवत् चेतना ही इद्रियो मे प्ररोहित प्रतीत होती है। इस भावना को मैने अनेक रूप से व्यक्त किया है

मै उपकृत इद्रियो, रूप रस गध स्पर्श स्वर,
लीला द्वार खुले अनत के बाहर भीतर:
अप्सरियो से दीपित सुरधनुओं के अबर,
निज असीम शोभाओ से तुम पर न्योछावर!

आत्म मुक्ति के लिए क्या अमित यह ग्रह ग्रथित रग भव सज्जित
प्रकृति इद्रियों का दे वैभव, मानव तप कर मुक्त बने नित !
नहीं सत कुल हुआ सत रे, जीव प्रकृति के सब जन निश्चित,
लोक मुक्ति ही ध्येय प्रकृति का, मनुज करे जग जीवन निर्मित !

मे पूर्ण विकसित लोक जीवन के ही रूप मे, मुख्यत , भगवत् सत्ता या चेतना का मूर्त विकास सभव मानता हूँ। महापुरुषो, सिद्धो, योगियो तथा विशिष्ट व्यक्तियो मे भी भगवत् चेतना के विशेष रूपो तथा गुणो की पूर्ण या आशिक अभिव्यक्ति हो सकती है, और वह सामूहिक उपलब्धि के स्तर से, एक प्रकार से, अधिक सूक्ष्म, उच्च और पूर्ण भी हो सकती है। पर मैंने इस युग में अधिक महत्व भू-जीवन की उन्नत मगल रचना को ही देना उचित समझा है, जिसमे व्यापक से व्यापक अर्थ मे भागवत गुणो का अवतरण एव भागवत वास्तविकता का साक्षात्कार सभव हो सकता है। 'ज्योत्स्ना' के अतिम दृश्य मे, नव युग प्रभात के रूप मे, मैंने, भू-जीवन के स्तर पर, नवीन चेतना के इसी सत्य की परिणति दिखलाई है। मैं अब भी यही सोचता हूँ कि समस्त ज्ञान विज्ञान, अर्थ तत्र आदि का सचय एव उपयोग नव मानवता के लिए धरा-स्वर्ग की शुभ रचना करने ही मे सार्थकता प्राप्त कर सकता है। मात्र सैद्धातिक शुभ से रचना-शुभ अधिक वास्तविक तथा सपूर्ण है, उसी मे एक मात्र अनत पीढियो मे व्याप्त मानव जीवन के अमरत्व की चरितार्थता है। यह जैसे आँख खोल कर ईश्वर का ध्यान अथवा भगवत् सत्ता का साक्षात्कार करना है। निश्चय ही, इद्रियगोचर होने से परात्पर या इद्रियातीत सीमित नही हो जाता, न उसमें अतर या भेद ही आता है। सूक्ष्म और स्थूल दोनो ही आशिक सत्य है, उनसे पूर्ण सत्य है सूक्ष्म-स्थूल का सामजस्य। आज जो अतर्दृष्टि या ऊर्ध्व स्तर का सत्य है कल वह बहिर्दृष्टि को समतल पर भी सुलभ हो सकेगा।

ऐसा अवश्य है कि वर्तमान विकास की स्थिति मे, विशेष ज्ञान सस्थानो तथा आश्रमो में, हमें विशिष्ट उच्चतम मान्यताओ के आधार पर, अतर्मन तथा अंतर्जीवन के सगठन-सयोजन के लिए, ऊर्ध्वतम आध्यात्मिक साधना की आवश्यकता पडेगी, जहाँ हम भागवत करुणा के सपर्क मे आकर अतश्चेतन के आलोक तथा अतर्वैज्ञानिक सिद्धियो के द्वारा लोक जीवन के विकास पक्ष की बाधाओ तथा व्यवधानो को हटाने, मानस ग्रथियो को सुलझाने, एव विश्व जीवन का उन्नयन करने में सफल हो सकेंगे। ऐसे तपोवन तथा साधना द्वार हमारे देश की विशेषता रहे है। वे सदैव हमारी श्रद्धा भक्ति के पवित्र पथ-प्रदर्शक केन्द्र और हमारी चेतना विषयक उच्च प्रयोगशालाएँ रहेंगे, जहाँ से हमे शाति, पवित्रता, आनद, भगवत् प्रेम, आलोक, कल्याण, सद्भावनाओ तथा सद्विचारो का अक्षय दान प्राप्त होता रहेगा। जैसा मैंने 'उत्तरा' की भूमिका मे भी लिखा है हमारा देश अतर्जगत् का सिद्ध वैज्ञानिक है। मुझे गगा तट पर, जो भस्म रमाए हुए, जटाधारी साधु, एक हाथ ऊपर उठाए, या लोहे की प्रखर शलाकाओ पर लेटे मिलते है, उन्हें भी मेरा मन अपने देश के देह-मन के सत्य सबधी प्रयोक्ताओ के ही

रूप मे देखता है, जिसकी उपलब्धि हम अब अधिक श्रेष्ठ साधनो से कर सकते है। ऐसे अनेक प्रकार के साधुओ के सप्रदाय आज प्राचीन प्रारभिक पद्धतियो के अवशिष्ट स्मृति चिह्न तथा "उदर निमित्त बहुकृत वेश", आदिम पाखड-मात्र रह गए है।

आज के सघर्ष और सहार के युग मे मेरे उपर्युक्त विचार तथा मान्यताएँ आधुनिक यथार्थवादियों को स्वप्न-कल्पित अतिरजनाएँ मात्र प्रतीत हो सकती है। किन्तु आज के पक्षधर आलोचको की यथार्थवाद की धारणाओ पर तथा पूर्वग्रहो मे खडित और विभक्त पाठको की रुचियो के निर्णयों पर निर्भर रह कर मेरा जैसा 'तितीर्षुर्दुस्तर मोहादुडुपेनास्मि सागर' अल्पमति कवि सृजन कर्म नही कर सकता। उसे नवीन मानवता के प्रति श्रद्धा तथा भगवत् करुणा पर विश्वास रख कर अपनी अतरतम अनुभूतियो, प्रेरणाओ एव प्रकाश पर ही अवलबित रहना पडेगा। वर्तमान के सघर्ष और सहार की विभीषिका से भी अधिक महत् तथा शक्तिमय जो अमृतत्व का सागर आज सवेदनशील हृदयो के भीतर नवीन चेतना ज्वारो मे उठ कर मानव अतर के नव जीवन बोध के स्तरों को स्पर्श कर रहा है, उसका मगल सदेश कैसे भुलाया जा सकता है ? आज के भ-व्यापी सघर्ष, विरोध, अनास्था, निराशा, विषाद तथा सहार की यही वास्तविकता है कि वह मानव समाज को नवीन मान्यताओ के क्षितिजो, नवीन जीवन-बोध के धरातलो तथा महत्तर सामजस्य की भूमिकाओ की ओर अग्रसर कर रहा है। निस्सदेह, अकल्पनीय सिद्धियो तथा महान् विनिमयो का है हमारा युग। आज के विज्ञान, दर्शन और सृजन प्रेरणा का श्रेय उसी को है।

इस युग के विक्षोभ का मुख्य कारण है मानव जीवन के ऊर्ध्व तथा समतल सचरणो मे सामजस्य अथवा सतुलन का अभाव। आज हमे भूत-अध्यात्म, यथार्थ-आदर्श सबधी अपनी पिछली धारणाओ को अधिक व्यापक बना कर उन्हे एक दूसरे के निकट लाना है। यथार्थ अथवा आदर्श के व्यापक सत्य के बारे मे या तो हम मध्ययुगीन अभावो एव निषेधो के कुहासों के पार न देख पाने के कारण उदासीन है, या पश्चिम के अध अनुकरण के कारण बाह्य युग-जीवन के अधकार मे भटक गए है। आज के बडे राष्ट्रो को, जो भू जीवन के विकास तथा उन्नयन को अवरुद्ध किए हुए है, वैज्ञानिक चेतना या मानवीय जीवन यथार्थ का प्रतिभू मानना हमारा भ्रम है। वे अभी धरती की प्राचीन ऐतिहासिक बर्बरता ही का प्रतिनिधित्व कर रहे है और विज्ञान को जीवन-निर्माण तथा मनोविकास का माध्यम बनाने के बदले, उसके पखों के ताप मे आणविक डिम्बो एव विनाश के विस्फोटको को सेकर, अपनी ऋण-सामर्थ्य का नग्न प्रदर्शन कर रहे है। जिस प्रकार कभी भारतवर्ष अपनी आध्यात्मिक शक्ति के सम्मोहन से दिग्भ्रात हो गया था, उसी प्रकार आज के शिखर-राष्ट्र भौतिक क्षमता से मदोन्मत्त हो विश्व जीवन एव मानवता को विनाश की ओर ले जाने की स्पर्धा कर रहे है। मुझे मानव चेतना पर विश्वास है, वह इस अणु सहार के नृशस हिस्र नाटक को अवश्य ही नवीन निर्माण तथा रचना मगल की दिशा एव भूमिका देकर मानवता की प्रगति का द्वार उन्मुक्त कर सकेगी।

जो नवीन प्रकाश मनुष्य के मन क्षितिज मे उदय हो रहा है उसी के आलोक मे नवीन मानवता का निर्माण भविष्य मे सभव है। आज की बौनी, खडित, अपर्याप्त मान्यताओं से सचमुच ही आने वाले मनुष्य का काम नही चल सकेगा, चाहे वह चद्रलोक मे रहे या मगल लोक मे। 'वाणी' मे मैंने प्रश्न किया है —

चद्रकलश प्रासाद रचोगे तुम दिग्विस्तृत ?
कैसा होगा वहाँ भाव ऐश्वर्य अखंडित ?
कैसा नव चैतन्य ? मानसी भूति अपरिमित ?
कैसा सस्कृत जन जीवन सौन्दर्य अकल्पित ?
अणु बम वहाँ बनाएँगे क्या सभ्य शिष्ट नर ?
शीत युद्ध से कंपित कर शकित भू पजर ? इत्यादि।

आज के युग का सदेह, अविश्वास, जीवन सघर्ष, विनाश के साधन, बाहरी भीतरी क्रातियाँ—अर्थ शक्ति सचय, ज्ञान-विज्ञान की उपलब्धियाँ तथा अप्रतिहत साहस इसी महत् निर्माण, विकास तथा मानवता के आम ल रूपातर के अग्रदूत है—इनका कोई दूसरा अर्थ नही हो सकता। मनुष्य के अत करण मे जो अपापविद्ध, स्वयशुद्ध, शाश्वत अमृतत्व है उसकी अन्य क्या सार्थकता या परिणति हो सकती है ? मानव जीवन की, युगो के अधकार एव नैतिक सकीर्णता की कलक कालिमा मे सनी चेतना की चादर को—जिसे कबीर जतन से ओढ कर ज्यो की त्यो रख गए थे—नवीन प्रकाश के जल मे डुबो कर, उसे सस्कृति के व्यापक मूल्यो की स्वच्छ शोभा प्रदान कर, हमे सब के ओढने योग्य बनाना होगा। नही तो अतरिक्ष के दीप्त ग्रहो मे मन के इस अधकार को ले जाने से क्या लाभ हो सकता है ? आज के युग का प्रश्न केवल भारतीय या एकदेशीय आध्यात्मिकता या सस्कृति का नया सस्करण प्रस्तुत करना नही है, जैसा मध्ययुगो मे रहा है, आज समस्त मानवता तथा विश्व-जीवन को एक सक्रिय, जीवनोपयोगी, आध्यात्मिक चेतना तथा सांस्कृतिक पीठिका प्रदान करना है। आने वाला मानव निश्चय ही न पूर्व का होगा, न पश्चिम का। वह देशों (दिशा) की सीमाओ एव विभेदो को अतिक्रम कर काल के शिखर की ओर आरोहण करने को उत्सुक होगा। आज की बाह्य वास्तविकता की बौनी विकृतियों से मुक्त, उसके भीतर, एक अतर-वास्तविकता एव अतश्चेतना का उदय तथा विकास होगा। वह विज्ञान को अपना उपयुक्त वाहन बना सकेगा। वही, काल के हृदय कमल मे स्थित, कालविद्, अत्याधुनिक मानव होगा—जिसे धारण कर धरती सूर्य की परिक्रमा करने मे गौरव का अनुभव करेगी। इस मानव को सबोधित कर, "बुद्ध के प्रति" रचना की अतिम प्रार्थना उद्धृत करता हूँ :

आओ, शांत, कांत, वर, सुंदर, धरो धरा पर स्वर्ण युग चरण !
विचरो नव युग पांथ, बुद्ध बन, जन भू मन करता अभिवादन !
अणु रचना के भूति-मंच पर हो सुखांत मानव युग का रण,
तुमसे नव मानुष्य स्पर्श पा विष हो अमृत, मृत्यु नव जीवन !

अत मे, इस भूमिका के रूप मे प्रस्तुत अपने विचारो, विश्वासो तथा जीवन मान्यताओ की त्रुटियो एव कमियो के सबध मे पाठको से क्षमा प्रार्थना करते हुए, अपनी द्वितीय उत्थान की सृजन चेतना के चरण-चिह्नो को यही समय के बालू पर छोडकर, नवीन रचना भूमिका मे प्रवेश करने के उत्साह मे, मैं अपने अतीत के इन स्वप्न भार नत सस्मरणो से विदा लेता हूँ

स्वस्ति, चेतना काव्य के काल,
रजत मानस के स्वर्ण मराल,
रश्मि दीपित कवि भाल!

श्रीकृष्ण जन्माष्टमी
६ सितम्बर, १९५८

सुमित्रानदन पत

बापू

किन तत्त्वो से गढ जाओगे तुम भावी मानव को ?
किस प्रकाश से भर जाओगे इस समरोन्मुख भव को ?
सत्य अहिसा से आलोकित होगा मानव का मन ?
अमर प्रेम का मधुर स्वर्ग बन जाएगा जग जीवन ?
आत्मा की महिमा से मडित होगी नव मानवता ?
प्रेम शक्ति से चिर निरस्त हो जाएगी पाशवता ?

बापू ! तुमसे सुन आत्मा का तेजराशि आह्वान
हँस उठते है रोम हर्ष से, पुलकित होते प्राण !
भूतवाद उस धरा स्वर्ग के लिए मात्र सोपान,
जहाँ आत्म दर्शन अनादि से समासीन अम्लान !
नही जानता, युग विवर्त मे होगा कितना जन क्षय,
पर, मनुष्य को सत्य अहिसा इष्ट रहेगे निश्चय !
नव सस्कृति के दूत ! देवताओ का करने कार्य
मानव आत्मा को उबारने आए तुम अनिवार्य !

नव दृष्टि

खुल गए छद के बध,
प्रास के रजत पाश,
अब गीत मुक्त,
औ' युग वाणी बहती अयास !
बन गए कलात्मक भाव
जगत के रूप नाम,
जीवन सघर्षण देता सुख,
लगता ललाम !

सुदर, शिव, सत्य
कला के कल्पित माप-मान
बन गए स्थूल,
जग जीवन से हो एकप्राण !

मानव स्वभाव ही
बन मानव-आदर्श सुकर
करता अपूर्ण को पूर्ण,
असदर को सुदर।

युग उपकरण

वह जीवित सगीत, लीन हो जिसमे जग जीवन सघर्ष,
वह आदर्श, मनुज स्वभाव ही जिसका दोष-शुद्ध निष्कर्ष।
वह अन्त सौन्दर्य, सहन कर सके वाह्य वैरूप्य विरोध,
सक्रिय अनुकपा, न घृणा का करे घृणा से जो परिशोध।

नम्र शक्ति वह, जो सहिष्णु हो, निर्बल को बल करे प्रदान,
मूर्त प्रेम, मानव मानव हो जिसके लिए अभिन्न, समान,
वह पवित्रता, जगती के कलुषो से जो न रहे सत्रस्त,
वह सुख, जो सर्वत्र सभी के सुख के लिए रहे सन्यस्त।

ललित कला, कुत्सित कुरूप जग का जो रूप करे निर्माण,
वह दर्शन-विज्ञान, मनुजता का हो जिससे चिर कल्याण।
वह संस्कृति, नव मानवता का जिसमें विकसित भव्य स्वरूप,
वह विश्वास, सुदुस्तर भव सागर मे जो चिर ज्योति स्तूप।

रीति नीति, जो विश्व प्रगति मे बने नही जड बधन पाश,
—ऐसे उपकरणो से हो भव मानवता का पूर्ण विकास।

नव सस्कृति

भाव कर्म मे जहा साम्य हो सतत,
जग जीवन मे हो विचार जन के रत।
ज्ञान-वृद्ध, निष्क्रिय न जहा मानव मन,
मृत आदर्श न वधन, सक्रिय जीवन।
रूढि रीतियाँ जहाँ न हो आराधित,
श्रेणि वर्ग मे मानव नही विभाजित।
धन बल से हो जहा न जन श्रम शोषण,
पूरित भव जीवन के निखिल प्रयोजन।

जहा दैन्य जर्जर, अभाव ज्वर पीड़ित
जीवन यापन हो न मनुज को गर्हित।

युग युग के छाया भावो से त्रासित,
मानव प्रति मानव मन हो न सशकित!
मुक्त जहाँ मन की गति, जीवन मे रति,
भव मानवता मे जन जीवन परिणति!
सस्कृत वाणी, भाव, कर्म, सस्कृत मन,
सुदर हो जन वास, वसन, सुदर तन!
—ऐसा स्वर्ग धरा मे हो समुपस्थित
नव मानव सस्कृति किरणो से ज्योतित!

पुण्य प्रसू

ताक रहे हो गगन?
मृत्यु - नीलिमा - गहन गगन?
अनिमेष, अचितवन, काल-नयन—
नि स्पद, शून्य, निर्जन, नि स्वन!

देखो भू को!
जीव प्रसू को!
हरित भरित
पल्लवित मर्मरित
कुजित गुजित
कुसुमित
भू को!

कोमल
चचल
शाद्वल
अचल, —
कल कल
छल छल
चल-जल-निर्मल, —

कुसुम खचित
मारुत सुरभित
खग कुल कूजित
प्रिय पशु मुखरित—
जिस पर अकित

सुर मुनि वंदित
मानव पद तल !

देखो भू को
स्वर्गिक भू को,
मानव पुण्य-प्रसू को !

चींटी

चींटी को देखा ?
वह सरल, विरल, काली रेखा
तम के तागे सी जो हिल डुल
चलती लघुपद पल पल मिल जुल
वह है पिपीलिका पाँति !
देखो ना, किस भाँति
काम करती वह सतत !
कन-कन कनके चुनती अविरत !

गाय चराती,
धूप खिलाती,
बच्चो की निगरानी करती,
लडती, अरि से तनिक न डरती,
दल के दल सेना सँवारती,
घर, आँगन, जनपथ बुहारती !

देखो वह वल्मीकि सुघर,
उसके भीतर हैं दुर्ग, नगर !
अद्भुत उसकी निर्माण कला,
कोई शिल्पी क्या कहे भला !
उसमें हैं सौध, धाम, जनपथ,
आँगन, गो-गृह, भडार अकथ,
हैं डिम्ब-सद्म, वर शिविर रचित,
ड्योढी बहु, राजमार्ग विस्तृत !
चींटी है प्राणी सामाजिक,
वह श्रमजीवी, वह सुनागरिक !

देखा चींटी को ?
उसके जी को ?

भूरे बालो की सी कतरन,
छिपा नही उसका छोटापन,
वह समस्त पृथ्वी पर निर्भय
विचरण करती, श्रम मे तन्मय,
वह जीवन की चिनगी अक्षय!

वह भी क्या देही है, तिल सी?
प्राणो की रिलमिल झिलमिल सी!
दिन भर मे वह मीलो चलती,
अथक, कार्य से कभी न टलती,
वह भी क्या शरीर से रहती?
वह कण, अणु, परमाणु?
चिर सक्रिय, वह नही स्थाणु!

हा मानव!
देह तुम्हारे ही है, रे शव!
तन की चिता मे घुल निशिदिन
देह मात्र रह गए—दबा तिन!

प्राणि प्रवर
हो गए निछावर
अचिर धूलि पर!!

निद्रा, भय, मैथुनाऽहार
—ये पशु लिप्साएं चार—
हुईं तुम्हे सर्वस्व - सार?

धिक् मैथुन आहार यत्र!
क्या इन्ही बालुका भीतो पर
रचने जाते हो भव्य, अमर
तुम जन समाज का नव्य तत्र?
मिली यही मानव में क्षमता?
पशु, पक्षी, पुष्पो से समता?
मानवता पशुता समान है?
प्राणिशास्त्र देता प्रमाण है?

बाह्य नही, आतरिक साम्य
जीवो से मानव को प्रकाम्य!
मानव को आदर्श चाहिए,
सस्कृति, आत्मोत्कर्ष चाहिए,

बाह्य विधान उसे हैं बधन,
यदि न साम्य उनमे अतरतम—
मूल्य न उनका चीटी के सम,
वे है जड, चीटी हे चेतन!
जीवित चीटी, जीवन वाहक,
मानव जीवन का वर नायक,
वह स्व-तत्र, वह आत्म विधायक!

पूर्ण तत्र मानव, वह ईश्वर,
मानव का विधि उसके भीतर!

पतझर

रिक्त हो रही आज डालियाँ,—डरो न किंचित्
रक्त पूर्ण, मासल होगी फिर, जीवन रंजित!
जन्मशील है मरण, अमर मर मर कर जीवन,
झरता नित प्राचीन, पल्लवित होता नूतन!
पतझर यह, मानव जीवन मे आया पतझर,
आज युगो के बाद हो रहा नया युगातर!
बीत गए बहु हिम, वर्षातप, विभव पराभव,
जग जीवन मे फिर वसत आने को अभिनव!
झरते हो, झरने दो पत्ते,—डरो न किंचित्
नवल मुकुल मजरियो से भव होगा शोभित!
सदियो मे आया मानव जग मे यह पतझर,
सदियो तक भोगोगे नव मधु का वैभव वर!

दो लड़के

मेरे आँगन में, (टीले पर है मेरा घर)
दो छोटे-से लडके आ जाते है अकसर!
नगे तन, गदबदे, साँवले, सहज छबीले,
मिट्टी के मटमैले पुतले,—पर फुर्तीले!
जल्दी से, टीले के नीचे, उधर, उतरकर
वे चुन ले जाते कूडे से निधियाँ सुदर,—

सिगरेट के ख़ाली डिब्बे, पन्नी चमकीली,
फीतों के टुकड़े, तस्वीरें नीली पीली
मासिक पत्रों के कवरों की, औ' बदर-से
किलकारी भरते हैं, खश हो-हो अदर से!
दौड पार आँगन के फिर हो जाते ओझल
वे नाटे छ सात साल के लडके मासल!

सुदर लगती नग्न देह, मोहती नयन-मन,
मानव के नाते उर मे भरता अपनापन!
मानव के बालक हैं ये पासी के बच्चे,
रोम रोम मानव, साँचे मे ढाले सच्चे!
अस्थि मास के इन जीवो का ही यह जग घर,
आत्मा का अधिवास न यह,—वह सूक्ष्म, अनश्वर!
न्योछावर है आत्मा नश्वर रक्त मास पर,
जग का अधिकारी है वह, जो है दुर्बलतर!

वह्नि, बाढ, उल्का, झझा की भीषण भू पर
कैसे रह सकता है कोमल मनुज कलेवर?
निष्ठुर है जड प्रकृति, सहज भगुर जीवित जन,
मानव को चाहिए यहाँ मनुजोचित साधन!
क्यो न एक हो मानव मानव सभी परस्पर
मानवता निर्माण करे जग में लोकोत्तर?
जीवन का प्रासाद उठे भूपर गौरवमय,
मानव का साम्राज्य बने,—मानव हित निश्चय!

जीवन की क्षण-धूलि रह सके जहाँ सुरक्षित,
रक्त मास की इच्छाएँ जन की हो पूरित!
—मनुज प्रेम से जहाँ रह सके,—मानव ईश्वर!
और कौन सा स्वर्ग चाहिए तुझे धरा पर?

मानवपन

इस धरती के रोम रोम मे
भरी सहज सुदरता,
इसकी रज को छू प्रकाश
बन मधुर विनम्र निखरता!

पीले पत्ते, टूटी टहनी,
छिलके, ककर, पत्थर,

कूडा करकट सब कुछ भू पर
लगता सार्थक सुदर।

प्रणत सदा से धरणी इसका
चिर उदार वक्षस्थल
ज्योति तमस, हिम आतप का
मधु, पतझर का रगस्थल।

जीवो की यह धात्री इसकी
मिट्टी का उनका तन,
इस सस्कृत रज का ही प्रतिनिधि
हो सकता मानवपन।

जीव जनित जो सहज भावना
सस्कृति उससे निर्मित,
चिर ममत्व की मधुर ज्योति—
जिससे मानव उर ज्योतित।

रीति नीति वाणी विचार
केवल है उसकी प्रतिकृति,
जीवो के प्रति आत्म बोध ही
मनुष्यत्व की परिणति।

विद्या, वैभव, गुण विशिष्टता
भूषण हो मानव के,
जीव प्रेम के बिना किन्तु ये
दूषण है दानव के।

रक्त मांस का जीव, विविध
दुर्बलताओ से शोभित,
मनुष्यत्व दुर्लभ सुरत्व से,—
निष्कलकता पीड़ित।

व्याधि सभ्यता की है निश्चित
पूर्ण सत्य का पूजन,
प्राण हीन वह कला, नही
जिसमे अपूर्णता शोभन।

. . . . .

सीमाएँ आदर्श सकल,
सीमा विहीन यह जीवन,
दोषो से ही दोष शुद्ध है
मिट्टी का मानवपन।

गंगा की साँझ

अभी गिरा रवि, ताम्र कलश सा,
गगा के उस पार,
क्लात पाथ, जिह्वा विलोल
जल मे रक्ताभ प्रसार,
भूरे जलदो से धूमिल नभ,
विहग छदो-से बिखरे—
धेनु त्वचा - से सिहर रहे
जल मे रोओ - से छितरे।

दूर, क्षितिज मे चित्रित सी
उस तरु माला के ऊपर
उडती काली विहग पाँति
रेखा सी लहरा सुदर।
उडी आ रही हलकी खेवा
दो आरोही लेकर,
नीचे ठीक, तिर रहा जल मे
छाया चित्र मनोहर।

शात, स्निग्ध सध्या सलज्ज मुख
देख रही जल तल मे,
नीलारुण अगो की आभा
छहरी लहरी दल मे।
झलक रहे जल के अचल से
कचु जलद स्वर्ण प्रभ,
चूर्ण कुतलो सा लहरो पर
तिरता घन ऊर्मिल नभ।

द्वाभा का ईषत् उज्वल
कोमल तम धीरे घिर कर
दृश्य पटी को बना रहा
गभीर, गाढ रँग भर भर।
मधुर प्राकृतिक सुषमा यह
भरती विषाद है मन मे,
मानव की जीवित सुदरता
नही प्रकृति दर्शन मे।

पूर्ण हुई मानव अगो मे
सुदरता नैसर्गिक,

शत ऊषा सध्या से निर्मित
नारी प्रतिमा स्वर्गिक !
भिन्न भिन्न वह रही आज
नर नारी जीवन धारा,
युग युग के सेकत कर्दम से
रुद्ध,—छिन्न सुख सारा !

गंगा का प्रभात

गलित ताम्र भव भृकुटि मात्र रवि
रहा क्षितिज से देख,
गगा के नभ नील निकष पर
पडी स्वर्ण की रेख !
आर पार फैले जल मे
घुल कर कोमल आलोक,
कोमलतम बन निखर रहा,
लगता जग अखिल अशोक !

नव किरणो ने विश्वप्राण मे
किया पुलक सचार,
ज्योति जडित बालुका पुलिन
हो उठा सजीव अपार !
सिहर अमर जीवन कपन से
खिल खिल अपने आप,
केवल लहराने को लहराता
लघु लहर कलाप !

सृजन तत्व की सृजन शीलता से
हो अवश, अकाम—
निरुद्देश्य जीवन धारा
बहती जाती अविराम !
देख रहा अनिमेष, हो गया
स्थिर, निश्चल सरिता जल,
बहता हूँ मै, बहते तट,
बहते तरु, क्षितिज, अवनि तल !

यह विराट् भूतो का भव
चिर जीवन मे अनुप्राणित,

विविध विरोधी तत्वो के
सघर्षण से सचालित।
निज जीवन के हित अगणित
प्राणी है इसके आश्रित,
मानव इसका शासक,—आतप,
अनिल, अन्न, जल शासित।

मानव जीवन, प्रकृति चलन मे
जड विरोध कुछ निश्चित,
विजित प्रकृति को कर, उसने की
विश्व सभ्यता स्थापित।
देश काल स्थिति से मानवता
रही सदा ही बाधित,
देश काल स्थिति को वश मे कर
करना है परिचालित।

क्षुद्र व्यक्ति को विकसित होकर
बनना अब जन - मानव,
सामूहिक मानव को निर्मित
करनी है सस्कृति नव।
मानवता के युग प्रभात मे
मानव जीवन धारा
मुक्त अबाध बहे—मानव जग
सुख स्वर्णिम हो सारा!

मूल्यांकन

आज सत्य, शिव, सुदर करता
नही हृदय आकर्षित,
सभ्य, शिष्ट औ' सस्कृत लगते
मन को केवल कुत्सित।
सस्कृति, कला, सदाचारो से
भव मानवता पीडित,
स्वर्ण पीजडे मे बदी है
मानव आत्मा निश्चित!
आज असुदर लगते सुदर,
प्रिय पीडित, शोषित जन,

जीवन के दैन्यो से जर्जर
मानव मुख हरता मन।
मूढ, असभ्य, उपेक्षित, दूषित ही
भू के उपकारक,
धार्मिक, उपदेशक, पडित,
दानी हैं लोक प्रतारक।
धर्म, नीति औ' सदाचार का
मूल्याकन है जन-हित,
सत्य नही वह, जनता से जो
नही प्राण - सबधित।
आज सत्य, शिव, सुन्दर केवल
वर्गों मे हैं सीमित,
ऊर्ध्वमूल सस्कृति को होना
अधोमूल रे निश्चित!

मार्क्स के प्रति

दतकथा, वीरो की गाथा, सत्य, नही इतिहास,
सम्राटो की विजय लालसा, ललना भृकुटि विलास,
देव नियति का निर्मम क्रीडा चक्र न वह उच्छृखल,—
धर्मान्धता, नीति, सस्कृति का ही न मात्र समर स्थल।
साक्षी है इतिहास, किया तुमने दुन्दुभि से घोषित,—
प्रकृति विजित कर, मानव ने की विश्व सभ्यता स्थापित!
विकसित हो, बदले जब जब जीवनोपाय के साधन,
युग बदले, शासन बदले, कर गत सभ्यता समापन।
सामाजिक सबंध बने नव, अर्थ भित्ति पर नूतन,
नव विचार, नव रीति नीति, नव नियम, भाव, नव दर्शन।
साक्षी है इतिहास, आज होने को पुन' युगातर,
श्रमिको का अब शासन होगा उत्पादन यत्रो पर।
वर्गहीन सामाजिकता देगी सबको सम साधन,
पूरित होगे जन के भव जीवन के निखिल प्रयोजन।
दिग् दिगत मे व्याप्त, निखिल युग युग का चिर गौरव हर,
जन सस्कृति का नव विराट् प्रासाद उठेगा भू पर,
धन्य मार्क्स! चिर तमच्छन्न पृथ्वी के उदय शिखर पर
तुम त्रिनेत्र के ज्ञान चक्षु-से प्रकट हुए प्रलयंकर!

भूत दर्शन

कहता भौतिकवाद, वस्तु जग का कर तत्वान्वेषण.—
भौतिक भव ही एक मात्र मानव का अतर दर्पण!
स्थूल सत्य आधार, सूक्ष्म आधेय, हमारा जो मन,
बाह्य विवर्तन से होता युगपत् अतर परिवर्तन!

राष्ट्र, वर्ग, आदर्श, धर्म, गत रीति नीति औ' दर्शन
स्वर्ण पाश है मुक्ति योजना सामूहिक जन जीवन!
दर्शन युग का अत, अत विज्ञानो का सघर्षण,
अब दर्शन - विज्ञान सत्य का करता नव्य निरूपण!

नवोद्‌भूत इतिहास भूत सक्रिय, सकरण, जड चेतन
द्वन्द्व तर्क से अभिव्यक्ति पाता युग युग में नूतन,
अस्त आज साम्राज्यवाद, धनपति वर्गों का शासन,
प्रस्तर युग की जीर्ण सभ्यता मरणासन्न, समापन!

साम्यवाद के साथ स्वर्ण युग करता मधुर पदार्पण,
मुक्त निखिल मानवता करती मानव का अभिवादन!

साम्राज्यवाद

परिवर्तन ही जग जीवन का नियम चिरतन, दुर्जय,
साक्षी है इतिहास युगो का प्रत्यावर्तन अभिनय!
मुखियो के, कुलपति, सामत, महतो के वैभव क्षण
बिला गए बहु राजतत्र,—सागर मे ज्यो बुद्‌बुद कण!

रजत स्वप्न साम्राज्यवाद का ले नयनो मे शोभन
पूँजीवाद निशा भी है होने को आज समापन!

विविध ज्ञान, विज्ञ न, कला, यत्रो का अद्‌भुत कौशल,
जग को दे बहु जीवन साधन, वाष्प, रश्मि, विद्युत् बल,
मरणोन्मुख साम्राज्यवाद, कर वह्नि और विष वर्षण
अतिम रण को है सचेष्ट, रच निज विनाश आयोजन!

विश्व क्षितिज में घिरे पराभव के है मेघ भयकर,
नव युग का सूचक है निश्चय यह ताडव प्रलयकर!
जन युग की स्वर्णिम किरणो से होगी भू आलोकित,
नव सस्कृति के नव प्ररोह होगे शोणित से सिंचित!!

समाजवाद-गांधीवाद

साम्यवाद ने दिया विश्व को नव भौतिक दर्शन का ज्ञान,
अर्थशास्त्र - औ' - राजनीति - गत विशद ऐतिहासिक विज्ञान।
साम्यवाद ने दिया जगत को सामूहिक जनतत्र महान,
भव जीवन के दैन्य दुख से किया मनुजता का परित्राण।

अतर्मुख अद्वैत पडा था युग युग से निष्क्रिय, निष्प्राण,
जग मे उसे प्रतिष्ठित करने दिया साम्य ने वस्तु विधान।
गाधीवाद जगत मे आया ले मानवता का नव मान,
सत्य अहिसा से मनुजोचित नव सस्कृति करने निर्माण।

गाधीवाद हमे देता जीवन पर अतर्गत विश्वास,
मानव की निःसीम शक्ति का मिलता उससे चिर आभास।
व्यक्ति पूर्ण बन, जग जीवन मे भर सकता है नूतन प्राण,
विकसित मनुष्यत्व कर सकता पशुता से जन का कल्याण।

मनुष्यत्व का तत्व सिखाता निश्चय हमको गाधीवाद,
सामूहिक जीवन विकास की साम्य योजना है अविवाद।

धनपति

वे नृशंस है · वे जन के श्रमबल से पोषित,
दुहरे धनी, जोक जग के, भू जिनसे शोषित।
नही जिन्हे करनी श्रम से जीविका उपार्जित,
नैतिकता से भी रहते जो अत अपरिचित!

शय्या की क्रीडा कदुक है उनको नारी,
अहमन्य वे, मूढ, अर्थबल के व्यभिचारी।
सुरागना, सपदा, सुराओ से संसेवित,
नर पशु वे . भू भार मनुजता जिनसे लज्जित।

दर्पी, हठी, निरंकुश, निर्मम, कलुषित, कुत्सित,
गत सस्कृति के गरल, लोक जीवन जिनसे मृत।
जग जीवन का दुरुपयोग है उनका जीवन,
अब न प्रयोजन उनका, अतिम है उनके क्षण।

मध्यवर्ग

सस्कृति का वह दास विविध विश्वास विधायक,
निखिल ज्ञान, विज्ञान, नीतियो का उन्नायक।
उच्च वर्ग की सुविधा का शास्त्रोक्त प्रचारक,
प्रभु सेवक, जन वचक वह, निज वर्ग प्रतारक।
भोग शील, धनिको का स्पर्धी, जीवन-प्रिय अति,
आत्म वृद्ध, सकीर्ण हृदय, तार्किक, व्यापक मति।
पाप पुण्य सत्रस्त, अस्थियो का बहु कोमल,
वाक् कुशल, धी दर्पी, अति विवेक से निर्बल।
मध्यवर्ग का मानव, वह परिजन पत्नी प्रिय,
यशकामी, व्यक्तित्व प्रसारक, पर हित निष्क्रिय।
श्रमजीवी वह, यदि श्रमिको का हो अभिभावक,
नवयुग का वाहक हो, नेता, लोक प्रभावक।

कृषक

युग युग का वह भारवाह, आकटि नत मस्तक,
निखिल सभ्य ससार पीठ का उसके स्फोटक।
वज्र मूढ, जड भूत, हठी, वृष बाधव कर्षक,
ध्रुव, ममत्व की मूर्ति, रूढियो का चिर रक्षक।
कर जर्जर, ऋण ग्रस्त, स्वल्प पैत्रिक स्मृति भू-धन,
निखिल दैन्य, दुर्भाग्य, दुरित, दुख का जो कारण,—
वह कुवेर निधि उसे,—स्वेद सिंचित जिसके कण,
हर्ष शोक की स्मृति के बीते जहाँ वर्ष क्षण।
विश्व विवर्तनशील, अपरिवर्तित वह निश्चल,
वही खेत, गृह-द्वार, वही वृष, हँसिया औ' हल।
स्थावर स्थितियो का शिशु, स्थावर, स्थाणु कृषीवल,
दीर्घसूत्र, अति दुराग्रही, साशक औ' वृषल।
है पुनीत सपत्ति उसे देवी निधि निश्चित,
सततिवत् गो वृषभ, गुल्म, तृण, तरु चिर परिचित।
वह सकीर्ण, समूह कृपण, स्वाश्रित, पर पीडित,
अति निजस्व प्रिय, शोषित, लुठित, दलित, क्षुधार्दित।
युग युग से निसग, स्वीय श्रमबल से जीवित,
विश्व प्रगति अनभिज्ञ, कूप तम मे निज सीमित,

कर्षक का उद्धार पुण्य इच्छा है कल्पित,
सामूहिक कृषि काय - कल्प, अन्यथा कृषक मृत!

श्रमजीवी

वह पवित्र है वह, जग के कर्दम से पोषित,
वह निर्माता – श्रेणि, वर्ग, धन, बल से शोषित!
मूढ, अशिक्षित,–सभ्य शिक्षितो से वह शिक्षित,
विश्व उपेक्षित,–शिष्ट सस्कृतो से मनुजोचित!
दैन्य कष्ट कुठित,–सुदर है उसका आनन,
गदे गात वसन हो, पावन श्रम का जीवन!
स्नेह साम्य सौहार्द्यपूर्ण तप से उसका मन,
वह सगठित करेगा भावी भव का शासन!

भूख प्यास से पीडित उसकी भद्दी आकृति,
स्पष्ट कथा कहती,–कैसी इस युग की सस्कृति!
वह पशु से भी घृणित मनुज–मानव की है कृति!
जिसके श्रम से सिची समृद्धो की पृथु सपति!
मोह सपदा अधिकारो का उसे न किचित्,
कार्य कुशल यत्री वह, श्रम पटुता से जीवित!
शीत ताप, औ' क्षुधा तृषा मे सदा सयमित,
दृढ चरित्र वह, दुख सहिष्णु, ध्रुव धीर, अभय चित!

लोक क्रान्ति का अग्रदूत, वर वीर, जनादृत,
नव्य सभ्यता का उन्नायक, शासक, शासित,–
चिर पवित्र वह भय, अन्याय, घृणा से पालित,
जीवन का शिल्पी,–पावन श्रम से प्रक्षालित!

घन नाद

ठङ ठङ ठन!
लौह नाद से ठोक पीट घन
निर्मित करता श्रमिको का मन,
ठङ ठङ् ठन!
'कर्म क्लिष्ट मानव भव जीवन,
श्रम ही जग का शिल्पि चिरतन',–

कठिन सत्य जीवन का क्षण क्षण
घोषित करता घन वज्र स्वन,—
'व्यर्थ विचारो का सघर्षण
अविरत श्रम ही जीवन साधन,
लौह काष्ठ मय, रक्त मास मय
वस्तु रूप ही सत्य चिरतन!'
ठङ् ठङ् ठन!

अग्नि स्फुलिगो का कर चुबन
जाग्रत् करता दिग् दिगत घन,—
'जागो, श्रमिको, बनो सचेतन,
भू के अधिकारी है श्रमजन!'
'मास पेशियाँ हृष्ट पुष्ट, घन,
बटी शिराएँ, श्रम बलिष्ठ तन,
भू का भव्य करेगे शासन,
चिर लावण्यपूर्ण श्रम के कण!'
ठङ ठङ ठन!

कर्म का मन

भव का जीवन मन का जीवन,
कार्यार्थी को है मन बधन!
अवचेतन मन से होता रे,
चेतन मन सतत सचालित,
मन के दर्पण मे भव की छवि
रजित होकर होती बिम्बित!

रूप जगत की प्रतिछाया यह
भाव जगत मानस का निश्चित,
गत युग का मृत सगुण आज
मानव मन की गति करता कुठित!

अत कर्म को प्रथम स्थान दो,
भाव जगत कर्मो से निर्मित,
निखिल विचार, विवेक, तर्क
भव-रूप-कर्म को करो समर्पित!

प्रथम कर्म, कहता जन दर्शन,
पीछे रे सिद्धात, मन, वचन!

मानव पशु

मानव के पशु के प्रति
हो उदार नव सस्कृति !
युग युग से रच शत शत नैतिक बधन,
बाँध दिया मानव ने पीडित पशु तन !
विद्रोही हो उठा आज पशु दर्पित,
वह न रहेगा अब नव युग मे गर्हित !
नही सहेगा रे वह अनुचित ताडन,
रीति नीतियो का गत निर्मम शासन !
वह भी क्या मानव जीवन का लाछन ?
वह, मानव के देव भाव का वाहन !
नही रहे जीवनोपाय तब विकसित,
जीवन यापन कर न सके सब इच्छित !
नैतिक सीमाएँ बहु कर निर्धारित,
जीवन इच्छा की जन ने मर्यादित !
भू मानव के श्रेयस् के हित निश्चित
पशु ने अपनी बलि दी, देवो के हित !
जीवन के उपकरण अखिल कर अधिकृत
गत युग का पशु हुआ आज मनुजोचित !
देव और पशु, भावो में जो सीमित,
युग युग मे होते परिवर्तित, अवसित !
मानव पशु ने किया आज भव अर्जित,
मानब देव हुआ अब वह सम्मानित !
मानव के पशु के प्रति
मध्यवर्ग की हो रति !

नर की छाया

पुरुषो ही की आँखो से
नित देख देख अपना तन,
पुरुषो ही के भावो से
अपने प्रति भर अपना मन,—
लो, अपनी ही चितवन से
वह हो उठती है लज्जित,

अपने ही भीतर छिप छिप
जग से हो गई तिरोहित।
वह नर की छाया नारी।
चिर नमित नयन, पद विजडित,
वह चकित, भीत हिरनी सी
निज चरण चाप से शकित।
मानव की चिर सहधर्मिणि,
युग युग से मुख अवगुठित,
स्थापित घर के कोने मे
वह दीप शिखा सी कपित।
करती वह जीवन यापन
युग युग से पशु सी पालित,
बदिनी काम कारा की,
आदर्श नीति परिचालित।।

बंद तुम्हारे द्वार !

बद तुम्हारे द्वार?
मुसकाती प्राची मे ऊषा
ले किरणो का हार,
जागी सरसी मे सरोजिनी,
सोई तुम इस बार?
बद तुम्हारे द्वार?
नव मधु मे,—अस्थिर मलयानिल,
भौरो मे गुजार,
विहग कठ मे गान,
मौन पुष्पो मे सौरभ भार,
बद तुम्हारे द्वार?
प्राण। प्रतीक्षा मे प्रकाश
औ' प्रेम बने प्रतिहार!
पथ दिखलाने को प्रकाश,
तुमसे मिलने को प्यार!
बद तुम्हारे द्वार?
गीत हर्ष के पख मार
आकाश कर रहे पार,

भेद सकेगी नही हृदय
प्राणो की मर्म पुकार!
बद तुम्हारे द्वार?
आज निछावर सुरभि,
खुला जग मे मधु का भडार,
दबा सकोगी तुम्ही आज
उर मे मधु जीवन ज्वार?
बद तुम्हारे द्वार!

उन्मेष

मौन रहेगा ज्ञान,
स्तब्ध निखिल विज्ञान!
क्राति पालतू पशु सी होगी शात,
तर्क बुद्धि के वाद लगेगे भ्रात!
राजनीति औ' अर्थशास्त्र
होगे सघर्ष परास्त
धर्म, नीति, आचार—
रुँधेगी सबकी क्षीण पुकार!
जीवन के स्वर मे हो प्रकट महान
फूटेगा जीवन रहस्य का गान!
क्षुधा, तृषा औ' स्पृहा, काम से ऊपर,
जाति, वर्ग औ' देश, राष्ट्र से उठकर,
जीवित स्वर मे, व्यापक जीवन गान
सद्य करेगा मानव का कल्याण!

राग

राग, केवल राग!
छिपी चराचर के अतर मे
अनिर्वाप्य चिर आग,—
राग, केवल राग!
गूढ राग का सवेदन ही
जीवन का इतिहास,

राग शक्ति का विपुल समन्वय
जन समाज, सवास।

निखिल ज्ञान, विज्ञानो मे
वह पाता नव अभिव्यक्ति,
राग तत्व ही मूल धातु,
सस्कृतियाँ रूप, विभक्ति।

दुर्निवार यह राग, राग का
रूप करो निर्माण,
वेष्टित करो राग से भव,–
हो जन जीवन कल्याण।

रूप सत्य

मुझे रूप ही भाता।
प्राण! रूप ही मेरे उर मे
मधुर भाव बन जाता।
मुझे रूप ही भाता।

जीवन का चिर सत्य
नही दे सका मुझे परितोष,
मुझे ज्ञान से वस्तु सुहाती,
सूक्ष्म बीज से कोष।

सच है, जीवन के वसत मे
रहता है पतझार,
वर्ण गधमय कलि कुसुमो का
पर, ऐश्वर्य अपार।

राशि राशि सौन्दर्य, प्रेम,
आनद, गुणो का द्वार,
मुझे लुभाता रूप रग
रेखा का यह ससार।

मुझे रूप ही भाता!
प्राण! रूप का सत्य,
रूप के भीतर नही समाता।
मुझे रूप ही भाता।

मुझे स्वप्न दो

मुझे स्वप्न दो, मुझे स्वप्न दो !
हे जीवन के जागरूक !
जीवन के नव नव मुझे स्वप्न दो !

स्वप्न जागरण हो यह जीवन,
स्वप्न पुलक स्मित तन, मन, यौवन,
मेरे स्वप्नो के प्रकाश मे
जग का अधकार जाए सो !

वस्तु - ज्ञान से ऊब गया मै,
सूखे मरु मे डूब गया मै,
मेरे स्वप्नो की छाया मे
जग का वस्तु सत्य जाए खो !

शिशिर शयित जग जीवन वन मे
हो पल्लवित स्वप्न नव, क्षण मे,
मेरे कार्यो मे, वाणी मे
नव नव स्वप्नो का गुजन हो !
हे जीवन के जागरूक !
भव जीवन के नव मुझे स्वप्न दो !

जीवन स्पर्श

क्यो चचल, व्याकुल जन ?
फूट रहा मधुवन मे जो सौन्दर्योल्लास,
कलि कुसुमो में राग रगमय शक्ति विकास,—
आकुल इसीलिए जन-जन-मन !

दौड रही रक्तिम पलाश में जीवन ज्वाल,
आम्र मौर मे मदिर गध, तरुओ मे तरुण प्रवाल !
विहग युग्म हो विह्वल सुख से आप
पखो से प्रिय पख मिला करते मृदु प्रेमालाप—
अखिल विघ्न, भय, बाधाएँ कर पार
शीत, ताप, झझा के सह बहु वार,
कौन शक्ति सजती जीवन का वासती श्रृगार ?
सभी उसी के हेतु विकल मन,
उसी शक्ति का पाने जीवन स्पर्श,

रोम रोम मे भरने विद्युत् हर्ष,
चिर चचल, व्याकुल जन।

पलाश !

मरकत वन मे आज तुम्हारी नव प्रवाल की डाल
जगा रही उर मे आकुल आकाक्षाओ की ज्वाल।
पीपल, चिलबिल, आम्र, नीम की पल्लव श्री सुकुमार,—
तुम्ही उठाए हो, पर, वसुधा का मधु यौवन भार।
वर्ण वर्ण की हरीतिमा का वन मे भरा विकास,
तुम नव मधु की निखिल कामनाओ के प्रिय उच्छ्वास।
शत शत पुष्पो की, रगो की रत्नच्छटा, पलाश,
प्रकट नही कर सकती यह वैभव पुष्कल उल्लास।

स्वर्ण मजरित आम्र आज, औ' रजत ताम्र कचनार
नील कोकिला की पुकार नव, पीत भृग गुजार,—
वर्ण स्वरो से मुखर तुम्हारे मौन पुष्प अगार
यौवन के नव रक्त तेज का जिनमे मदिर उभार।
हृदय रुधिर ही अर्पित कर मधु को, अर्पण श्री शाल।
तुमने जग मे आज जला दी दिशि दिशि जीवन ज्वाल।

पलाश के प्रति

प्राप्त नही मानव जग को यह मर्मोज्वल उल्लास
जो कि तुम्हारी डाल डाल पर करता सहज विलास।
आज प्रलय ज्वाला मे ज्यो गल गए विश्व के पाश,
जीवन की हिल्लोल लोल उमडी छूने आकाश।
आकाक्षाएँ अखिल अवनि की हुई पूर्ण उन्मुक्त,
यह रक्तोज्वल तेज धरा के जीवन के उपयुक्त।
उद्भिज के जीवन विकास मे हुआ नवीन प्रभात,
तरुओ का हरिताधकार हो उठा ज्योति अवदात।

नव जीवन का रुधिर शिराओ मे कर वहन, पलाश,
तृण तरु जग से मानव जग मे तुमने भरा प्रकाश।
यह शोभा, यह शक्ति, दीप्ति यह यौवन की उद्दाम,
भरती मन मे ओज, दृगो को लगती प्रिय, अभिराम।

जीवन की आकाक्षाओ का यह सौन्दर्य अमद,
मानव भी उपभोग कर सके, मुक्त, स्वस्थ आनद।

बदली का प्रभात

निशि के तम मे झर झर
हलकी जल की फुही
धरती को कर गई सजल।
अँधियाली मे छन कर
निर्मल जल की फुही
तृण तरु को कर उज्वल।
बीती रात,–
धूमिल सजल प्रभात
वृष्टि शून्य, नव स्नात।
अलस, उनीदा मा जग,
कोमलाभ, दृग सुभग।
कहाँ मनुज को अवसर
देखे मधुर प्रकृति मुख?
भव अभाव से जर्जर,
प्रकृति उसे देगी सुख?

दो मित्र

उस निर्जन टीले पर
दोनो चिलबिल
एक दूसरे से मिल,
मित्रो-से है खडे,
मौन, मनोहर।
दोनो पादप
सह वर्षातप,
हुए साथ ही बड़े,
दीर्घ, सुदृढ़तर!
पतझर मे सब पत्र गए झर,
नग्न, धवल डालो पर

पतली, टेढी टहनी अगणित
शिरा जाल सी फैली अविरल,—
तरुओ की रेखा छवि अविकल
भू पर कर छायाकित।

नील, निरभ्र गगन पर
चित्रित-से दो तरुवर
आँखो को लगते है सुदर,
मन को सुखकर।

झंझा में नीम

सर् सर् मर् मर्
रेशम के-से स्वर भर,
घने नीम दल
लबे, पतले, चचल,
श्वसन स्पर्श से
रोम हर्ष से
हिल हिल उठते प्रतिपल।

वृक्ष शिखर से भू पर
शत शत मिश्रित ध्वनि कर
फूट पडा, लो, निर्झर,—
मरुत,—कम्प्र, अर .
झूम झूम, झुक झुक कर,
भीम नीम तरु निर्भर
सिहर सिहर थर् थर् थर्
करता सर् मर्
चर् मर्।

लिप पुत गए निखिल दल
हरित गुज मे ओझल,—
वायु वेग से अविरल
धातु पत्र-से बज कल।
खिसक, सिसक, साँसें भर,
भीत, पीत, कृश, निर्बल,
नीम दल सकल
झर झर पडते पल पल।

कृष्ण घन !

मुसकाओ हे भीम कृष्ण घन !
गहन भयावह अधकार को
ज्योति मुग्ध कर चमको कुछ क्षण !

दिग् विदीर्ण कर, भर गुरु गर्जन,
चीर तडित् से अध आवरण,
उमड घुमड, घिर रूम झूम, हे,
बरसाओ नव जीवन के कण !
घूम घूम छा निर्भर अबर,
झूल झूल झझा झोको पर,
हे दुर्दम उद्दाम, हरो
भव ताप, दाप, अभिमत कर सिचन !

इद्रचाप से कर दिशि चित्रित
बर्हभार से केकी पुलकित,
हरित भरित हे करो धरणि को
हो करुणार्द्र, घोर वज्र स्वन !

आवेश

ज्यो मधुवन मे गूँजते भ्रमर,
ज्यो आम्र कुज मे पिकी मुखर,
मेरी उर तत्री से रह रह
फूटते मधुर गीतो के स्वर !

ज्यो झरते हरसिगार झर झर
ज्यो हिम फुहार कण फहर फहर,
मेरे मानस से सुदरता
नि सृत होती त्यो निखर निखर !

गिरि उर से ज्यो बहते निर्झर,
रवि शशि से तिग्म मधुरतर कर,
मेरे मन की आवेश शाति
गीतो में पडती बिखर बिखर !

तुम ईश्वर

सीमाओ मे ही तुम असीम,
बधन नियमो मे मुक्ति सतत,
बहु रूपो मे नित एक रूप,
सघर्षों मे ही शाति महत्!

कलुषित दूषित मे चिर पवित्र,
कुत्सित कुरूप मे तुम सुदर,
खडित कुठित में पूर्ण सदा,
क्षणभगुर मे तुम नित्य अमर!

तुम पतित क्षुद्र मे चिर महान्,
परित्यक्तो के जीवन सहचर,
तुम विपथ गामियो के चिर पथ,
जीवन-मृत के नव जीवन वर!

तुम बाधा विघ्नो मे हो बल,
जीवन के तम मे चिर भास्वर,
असफलताओ मे इष्ट सिद्धि,
तुम जीवो मे ही हो ईश्वर!

वाणी

वाणी, वाणी,
जीवन की वाणी दो मुझको भास्वर!
मौन गगन को भेद
बोलते जिस वाणी मे उडुचर,
जिसमे नीरव गिरि से नि सृत
होते मुखरित निर्झर!

जिस वाणी मे मेघ गरजते,
लहरा उठते सागर,
जिसमे नित दामिनी दमकती,
मोर नाचते सुदर!

वाणी वाणी,
मुझे वस्तु वाणी दो पूर्ण चिरतन!
जिस वाणी मे छू मलयानिल
पुलको से भरता तन,

जिसमे मृदु मुख कुसुम खोलते,
अणु अणु करते नर्तन !

जिस वाणी मे क्षुधा, तृषा
औ' काम दीप्त करते तन,
जिसमे इच्छा, सुख दुख उठते,
आते शैशव, यौवन !

वाणी, वाणी,
मुझे सृष्टि की वाणी दो अविनश्वर !
जो बहु वर्ण, गध, रूपो मे
करती सृजन निरतर,
जिस वाणी मे अनुभव करते
चुपके निखिल चराचर !

जो वाणी चिर जन्म मरण,
तम औ' प्रकाश से है पर,
जो वाणी जीवन की जीवन,
शाश्वत, सुदर, अक्षर !
वाणी, वाणी
मुझको दो घट घट की वाणी के स्वर !

ग्राम कवि

यहाँ न पल्लव वन मे मर्मर,
यहाँ न मधु विहगो मे गुजन,
जीवन का सगीत बन रहा
यहाँ अतृप्त हृदय का रोदन!

यहाँ नही शब्दो मे बँधती
आदर्शों की प्रतिमा जीवित,
यहाँ व्यर्थ है चित्र गीत मे
सुदरता को करना सचित!

यहाँ धरा का मुख कुरूप है,
कुत्सित गर्हित जन का जीवन,
सुदरता का मूल्य वहाँ क्या
जहाँ उदर है क्षुब्ध, नग्न तन?—

जहाँ दैन्य जर्जर असख्य जन
पशु-जघन्य क्षण करते यापन,
कीडो-से रेगते मनुज शिशु,
जहाँ अकाल वृद्ध है यौवन!

सुलभ यहाँ रे कवि को जग मे
युग का नही सत्य शिव सुदर,
कँप कँप उठते उसके उर की
व्यथा विमूर्छित वीणा के स्वर!

ग्राम

बृहद् ग्रथ मानव जीवन का, काल ध्वस से कवलित,
ग्राम आज है पृष्ठ जनो की करुण कथा का जीवित!
युग युग का इतिहास सभ्यताओ का इसमे सचित,
सस्कृतियो की ह्रास वृद्धि जन शोषण से रेखाकित!

हिंस्र विजेताओ, भूपो के आक्रमणो की निर्दय,
जीर्ण हस्तलिपि यह नृशस गृह सघर्षों की निश्चय।
धर्मों का उत्पात, जातियो वर्गों का उत्पीडन
इसमे चिर सकलित रूढि, विश्वास, विचार सनातन।
घर घर के बिखरे पन्नो में नग्न, क्षुधार्त कहानी,
जन मन के दयनीय भाव कर सकती प्रकट न वाणी।
मानव दुर्गति की गाथा से ओत प्रोत मर्मातक
सदियो के अत्याचारो की सूची यह रोमाचक।

मनुष्यत्व के मूलतत्व ग्रामो ही मे अतर्हित,
उपादान भावी सस्कृति के भरे यहाँ है अविकृत।
शिक्षा के सत्याभासो से ग्राम नही है पीडित,
जीवन के सस्कार अविद्या-तम मे जन के रक्षित।

ग्राम चित्र

यहाँ नही है चहल पहल वैभव विस्मित जीवन की,
यहाँ डोलती वायु, म्लान सौरभ मर्मर ले वन की।
आता मौन प्रभात अकेला, सध्या भरी उदासी,
यहाँ घूमती दोहपरी मे स्वप्नो की छाया सी।
यहाँ नहीं विद्युत् दीपो का दिवस निशा मे निर्मित,
अँधियाली मे रहती गहरी अँधियाली भय कल्पित।

यहाँ खर्व नर (बानर ?) रहते, युग युग से अभिशापित,
अन्न वस्त्र पीडित असभ्य, निर्बुद्धि, पक मे पालित।
यह तो मानव लोक नही है, यह रे नरक अपरिचित,
यह भारत का ग्राम,—सभ्यता, सस्कृति से निर्वासित।
झाड फूँस के विवर,—यही क्या जीवन शिल्पी के घर?
कीडो - से रेगते कौन ये? बुद्धिप्राण नारी नर?
अकथनीय क्षुद्रता, विवशता भरी यहाँ के जग मे,
गृह गृह में है कलह, खेत मे कलह, कलह है मग मे।

यह रवि शशि का लोक,—जहाँ हँसते समूह मे उडगण,
जहाँ चहकते विहग, बदलते क्षण क्षण विद्युत् प्रभ घन।
यहाँ वनस्पति रहते, रहती खेतो की हरियाली,
यहाँ फूल है, यहाँ ओस, कोकिला, आम की डाली।
ये रहते है यहाँ,—और नीला नभ, बोई धरती,
सूरज का चौडा प्रकाश, ज्योत्स्ना चुपचाप विचरती।

प्रकृति धाम यह तृण तृण, कण कण जहाँ प्रफुल्लित जीवित,
यहाँ अकेला मानव ही रे चिर विषण्ण जीवन-मृत!

ग्राम युवती

उन्मद यौवन से उभर
घटा सी नव असाढ की सुदर,
अति श्याम वरण,
श्लथ, मद चरण,
इठलाती आती ग्राम युवति
वह गज गति
सर्प डगर पर!

सरकाती पट,
खिसकाती लट,—
शरमाती झट
वह नमित दृष्टि से देख उरोजो के युग घट!
हँसती खलखल
अबला चचल
ज्यो फूट पडा हो स्रोत सरल
भर फेनोज्वल दशनो से अधरो के तट!

वह मग मे रुक,
मानो कुछ झुक,
आँचल सँभालती, फेर नयन मुख,
पा प्रिय पद की आहट!
आ ग्राम युवक,
प्रेमी याचक,
जब उसे ताकता है इकटक,
उल्लसित,
चकित,
वह लेती मूँद पलक पट!

पनघट पर
मोहित नारी नर!—
जब जल से भर
भारी गागर

खीचती उबहनी वह, बरबस
चोली से उभर उभर कसमस
खिचते सँग युग रस भरे कलश,–
जल छलकाती
रस बरसाती,
बलखाती वह घर को जाती,
सिर पर घट,
उर पर धर पट।

कानो मे गुडहल
खोस, –धवल
या कुई, कनेर, लोध पाटल,
वह हरसिगार से कच सँवार,
मृदु मौलसिरी के गूँथ हार,
गउओ सँग करती वन विहार,
पिक चातक के सँग दे पुकार,–
वह कुद, काँस से,
अमलतास से,
आम्र मौर, सहजन, पलाश से,
निर्जन मे सज ऋतु सिगार।

तन पर यौवन सुषमाशाली,
मुख पर श्रमकण, रवि की लाली,
सिर पर धर स्वर्ण शस्य डाली,
वह मेंडो पर आती जाती,
उरु मटकाती,
कटि लचकाती,
चिर वर्षातप हिम की पाली
धनि श्याम वरण,
अति क्षिप्र चरण
अधरो से धरे पकी बाली।

रे दो दिन का
उसका यौवन।
सपना छिन का
रहता न स्मरण!
दु खो से पिस,
दुर्दिन मे घिस,

जर्जर हो जाता उसका तन।
ढह जाता असमय यौवन धन।
बह जाता तट का तिनका
जो लहरो से हँस खेला कुछ क्षण।।

ग्राम नारी

स्वाभाविक नारी जन की लज्जा से वेष्टित,
नित कर्म निष्ठ, अगो की हृष्ट पुष्ट सुदर,
श्रम से है जिसके क्षुधा काम चिर मर्यादित,
वह स्वस्थ ग्राम नारी, नर की जीवन सहचर।
वह शोभा पात्र नही कुसुमादपि मृदुल गात्र,
वह नैसर्गिक जीवन सस्कारो से चालित,
सत्याभासो में पली न छाया मूर्ति मात्र,
जीवन रण में सक्षम, सघर्षो से शिक्षित।

वह वर्ग नारियो सी न सुज्ञ, सस्कृत कृत्रिम,
रजित कपोल भ्रू अधर, अग सुरभित वासित,
छाया प्रकाश की सृष्टि,—उसे सम ऊष्मा हिम,
वह नही कुलो की काम बदिनी अभिशापित!
स्थिर, स्नेह स्निग्ध है उसका उज्वल दृष्टिपात,
वह द्वन्द्व ग्रथि से मुक्त मानवी है प्राकृत,
नागरियो का नट रग प्रणय उसको न ज्ञात,
सम्मोहन, विभ्रम, अग भगिमा में अपठित।

उसमे यत्नो से रक्षित, वैभव से पोषित,
सौन्दर्य मधुरिमा नही, न शोभा सौकुमार्य,
वह नही स्वप्नशायिनी प्रेयसी ही परिचित,
वह नर की सहधर्मिणी, सदा प्रिय जिसे कार्य।
पिक चातक की मादक पुकार से उसका मन
हो उठता नही प्रणय स्मृतियो से आदोलित,
चिर क्षुधा शीत की चीत्कारे, दुख का ऋदन,
जीवन के पथ से उसे नही करते विचलित।

है मास पेशियो मे उसकी दृढ कोमलता,
सयोग अवयवो मे, अश्लथ उसके उरोज,
कृत्रिम रति की है नही हृदय मे आकुलता,
उद्दीप्त न करता उसे भाव कल्पित मनोज।

वह स्नेह, शील, सेवा, ममता की मधुर मूर्ति,
यद्यपि चिर दैन्य, अविद्या के तम से पीडित,
कर रही मानवी के अभाव की आज पूर्ति,
अग्रजा नागरी की, यह ग्राम वधू निश्चित।

वे आँखे

अधकार की गुहा सरीखी
उन आँखो से डरता है मन,
भरा दूर तक उनमे दारुण
दैन्य दुख का नीरव रोदन।
अह, अथाह नैराश्य, विवशता का
उनमे भीषण सूनापन,
मानव के पाशव पीडन का
देती वे निर्मम विज्ञापन।

फूट रहा उनसे गहरा आतक,
क्षोभ, शोषण, सशय, भ्रम,
डूब कालिमा मे उनकी
कँपता मन, उनमे मरघट का तम।
ग्रस लेती दर्शक को वह
दुर्ज्ञेय, दया की भूखी चितवन,
झूल रहा उस छाया-पट मे,
युग युग का जर्जर जन जीवन।

वह स्वाधीन किसान रहा
अभिमान भरा आँखो मे इसका,
छोड उसे मँझधार आज
ससार कगार सदृश वह खिसका।
लहराते वे खेत दृगो मे
हुआ बेदखल वह अब जिनसे,
हँसती थी उसके जीवन की
हरियाली जिनके तृन तृन से।

आँखो ही मे घूमा करता
वह उसकी आँखो का तारा,
कारकुनो की लाठी से जो
गया जवानी ही मे मारा।

बिका दिया घर द्वार,
महाजन ने न व्याज की कौडी छोडी,
रह रह आँखो मे चुभती वह
कुर्क हुई बरधो की जोडी।

उजरी उसके सिवा किसे कब
पास दुहाने आने देती?
अह, आँखो मे नाचा करती
उजड गई जो सुख की खेती।
बिना दवा दर्पन के गृहिनी
स्वरग चली,—आँखे आती भर,
देख रेख के बिना दुधमुँही
बिटिया दो दिन बाद गई मर।

घर में बिधवा रही पतोहू,
लछमी थी, यद्यपि पति घातिन,
पकड मँगाया कोतवाल ने,
डूब कुएँ मे मरी एक दिन।
खैर, पैर की जूती, जोरू
न सही एक, दूसरी आती,
पर जवान लडके की सुध कर
साँप लोटते, फटती छाती।

पिछले सुख की स्मृति आँखो मे
क्षण भर एक चमक है लाती,
तुरत शून्य मे गड वह चितवन,
तीखी नोक सदृश बन जाती।
मानव की चेतना न ममता
रहती तब आँखो मे उस क्षण,
हर्ष, शोक, अपमान, ग्लानि,
दुख दैन्य न जीवन का आकर्षण।

उस अवचेतन क्षण में मानो
वे सुदूर करती अवलोकन
ज्योति तमस के परदो पर
युग जीवन के पट का परिवर्तन।
अधकार की अतल गुहा सी
अह, उन आँखो से डरता मन,
वर्ग सभ्यता के मदिर के
निचले तल की वे वातायन।

वह बुड्ढा

खड़ा द्वार पर, लाठी टेके,
वह जीवन का बूढा पजर,
सिमटी उसकी सिकुडी चमडी
हिलते हड्डी के ढाँचे पर।
उभरी ढीली नसे जाल सी
सूखी ठठरी से हे लिपटी,
पतझर मे ठूँठे तरु से ज्यो
सूनी अमरबेल हो चिपटी।

उसका लबा डील डौल हे,
हट्टी कट्टी काठी चौडी,
इस खँडहर मे बिजली सी
उन्मत्त जवानी होगी दौडी।
बैठी छाती की हड्डी अब
झुकी रीढ कमठा सी टेढी,
पिचका पेट, गढे कधो पर
फटी बिवाई से हे एडी।

बैठ, टेक धरती पर माथा,
वह सलाम करता है झुक कर
उस धरती से पाँव उठा लेने को
जी करता है क्षण भर।
घुटनो से मुड उसकी लबी
टाँगे जाँघे सटी परस्पर,
झुका बीच में शीश, झुर्रियो का
झाँझर मुख निकला बाहर।

हाथ जोड, चौडे पजो की
गुँथी अँगुलियो को कर सम्मुख,
मौन त्रस्त चितवन से,
कातर वाणी से वह कहता निज दुख।
गर्मी के दिन, धरे उपरनी सिर पर,
लुगी से ढाँपे तन,—
नगी देह भरी बालो से,—
वन मानुस सा लगता वह जन।

भूखा है पैसे पा, कुछ गुनमुना
खडा हो, जाता वह घर,

पिछले पैरो के बल उठ
जैसे कोई चल रहा जानवर।
काली नारकीय छाया निज
छोड गया वह मेरे भीतर,
पैशाचिक सा कुछ दुखो से
मनुज गया शायद उसमे मर।

धोबियों का नृत्य

लो, छन छन, छन छन,
छन छन, छन छन,
नाच गुजरिया हरती मन।
धनि के पैरो मे घुँघरू कल,
नट की कटि मे घटियाँ तरल,
वह फिरकी सी फिरती चचल,
नट की कटि खाती सौ सौ बल।

लो, छन छन, छन छन,
छन छन, छन छन,
ठुमुक गुजरिया हरती मन।
उड रहा ढोल धाधिन, धातिन,
औ' हुडुक घुडुकता ढिम ढिम ढिन,
मजीर खनकते खिन खिन खिन,
मद मस्त रजक, होली का दिन।

लो, छन छन, छन छन,
छन छन, छन छन,
थिरक गुजरिया हरती मन।
वह काम शिखा सी रही सिहर,
नट की कटि में लालसा भँवर,
कँप कँप नितब उसके थर् थर्
भर रहे घटियो मे रति स्वर।

लो, छन छन, छन छन,
छन छन, छन छन,
मत्त गुजरिया हरती मन।
फहराता लँहगा लहर लहर,
उड रही ओढनी फर् फर् फर्,

चोली के कंदुक रहे उभर,
(स्त्री नही गुजरिया, वह है नर!)
लो, छन छन, छन छन,
छन छन, छन छन,
हुलस गुजरिया हरती मन!

उर की अतृप्त वासना उभर
इस ढोल मँजीरे के स्वर पर
नाचती, गान के फैला पर,
प्रिय जन गण को उत्सव अवसर,—
लो, छन छन, छन छन,
छन छन, छन छन,
चतुर गुजरिया हरती मन!

ग्राम श्री

फैली खेतो मे दूर तलक
मखमल की कोमल हरियाली,
लिपटी जिससे रवि की किरणे
चाँदी की सी उजली जाली!
तिनको के हरे हरे तन पर
हिल हरित रुधिर है रहा झलक,
श्यामल भू तल पर झुका हुआ
नभ का चिर निर्मल नील फलक!

रोमाचित सी लगती वसुधा
आई जौ गेहूँ मे बाली,
अरहर सनई की सोने की
किंकिणियाँ है शोभाशाली!
उडती भीनी तैलाक्त गंध,
फूली सरसों पीली पीली,
लो, हरित धरा से झाँक रही
नीलम की कलि, तीसी नीली!
रँग रँग के फूलो मे रिलमिल
हँस रही सखिया मटर खडी,
मखमली पेटियो सी लटकी
छीमियाँ, छिपाए बीज लडी!

फिरती है रँग रँग की तितली
रँग रँग के फूलों पर सुदर,
फूले फिरते हो फूल स्वय
उड़ उड वृतो से वृतो पर।
अब रजत स्वर्ण मजरियो से
लद गईं आम्र तरु की डाली,
झर रहे ढाँक, पीपल के दल,
हो उठी कोकिला मतवाली।
महके कटहल, मुकुलित जामुन,
जगल मे झरबेरी झूली,
फूले आड़ू, नीबू, दाडिम,
आलू, गोभी, बैगन, मूली।

पीले मीठे अमरूदो मे
अब लाल लाल चित्तियाँ पडी,
पक गए सुनहले मधुर बेर,
अँवली से तरु की डाल जडी।
लहलह पालक, महमह धनिया,
लौकी औ' सेम फली, फैली,
मखमली टमाटर हुए लाल,
मिरचो की बडी हरी थैली।
गजी को मार गया पाला,
अरहर के फूलो को झुलसा,
हाँका करती दिन भर बदर
अब मालिन की लडकी तुलसा।
बालाएँ गजरा काट काट,
कुछ कह गुपचुप हँसती किन किन,
चाँदी की सी घटियाँ तरल
बजती रहती रह रह खिन खिन।

छायातप के हिलकोरो मे
चौडी हरीतिमा लहराती,
ईखो के खेतो पर सुफेद
काँसो की झडी फहराती।
ऊँची अरहर मे लुका-छिपी
खेलती युवतियाँ मदमाती,
चुबन पा प्रेमी युवको के
श्रम से श्लथ जीवन बहलाती।

मरकत डिब्बे सा खुला ग्राम—
जिस पर नीलम नभ आच्छादन,—
निरुपम हिमात मे स्निग्ध शात
निज शोभा से हरता जन मन !

गंगा

अब आधा जल निश्चल, पीला,—
आधा जल चचल औ' नीला,—
गीले तन पर मृदु सध्यातप
सिमटा रेशम पट सा ढीला !

ऐसे सोने के सॉझ प्रात,
ऐसे चाँदी के दिवस रात,
ले जाती बहा कहॉ गगा
जीवन के युग क्षण,—किसे ज्ञात !

विश्रुत हिम पर्वत से निर्गत,
किरणोज्वल चल कल ऊर्मि निरत,
यमुना, गोमती आदि से मिल
होती यह सागर मे परिणत !

यह भौगोलिक गगा परिचित,
जिसके तट पर बहु नगर प्रथित,
इस जड गगा से मिली हुई
जन गगा और एक जीवित !

वह विष्णुपदी, शिव मौलि स्रुता,
वह भीष्म प्रसू औ' जह्नु सुता,
वह देव निम्नगा, स्वर्गंगा,
वह सगर पुत्र तारिणी श्रुता !

वह गगा, यह केवल छाया,
वह लोक चेतना, यह माया,
वह आत्म वाहिनी ज्योति सरी,
यह भू पतिता, कचुक काया !

वह गगा जन मन से नि सृत,
जिसमे बहु बुद्‌बुद युग नर्तित,
वह आज तरगित, ससृति के
मृत सैकत को करने प्लावित!

दिशि दिशि का जन मत वाहित कर,
वह बनी अकूल अतल सागर,
भर देगी दिशि पल पुलिनो में
वह नव जीवन की मृद् उर्वर!

अब नभ पर रेखा शशि शोभित,
गगा का जल श्यामल, कपित,
लहरो पर चाँदी की किरणे
करती प्रकाशमय कुछ अकित!

कहारो का रुद्र नृत्य

रग रग के चीरो से भर अग, चीरवासा-से,
दैन्य शून्य मे अप्रतिहत जीवन की अभिलाषा-से,
जटा घटा सिर पर, यौवन की श्मश्रु छटा आनन पर,
छोटी बडी तूँबियाँ, रँग रँग की गुरियाँ सज तन पर,—
हुलस नृत्य करते तुम, अटपट धर पटु पद, उच्छृखल
आकाक्षा से समुच्छ्वसित जन मन का हिला धरातल!

फडक रहे अवयव, आवेश-विवश मुद्राएँ अकित,
प्रखर लालसा की ज्वालाओ सी अगुलियाँ कपित,
ऊष्ण देश के तुम प्रगाढ जीवनोल्लास-से निर्भर,
वर्हभार उद्दाम कामना के-से खुले मनोहर!
एक हाथ मे ताम्र डमरु धर, एक शिवा की कटि पर,
नृत्य तरगित रुद्र पूर-से तुम जन मन के सुखकर!

वाद्यो के उन्मत्त घोष से, गायन स्वर से कपित,
जन इच्छा का गाढ चित्र कर हृदय पटल पर अकित,
खोल गए ससार नया तुम मेरे मन मे, क्षण भर,
जन सस्कृति का तिग्म स्फीत सौन्दर्य स्वप्न दिखला कर!
युग युग के सत्याभासों से पीडित मेरा अतर
जन मानव गौरव पर विस्मित मै भावी चिन्तनपर!

भारत माता
ग्रामवासिनी !
खेतो मे फैला है श्यामल
धूल भरा मैला सा आँचल,
गगा यमुना मे आँसू जल,
मिट्टी की प्रतिमा
उदासिनी !
दैन्य जडित अपलक नत चितवन,
अधरो मे चिर नीरव रोदन,
युग युग के तम से विषण्ण मन,
वह अपने घर मे
प्रवासिनी !

तीस कोटि सतान नग्न तन
अर्ध क्षुधित, शोषित, निरस्त्र जन,
मूढ, असभ्य, अशिक्षित, निर्धन,
नत मस्तक
तरु तल निवासिनी !
स्वर्ण शस्य पर - पद - तल लुठित,
धरती सा सहिष्णु मन कुठित,
क्रदन कपित अधर मौन स्मित,
राहु ग्रसित
शरदेन्दु हासिनी !

चिन्तित भृकुटि क्षितिज तिमिराकित,
नमित नयन नभ वाष्पाच्छादित,
आनन श्री छाया-शशि उपमित,
ज्ञान मूढ़
गीता प्रकाशिनी !
सफल आज उसका तप सयम,
पिला अहिंसा स्तन्य सुधोपम,
हरती जन मन भय, भव तम भ्रम,
जग जननी
जीवन विकासिनी !

महात्मा जी के प्रति

निर्वाणोन्मुख आदर्शों के अतिम दीप शिखोदय!
जिनकी ज्योति छटा के क्षण से प्लावित आज दिगचल,—
गत आदर्शों का अभिभव ही मानव आत्मा की जय,
अत पराजय आज तुम्हारी जय से चिर लोकोज्वल!

मानव आत्मा के प्रतीक! आदर्शों से तुम ऊपर,
निज उद्देश्यो से महान, निज यश से विशद चिरतन,
सिद्ध नही, तुम लोक सिद्धि के साधन बने महत्तर,
विजित आज तुम नर वरेण्य, गणजन विजयी साधारण!

युग युग की सस्कृतियो का चुन तुमने सार सनातन,
नव सस्कृति का शिलान्यास करना चाहा भव शुभकर,
साम्राज्यो ने ठुकरा दिया युगो का वैभव पाहन—
पदाघात से मोह मुक्त हो गया आज जन अतर!

दलित देश के दुर्दम नेता, हे ध्रुव, धीर, धुरधर,
आत्म शक्ति से दिया जाति-शव को तुमने जीवन बल,
विश्व सभ्यता का होना था नखशिख नव रूपातर,
राम राज्य का स्वप्न तुम्हारा हुआ न यो ही निष्फल!

विकसित व्यक्तिवाद के मूल्यो का विनाश था निश्चय,
वृद्ध विश्व सामत काल का था केवल जड खँडहर,
हे भारत के हृदय! तुम्हारे साथ आज नि सशय,
चूर्ण हो गया विगत सास्कृतिक हृदय जगत का जर्जर!

गत सस्कृतियो का, आदर्शों का था नियत पराभव,
वर्ग व्यक्ति की आत्मा पर थे सौध धाम जिनके स्थित,
तोड युगो के स्वर्ण पाश अब मुक्त हो रहा मानव,
जन मानवता की भव सस्कृति आज हो रही निर्मित!

किए प्रयोग नीति सत्यो के तुमने जन जीवन पर,
भावादर्श न सिद्ध कर सके सामूहिक-जीवन-हित,
अधोमूल अश्वत्थ विश्व, शाखाएँ सस्कृतियाँ वर,
वस्तु विभव पर ही जनगण का भाव विभव अवलबित!

वस्तु सत्य का करते भी तुम जग मे यदि आवाहन,
सबसे पहले विमुख तुम्हारे होता निर्धन भारत,
मध्य युगो की नैतिकता मे पोषित शोषित-जनगण,
बिना भाव स्वप्नो को परखे कब हो सकते जाग्रत्?

सफल तुम्हारा सत्यान्वेषण, मानव सत्यान्वेषक !
धर्म, नीति के मान अचिर सब, अचिर शास्त्र, दर्शन मत,
शासन, जनगण-तन्त्र अचिर,—युग स्थितियाँ जिनकी प्रेरक,
मानव गुण, भव रूप नाम होते परिवर्तित युगपत् !
पूर्ण पुरुष, विकसित मानव तुम, जीवन सिद्ध अहिंसक,
मुक्त-हुए-तुम-मुक्त-हुए-जन, हे जग वंद्य महात्मन् !
देख रहे मानव भविष्य तुम मनश्चक्षु बन अपलक,
धन्य, तुम्हारे श्री चरणों से धरा आज चिर पावन !

राष्ट्र गान

जन भारत हे !
भारत हे !
स्वर्ग स्तंभवत् गौरव मस्तक—
उन्नत हिमवत् हे !
जन भारत हे,
जाग्रत् भारत हे !

गगन चुंबि विजयी तिरंग ध्वज
इंद्रचापमत् हे,
कोटि कोटि हम श्रमजीवी सुत
सम्भ्रम युत नत हे
सर्व एक मत, एक ध्येय रत,
सर्व श्रेय व्रत हे !
जन भारत हे,
जाग्रत् भारत हे !

समुच्चरित शत शत कंठों से
जन युग स्वागत हे,
सिन्धु तरंगित, मलय श्वसित,
गंगाजल ऊर्मि निरत हे,
शरद इंदु स्मित अभिनंदन हित,
प्रतिध्वनित पर्वत हे !
स्वागत हे, स्वागत हे,
जन भारत हे,
जाग्रत् भारत हे !

स्वर्ग खड षड्ऋतु परिक्रमित,
आम्र मजरित, मधुप गुजरित,
कुसुमित फल द्रुम, पिक कल कूजित,
उर्वर, अभिमत हे!
दश दिशि हरित शस्य श्री हर्षित
पुलक राशिवत् हे!
जन भारत हे,
जाग्रत् भारत हे!

किरण केलि रत रक्त विजय ध्वज
युग प्रभातमत् हे,
कीर्ति स्तभवत् उन्नत मस्तक
प्रहरी हिमवत् हे!
पद तल छू शत फेनिलोर्मि फन,
शेषोदधि नत हे,
वर्ग मुक्त हम श्रमिक कृषक जन
चिर शरणागत हे!
जन भारत हे,
जाग्रत् भारत हे!

ग्राम देवता

राम राम,
हे ग्राम देवता, भूति ग्राम!
तुम पुरुष पुरातन, देव सनातन, पूर्णकाम,
शिर पर शोभित वर छत्र, तडित् स्मित घन श्याम,
वन पवन मर्मरित-व्यजन, अन्न फल श्री ललाम!

तुम कोटि बाहु, वर हलधर, वृष वाहन बलिष्ठ,
मित असन, निर्वसन, क्षीणोदर, चिर सौम्य, शिष्ट,
शिर स्वर्ण शस्य मजरी मुकुट, गणपति वरिष्ट,
वाग्युद्ध वीर, क्षण क्रुद्ध धीर, नित कर्म निष्ठ!

पिक वयनी मधुऋतु से प्रति वत्सर अभिनंदित,
नव आम्र मजरी मलय तुम्हें करता अर्पित,
प्रावृट् में तव प्रागण घन गर्जन से हर्षित,
मरकत कल्पित नव हरित प्ररोहो में पुलकित!

शशि मुखी शरद करती परिक्रमा कुद स्मित,
वेणी मे खोसे काँस, कान मे कुँई लसित,
हिम तुमको करता तुहिन मोतियो से भूषित,
वहु सोन कोक युग्मो से तव सरि-सर कूजित!

अभिराम तुम्हारा बाह्य रूप, मोहित कवि मन,
नभ के नीलम सपुट मे तुम मरकत शोभन,
पर, खोल आज निज अतपुर के पट गोपन
चिर मोह मुक्त कर दिया, देव! तुमने यह जन!

राम राम,
हे ग्राम देवता, रूढि धाम!
तुम स्थिर, परिवर्तन रहित, कल्पवत् एक याम,
जीवन सघर्षण विरत, प्रगति पथ के विराम,
शिक्षक तुम, दस वर्षों से मैं सेवक, प्रणाम!

कवि अल्प, उडुप मति, भव तितीर्षु,—दुस्तर अपार,
कल्पना पुत्र मैं, भावी द्रष्टा, निराधार,
सौन्दर्य स्वप्नचर,—नीति दण्डधर तुम उदार,
चिर परम्परा के रक्षक, जन हित मुक्त द्वार!

दिखलाया तुमने भारतीयता का स्वरूप,
जन मर्यादा का स्रोत शून्य चिर अध कूप,
जग से अबोध, जानता न था मैं छाँह धूप,
तुम युग युग के जन विश्वासो के जीर्ण स्तूप!

यह वही अवध! तुलसी की सस्कृति का निवास!
श्री राम यही करते जन मानस मे विलास!
अह, सतयुग के खँडहर का यह दयनीय ह्रास!
वह अकथनीय मानसिक दैन्य का बना ग्रास!

ये श्रीमानो के भवन आज साकेत धाम!
सयम तप के आदर्श बन गए भोग काम!
आराधित सत्व यहाँ, पूजित धन, वश, नाम!
यह व्यक्तिवाद की विकसित सस्कृति! राम राम!

श्री राम रहे सामत काल के ध्रुव प्रकाश,
पशुजीवी युग में नव कृषि सस्कृति के विकास;
कर सके नही वे मध्य युगो का तम विनाश,
जन रहे सनातनता के तब से क्रीत दास!

पशु-युग मे थे गणदेवो के पूजित पशुपति,
थी रुद्रचरो से कुठित कृषि युग की उन्नति;

श्री राम रुद्र की शिव मे कर जन हित परिणति,
जीवित कर गए अहल्या को, थे सीतापति!

वाल्मीकि बाद आए श्री व्यास जगत वदित,
वह कृषि सस्कृति का चरमोन्नत युग था निश्चित,
बन गए राम तब कृष्ण, भेद मात्रा का मित,
वैभव युग की वशी से कर जन मन मोहित!

तब से युग युग के हुए चित्रपट परिवर्तित,
तुलसी ने कृषि मन युग अनुरूप किया निर्मित,
खो गया सत्य का रूप, रह गया नामामृत,
जन समाचरित वह सगुण बन गया आराधित!

गत सक्रिय गुण बन रूढि रीति के जाल गहन
कृषि प्रमुख देश के लिए हो गए जड बधन,
जन नही, यत्र जीवनोपाय के अब वाहन,
सस्कृति के केन्द्र न वर्ग अधिप, जन साधारण!

उच्छिष्ट युगो का आज सनातनवत् प्रचलित,
बन गई चिरतन रीति नीतियाँ,—स्थितियाँ मृत,
गत सस्कृतियाँ थी विकसित वर्ग व्यक्ति आश्रित,
तब वर्ग व्यक्ति गुण, जन समूह गुण अब विकसित!

अति मानवीय था निश्चित विकसित व्यक्तिवाद,
मनुजो मे जिसने भरा देव पशु का प्रमाद,
जन जीवन बना न विशद, रहा वह निराह्लाद,
विकसित नर नर-अपवाद नही, जन-गुण-विवाद!

तब था न वाष्प-विद्युत् का जग मे हुआ उदय,
थे मनुज यत्र, युग पुरुष सहस्र हस्त बलमय,
अब यत्र मनुज के कर पद बल, सेवक समुदय,
सामत मान अब व्यर्थ,—समृद्ध विश्व अतिशय!

अब मनुष्यता को नैतिकता पर पानी जय,
गत वर्ग गुणो को जन सस्कृति मे होना लय,
देशो राष्ट्रो को मानव जग बनना निश्चय,
अतर जग को फिर लेना बहिर्जगत आश्रय!

राम राम

हे ग्राम्य देवता, यथा नाम!
शिक्षक हो तुम, मै शिष्य, तुम्हे सविनय प्रणाम!
विजया, महुआ, ताडी, गाँजा पी सुबह शाम,
तुम समाधिस्थ नित रहो, तुम्हे जग से न काम!

पडित, पडे, ओझा, मुखिया औ' साधु, सत,
दिखलाते रहते तुम्हे स्वर्ग अपवर्ग पथ,
जो था, जो है, जो होगा—सब लिख गए ग्रथ,
विज्ञान ज्ञान से बडे तुम्हारे मत्र तत्र!

युग युग से जनगण, देव! तुम्हारे पराधीन,
दारिद्रच दु ख के कर्दम मे कृमि सदृश लीन,
बहु रोग शोक पीडित, विद्या बल बुद्धि हीन,
तुम राम राज्य के स्वप्न देखते उदासीन!

जन अमानुषी आदर्शो के तम से कवलित,
माया उनको जग, मिथ्या जीवन, देह अनित,
वे चिर निवृत्ति के भोगी,—त्याग विराग विहित,
निज आचरणो मे नरक जीवियो तुल्य पतित!

वे देव भाव के प्रेमी—पशुओ से कुत्सित,
नैतिकता के पोषक,—मनुष्यता से वचित,
बहु नारी सेवी,—पतिव्रता ध्येयी निज हित,
वैधव्य विधायक,—बहु विवाह वादी निश्चित!

सामाजिक जीवन के अयोग्य, ममता प्रधान,
सघर्षण विमुख, अटल उनको विधि का विधान!
जग से अलिप्त वे, पुनर्जन्म का उन्हे ध्यान,
मानव स्वभाव के द्रोही, श्वानो के समान!

राम राम,
हे ग्राम देव, लो हृदय थाम,
अब जन स्वतत्रता रण की जग मे धूम धाम!
उद्यत जनगण युग क्रान्ति के लिए बाँध लाम,
तुम रूढि रीति की खा अफीम, लो चिर विराम!

यह जन स्वातत्र्य नही, जनैक्य का वाहक रण,
यह अर्थ राजनीतिक न, सास्कृतिक सघर्षण,
युग युग की खड मनुजता, दिशि दिशि के जनगण,
मानवता मे मिल रहे,—ऐतिहासिक यह क्षण!

नव मानवता मे जाति वर्ग होगे सब क्षय,
राष्ट्रो के युग वृत्ताश परिधि मे जग की लय,
जन आज अहिसक, होगे कल स्नेही, सहृदय,
हिन्दू, ईसाई, मुसलमान,—मानव निश्चय!

मानवता अब तक देश काल के थी आश्रित,
सस्कृतियाँ सकल परिस्थितियो से थी शासित,

गत देश काल मानव के बल से आज विजित,
अब खर्व विगत नैतिकता, मनुष्यता विकसित!

छायाएँ हैं सस्कृतियाँ, मानव की निश्चित,
वह केन्द्र, परिस्थितियो के गुण उसमे बिम्बित,
मानवी चेतना खोल युगो के गुण कवलित,
अब नव सस्कृति के वसनो से होगी भूषित!

विश्वास, धर्म, सस्कृतियाँ, नीति रीतियाँ गत
जन सघर्षण मे होगी ध्वस, लीन, परिणत,
बधन विमुक्त हो मानव आत्मा अप्रतिहत
नव मानवता का सद्य करेगी युग स्वागत!

राम राम,
हे ग्राम देवता, रूढिधाम! —

तुम पुरुष पुरातन, देव सनातन, पूर्ण काम,
जडवत्, परिवर्तन शून्य, कल्प शत एक याम,
शिक्षक हो तुम, मै शिष्य, तुम्हे शत शत प्रणाम!

संध्या के बाद

सिमटा पंख साँझ की लाली
जा बैठी अब तरु शिखरो पर,
ताम्रपर्ण पीपल से, शतमुख
झरते चचल स्वर्णिम निर्झर!
ज्योति स्तभ सा धँस सरिता मे
सूर्य क्षितिज पर होता ओझल,
बृहद् जिह्म विश्लथ केंचुल सा
लगता चितकबरा गगाजल!

धूपछाँह के रँग की रेती
अनिल ऊर्मियो से सर्पांकित,
नील लहरियो मे लोडित
पीला जल रजत जलद से बिम्बित!
सिकता, सलिल, समीर सदा से
स्नेह पाश मे बँधे समुज्वल,
अनिल पिघल कर सलिल,
सलिल ज्यो गति द्रव खो बन गया लवोपल!

शख घट बजते मदिर मे,
लहरो में होता लय-कपन,
दीप शिखा सा ज्वलित कलश
नभ मे उठकर करता नीराजन!
तट पर बगुलो सी वृद्धाएँ,
बिधवाएँ जप ध्यान मे मगन,
मथर धारा में बहता
जिनका अदृश्य गति अतर रोदन!
दूर, तिमिर रेखाओ से
उडते पखो की गति सी चित्रित
सोन खगो की पाँति
आर्द्र ध्वनि से नीरव नभ करती मुखरित!
स्वर्ण चूर्ण सी उडती गोरज
किरणो की बादल सी जल कर,
सनन् तीर सा जाता नभ मे
ज्योतित पखो कठो का स्वर!
लौटे खग, गाये घर लौटी,
लौटे कृषक श्रात श्लथ डग धर,
छिपे गृहो मे म्लान चराचर
छाया भी हो गई अगोचर!
लौट पैठ से व्यापारी भी
जाते घर, उस पार नाव पर,
ऊँटो, घोडो के सँग बैठे
खाली बोरो पर, हुक्का भर!
जाडो की सूनी द्वाभा मे
झूल रही निशि छाया गहरी,
डूब रहे निष्प्रभ विषाद में
खेत, बाग, गृह, तरु, तट, लहरी!
बिरहा गाते गाडीवाले,
भूँक भूँक कर लडते कूकर,
हुआ हुआ करते सियार
देते विषण्ण निशि बेला को स्वर!
माली की मँडई से उठ,
नभ के नीचे नभ-सी धूमाली
मद पवन मे तिरती
नीली रेशम की सी हलकी जाली!

बत्ती जला दुकानो मे
बैठे सब कस्बे के व्यापारी,
मौन मद आभा मे
हिम की ऊँघ रही लबी अँधियारी।
धुँआ अधिक देती है
टिन की ढबरी, कम करती उजियाला,
मन से कढ अवसाद श्राति
आँखो के आगे बुनती जाला।
छोटी सी बस्ती के भीतर
लेन देन के थोथे सपने
दीपक के मडल मे मिलकर
मँडराते घिर सुख दुख अपने।
कँप कँप उठते लौ के सँग
कातर उर क्रदन, मूक निराशा,
क्षीण ज्योति ने चुपके ज्यो
गोपन मन को दे दी हो भाषा।
लीन हो गई क्षण मे बस्ती
मिट्टी खपरे के घर आँगन,
भूल गए लाला अपनी सुधि,
भूल गया सब व्याज, मूलधन।
सकुची सी परचून किराने की ढेरी
लग रही तुच्छतर,
इस प्रदोष मे नीरव आकुल
उमड रहा अतर जग बाहर।
अनुभव करता लाला का मन
छोटी हस्ती का सस्तापन,
जाग उठा उसमे मानव,
औ' असफल जीवन का उत्पीड़न।
दैन्य दुख अपमान ग्लानि
चिर क्षुधित पिपासा, मृत अभिलाषा,
बिना आय की क्लाति बन रही
उसके जीवन की परिभाषा!
जड अनाज के ढेर सदृश ही
वह दिन भर बैठा गद्दी पर,
बात बात पर झूठ बोलता
कौडी की स्पर्धा में मर मर।

फिर भी क्या कुटुब पलता है?
रहते स्वच्छ सुघर सब परिजन?
बना पा रहा वह पक्का घर?
मन मे सुख है? जुटता है धन?
खिसक गई कधो से कथडी,
ठिठुर रहा अब सर्दी से तन,
सोच रहा बस्ती का बनिया
घोर विवशता का निज कारण!

शहरी बनियो सा वह भी उठ
क्यो बन जाता नही महाजन?
रोक दिए है किसने उसकी
जीवन उन्नति के सब साधन?
यह क्या सभव नही,
व्यवस्था मे जग की कुछ हो परिवर्तन?
कर्म और गुण के समान ही
सकल आय व्यय का हो वितरण?

घुसे घरौंदो में मिट्टी के
अपनी अपनी सोच रहे जन,
क्या ऐसा कुछ नही
फूँक दे जो सबमें सामूहिक जीवन?
मिलकर जन निर्माण करे जग,
मिल कर भोग करें जीवन का,
जन विमुक्त हो जन शोषण से,
हो समाज अधिकारी धन का?

दरिद्रता पापो की जननी,
मिटें जनो के पाप, ताप, भय,
सुदर हो अधिवास, वसन, तन,
पशु पर फिर मानव की हो जय!
व्यक्ति नही, जग की परिपाटी
दोषी जन के दुख क्लेश की,
जन का श्रम जन मे बँट जाए,
प्रजा सुखी हो देश देश की!

टूट गया वह स्वप्न वणिक का,
आई जब बुढिया बेचारी
आध पाव आटा लेने,—
लो, लाला ने फिर डडी मारी!

चीख उठा घुग्घू डालो मे,
लोगो ने पट दिए द्वार पर,
निगल रहा बस्ती को धीरे
गाढ अलस निद्रा का अजगर!

खिड़की से

पूस निशा का प्रथम प्रहर खिडकी से बाहर
दूर क्षितिज तक स्तब्ध आम्र वन सोया . क्षण भर
दिन का भ्रम होता पूनो ने तृण तरुओ पर
चॉदी मढ दी है, भू को स्वप्नो से जड कर!
चारु चद्रिकातप से पुलकित निखिल धरातल
चमक रहा है, ज्यो जल मे बिम्बित जग उज्वल!

स्पष्ट दीखते,—खिडकी की जाली मे विजडित
कटहल, लीची, आम,—घूक गेदुर से कपित;
फाटक औ' हाते के खभे, बगिया के पथ
आधी जगत कुँए की, कुरिया की छाजन श्लथ,
अस्पताल का भाग, मेहराबे, दरवाजे,
स्फटिक सदृश जो चमक रहे चूने से ताजे!
औ'—टेढी मेढी दिगत रेखा के ऊपर
पास पास दो पेड ताड के खड़े मनोहर!

आधी खिडकी पर अगणित ताराओ से स्मित
हरित धरा के ऊपर नीलाबर छायाकित!
कचपचिया (कृत्तिका) सामने शोभित सुदर
मोती के गुच्छे सी भरणी ज्यो त्रिकोण वर!
पास रोहिणी, प्रिय मिलनातुर, बाँह खोल कर,
सेदुर की बेदी दे, जुडुओ को गोदी भर!
लुब्ध दृष्टि लुब्धक, समीप ही, छोड रहा शर
आदि काल से मृग पर : मृग शिर सहज मनोहर!

उधर जडे पुखराज लाल-से गुरु औ' मगल
साथ साथ, जिनमे अवश्य गुरु सबसे उज्वल!
हस्ता है प्रत्यक्ष कठिन वृश्चिक का मिलना,
वह शायद आर्द्रा, कहता हिमजल सा हिलना!
ज्योति फेन सी स्वर्गंगा नभ बीच तरगित,
परियों की माया सरसी सी छायालोकित,

ज्वलित पुज ताराओ के वाष्पों से सस्मित,
नीलम के नभ मे रत्नप्रभ पुल सी निर्मित।

खोज रहा हूँ कहाँ उदित सप्तर्षि गगन मे
अरुधती को लिये साथ, विस्मित से मन मे।
प्रश्न चिन्ह-से जो अनादि से नभ मे अकित
उत्तर में स्थित ध्रुव की ओर किए चिर इगित—
पूछ रहे हो ससृति का रहस्य ज्यो अविदित,—
'क्या है वह ध्रुव सत्य? गहन नभ जिससे ज्योतित।'

ज्योत्स्ना मे विकसित सहस्रदल भू पर, अबर
शोभित ज्यो लावण्य स्वप्न अपलक नयनो पर।
यह प्रतिदिन का दृश्य नही, छल से वातायन
आज खुल गया अप्सरियो के जग मे मोहन।
चिर परिचित माया बल से बन गए अपरिचित,
निखिल वास्तविक जगत कल्पना से ज्यो चित्रित।
आज असुदरता कुरूपता भव से ओझल,
सब कुछ सुदर ही सुदर, उज्वल ही उज्वल।

एक शक्ति से, कहते, जग प्रपच यह विकसित,
एक ज्योति-कर से समस्त जड चेतन निर्मित,
सच है यह, आलोक पाश मे बँधे चराचर
आज आदि कारण की ओर खीचते अतर।
क्षुद्र आत्म पर भूल, भूत सब हुए समन्वित,
तृण तरु से तारालि—सत्य है एक अखडित।
मानव ही क्यो इस असीम समता से वचित।
ज्योति भीत, युग युग से तमस विमूढ, विभाजित।

रेखा चित्र

चाँदी की चौडी रेती,
फिर स्वर्णिम गगा धारा,
जिसके निश्चल उर पर विजडित
रत्न छाय नभ सारा।
फिर बालू का नासा
लबा ग्राह तुड सा फैला,
छितरी जल रेखा—
कछार फिर गया दूर तक मैला।

जिस पर मछुओ की मँडई
औ' तरबूजो के ऊपर,
बीच बीच में, सरपत के मूँठे
खग - से खोले पर।

पीछे, चित्रित विटप पाँति
लहराई साध्य क्षितिज पर,
जिससे सट कर
नील धूम्र रेखा ज्यो खिची समातर।
बर्ह पिच्छ - से जलद पख
अबर मे बिखरे सुदर
रग रग की हलकी गहरी
छायाएँ छिटका कर।

सब से ऊपर निर्जन नभ मे,
अपलक सध्या तारा,
नीरव औ' नि सग,
खोजता सा कुछ, चिर पथहारा।
साँझ,—नदी का सूना तट,
मिलता है नही किनारा,
खोज रहा एकाकी जीवन
साथी, स्नेह सहारा।

दिवा स्वप्न

दिन की इस विस्तृत आभा मे, खुली नाव पर,
आर पार के दृश्य लग रहे साधारणतर।
केवल नील फलक सा नभ, सैकत रजतोज्वल,
और तरल बिल्लौर वेश्मतल सा गगाजल—
चपल पवन के पदाचार से अहरह स्पदित—
शात हास्य से अतर को करते आह्लादित।
मुक्त स्निग्ध उल्लास उमड जल हिलकोरो पर
नृत्य कर रहा, टकरा पुलकित तट छोरो पर!

यह सैकत तट पिघल पिघल यदि बन जाता जल,
बह सकती यदि धरा चूमती हुई दिगचल
यदि न डुबाता जल, रह कर चिर मृदुल तरलतर,
तो मैं नाव छोड, गगा के गलित स्फटिक पर

आज लोटता, ज्योति जडित लहरो सँग जी भर।
किरणो से खेलता मिचौनी मैं लुक छिप कर,
लहरो के अंचल मे फेन पिरोता सुदर,
हँसता कल कल मत्त नाचता, झूल पैंग भर।
कैसा सुदर होता, वदन न होता गीला,
लिपटा रहता सलिल रेशमी पट सा ढीला।
यह जल गीला नही, गलित नभ केवल चचल,
गीला लगता हमे, न भीगा हुआ स्वय जल,—
हाँ, चित्रित से लगते तृण - तरु भू पर बिम्बित,
मेरे चल पद चूम धरणि हो उठती कपित।
एक सूर्य होता नभ मे, सौ भू पर विजडित,
सिहर सिहर क्षिति मारुत को करती आलिंगित।
निशि मे ताराओ से होती धरा जब खचित
स्वप्न देखता स्वर्ग लोक मे मै ज्योत्स्ना स्मित।

गुन के बल चल रही प्रतनु नौका चढाव पर
बदल रहे तट दृश्य चित्रपट पर ज्यो सुदर।
वह, जल से सट कर उडते हैं चटुल पनेवा,
इन पखो की परियो को चाहिये न खेवा।
दमक रही उजियारी छाती, करछौहे पर
श्याम घनो से झलक रही बिजली क्षण क्षण पर।
उधर कगारे पर अटका है पीपल तरुवर
लबी, टेढी जडे जटा सी छितरी बाहर।

लौट रहा सामने सूस पनडुब्बी सा तिर
पूँछ मार जल से चमकीली, करवट खा फिर।
सोन कोक के जोडे बालू के चाँदो पर
चोचो से सहला पर, क्रीडा करते सुखकर।
बैठ न पाती, चक्कर खाती देव दिलाई,
तिरती लहरो पर सुफेद काली परछाँई।
लो, मछरगा उतर तीर सा नीचे क्षण में,
पकड तडपती मछली को, उड गया गगन मे।
नरकुल सी चोचे ले चाहा फिरते फर फर,
मँडराते सुरखाब व्योम में, आर्त नाद कर—
काले, पीले, खैरे, बहुरगे चित्रित पर
चमक रहे बारी बारी स्मित आभा से भर।
वह, टीले के ऊपर, तूँबी सा, बबूल पर,
मरपत का घोसला बया का लटका सुदर।

दूर उधर, जगल मे भीटा एक मनोहर
दिखलाई देता है वन-देवो का सा घर!
जहाँ खेलते छायातप, मारुत तरु-मर्मर,
स्वप्न देखती विजन शाति मे मौन दोपहर!
वन की परियाँ धूपछाँह की साडी पहने
जहाँ विचरती चुनने ऋतु कुसुमो के गहने!
वहाँ मत्त करती मन नव मुकुलो की सौरभ,
गुजित रहता सतत द्रुमो का हरित श्वसित नभ!

वहाँ गिलहरी दौडा करती तरु डालो पर
चचल लहरी सी, मृदु रोमिल पूँछ उठा कर!
और वन्य विहगो-कीटो के सौ-सौ प्रिय स्वर
गीत वाद्य से बहलाते शोकाकुल अतर!
वही कही, जी करता, मैं जाकर छिप जाऊँ
मानव जग के क्रदन से छुटकारा पाऊँ!
प्रकृति नीड मे व्योम खगो के गाने गाऊँ,
अपने चिर स्नेहातुर उर की व्यथा भुलाऊँ!

मजदूरनी के प्रति

नारी की सज्ञा भुला, नरो के सग बैठ,
चिर जन्म सुहृद् सी जन हृदयो मे सहज पैठ,
जो बँटा रही तुम जग जीवन का काम काज,
तुम प्रिय हो मुझे, न छूती तुमको काम लाज!
सर से आँचल खिसका है,—धूल भरा जूडा,—
अधखुला वक्ष,—ढोती तुम सिर पर धर कूडा,
हँसती, बतलाती सहोदरा सी जन जन से,
यौवन का स्वास्थ्य झलकता आतप सा तन से!

कुलवधू सुलभ सरक्षणता से हो वचित,
निज बधन खो, तुमने स्वतन्त्रता की अर्जित!
स्त्री नही, आज मानवी बन गई तुम निश्चित,
जिसके प्रिय अगो को छू अनिलातप पुलकित!
निज द्वन्द्व प्रतिष्ठा भूल, जनो के बैठ साथ,
जो बँटा रही तुम काम काज मे मधुर हाथ,—
तुमने निज तन की तुच्छ कचुकी को उतार,
जग के हित खोल दिए नारी के हृदय द्वार!

नारी

हाय, मानवी रही न नारी लज्जा से अवगुंठित,
वह नर की लालस प्रतिमा, शोभा सज्जा से निर्मित!
युग युग की बंदिनी, देह की कारा में निज सीमित,
वह अदृश्य अस्पृश्य विश्व को, गृह पशु सी ही जीवित!
सदाचार की सीमा उसके तन से है निर्धारित,
पूत योनि वह मूल्य चर्म पर केवल उसका अंकित,
अंग अंग उसका नर के वासना चिह्न से मुद्रित,
वह नर की छाया, इंगित संचालित, चिर पद लुंठित!

वह समाज की नहीं इकाई,—शून्य समान अनिश्चित,
उसका जीवन मान-मान पर नर के है अवलंबित!
मुक्त हृदय वह स्नेह प्रणय कर सकती नहीं प्रदर्शित,
दृष्टि, स्पर्श, संज्ञा से वह हो जाती सहज कलंकित!
योनि नहीं है रे नारी, वह भी मानवी प्रतिष्ठित,
उसे पूर्ण स्वाधीन करो, वह रहे न नर पर अवसित!
द्वन्द्व क्षुधित मानव समाज पशु जग से भी है गर्हित,
नर नारी के सहज स्नेह से सूक्ष्म वृत्ति हो विकसित!
आज मनुज जग से मिट जाए कुत्सित, लिंग विभाजित
नारी नर की निखिल क्षुद्रता, आदिम मानों पर स्थित!
सामूहिक-जन-भाव-स्वास्थ्य से जीवन हो मर्यादित
नर नारी की हृदय मुक्ति से मानवता हो संस्कृत!

सन् १९४०

समर भूमि पर मानव शोणित से रंजित निर्भीक चरण धर,
अभिनंदित हो दिग् घोषित तोपों से गर्जन से प्रलयंकर,
शुभागमन नव वर्ष कर रहा, हालाडोला पर चढ़ दुर्धर,
बृहद् विमानों के पंखों से बरसा कर विष वह्नि निरंतर!
इधर अड़ा साम्राज्यवाद, शत शत विनाश के ले आयोजन,
उधर प्रतिक्रिया रुद्ध शक्तियाँ क्रुद्ध दे रहीं युद्ध निमंत्रण!
सत्य न्याय के बाने पहने, सत्व लुब्ध लड़ रहे राष्ट्रगण,
सिन्धु तरंगों पर उठ गिर क्रय विक्रय स्पर्धा करती नर्तन!
धू-धू करती वाष्प शक्ति, विद्युत् ध्वनि करती दीर्ण दिगंतर,
ध्वंस भ्रंश करते विस्फोटक धनिक सभ्यता के गढ़ जर्जर!

तुमुल वर्ग सघर्ष मे निहित जन गण का भविष्य लोकोत्तर,
इद्रचाप पुल सा नव वत्सर शोभित प्रलय प्रभ मेघो पर।
आओ हे दुर्धर्ष वर्ष। लाओ विनाश के साथ नव सृजन,
विश शताब्दी का महान विज्ञान ज्ञान ले, उत्तर यौवन।

सूत्रधर

तुम धन्य, वस्त्र व्यवसाय कला के सूत्रधार,
बर्बर जन के तन से हर वल्कल, चर्म भार,
तुमने आदिम मानव की हर नव द्वन्द्व लाज,
बन शीत ताप हित कवच, बचाया जन समाज।
तकली, चरखे, करघे से अब आधुनिक यंत्र,
तुम बने, यत्र बल पर ही मानव लोक तत्र
स्थापित करने को अब मानवता का विकास
यत्रो के सग हुआ, सिखलाता नृ-इतिहास।

जड नही यत्र वे भाव रूप सस्कृति द्योतक
वे विश्व शिराएँ, निखिल सभ्यता के पोषक।
रेडियो, तार औ' फोन,—वाष्प - जल - वायुयान
मिट गया दिशावधि का जिनसे व्यवधान मान,—
धावित जिनमे दिशि दिशि का मन,—वार्ता, विचार,
सस्कृति, सगीत,—गगन मे झकृत निराकार।
जीवन सौन्दर्य प्रतीक यत्र जन के शिक्षक
युग क्राति प्रवर्तक औ' भावी के पथ दर्शक।
वे कृत्रिम, निर्मित नही, जगत क्रम मे विकसित,
मानव भी यत्र, विविध युग स्थितियो मे वर्धित।
दार्शनिक सत्य यह नही,—यत्र जड, मानव कृत,
वे है अमूर्त जीवन विकास की कृति निश्चित।

संस्कृति का प्रश्न

राजनीति का प्रश्न नही रे आज जगत के सम्मुख,
अर्थ साम्य भी मिटा न सकता मानव जीवन के दुख।
व्यर्थ सकल इतिहासो, विज्ञानो का सागर मथन,
वहाँ नही युग लक्ष्मी, जीवन सुधा, इदु जन मोहन।

आज बृहत् सास्कृतिक समस्या जग के निकट उपस्थित,
खड मनुजता को युग युग की होना है नव निर्मित,
विविध जाति, वर्गों, धर्मों को होना सहज समन्वित,
मध्य युगो की नैतिकता को मानवता मे विकसित ।

जग जीवन के अतर्मुख नियमो से स्वय प्रवर्तित
मानव का अवचेतन मन हो गया आज परिवर्तित ।
बाह्य चेतनाओ मे उसके क्षोभ, क्रांति, उत्पीडन,
विगत सभ्यता दत-शून्य फणि सी करती युग नर्तन ।
व्यर्थ आज राष्ट्रो का विग्रह, औ' तोपो का गर्जन,
रोक न सकते जीवन की गति शत विनाश आयोजन ।
नव प्रकाश मे तमस युगो का होगा स्वय निमज्जित,
प्रतिक्रियाएँ विगत गुणो की होगी शनै पराजित ।

सांस्कृतिक हृदय

कृषि युग से वाहित मानव का सास्कृतिक हृदय
जो गत समाज की रीति नीतियो का समुदय,
आचार विचारो मे जो बहु देता परिचय,
उपजाता मन मे सुख दुख, आशा, भय, सशय,—
जो भले बुरे का ज्ञान हमे देता निश्चित
सामत जगत मे हुआ मनुज के वह निर्मित ।

उन युग स्थितियो का आज दृश्य पट परिवर्तित,
प्रस्तर युग की सभ्यता हो रही अब अवसित ।
जो अतर जग था बाह्य जगत पर अवलबित
वह बदल रहा युगपत् युग स्थितियो से प्रेरित ।
बहु जाति धर्म औ' नीति कर्म मे पा विकास
गत सगुण आज लय होने को औ' नव प्रकाश
नव स्थितियो के सर्जन से हो अब शनै उदय
बन रहा मनुज की नव आत्मा, सास्कृतिक हृदय ।

बापू के प्रति

चरमोन्नत जग मे जब कि आज विज्ञान ज्ञान,
बहु भौतिक साधन, यत्र, यान, वैभव महान,

सेवक हैं विद्युत् वाष्प शक्ति धन बल नितांत,
फिर क्यों जग में उत्पीडन ? जीवन यों अशांत ?
मानव ने पाई देश काल पर जय निश्चय,
मानव के पास नहीं मानव का आज हृदय !
चर्वित उसका विज्ञान ज्ञान, वह नहीं पचित,
भौतिक मद से मानव आत्मा हो गई विजित !

है श्लाघ्य मनुज का भौतिक संचय का प्रयास,
मानवी भावना का क्या पर उसमें विकास ?
चाहिए विश्व को आज भाव का नवोन्मेष,
मानव उर में फिर मानवता का हो प्रवेश !
बापू ! तुम पर हैं आज लगे जग के लोचन,
तुम खोल नहीं जाओगे मानव के बंधन ?

नव इंद्रिय

नव जीवन की इंद्रिय दो हे, मानव को,
नव जीवन की नव इंद्रिय,
नव मानवता का अनुभव कर सके मनुज
नव चेतनता से सक्रिय !

स्वर्ग खंड इस पुण्य भूमि पर
प्रेत युगों के करते तांडव,
भव मानव का मिलन तीर्थ
बन रहा रक्त चंडी का रौरव !
अनिर्वाप्य साम्राज्य लालसा
अगणित नर आहुति देती नव,
जाति वर्ग औ' देश राष्ट्र में
आज छिडा प्रलयंकर विप्लव !

नव युग की नव आत्मा दो पशु मानव को,
नव जीवन की नव इंद्रिय,
नव मानवता का साम्राज्य बने भू पर
दश दिशि के जनगण को प्रिय !

कवि कृषक

जोतो हे कवि, निज प्रतिभा के
फल से निष्ठुर मानव अतर,
चिर जीर्ण विगत की खाद डाल
जन - भूमि बनाओ सम सुदर।
बोओ, फिर जन मन मे बोओ,
तुम ज्योति पख नव बीज अमर,
जग जीवन के अकुर हँस हँस
भू को हरीतिमा से दे भर।
पृथ्वी से खोद निराओ, कवि,
मिथ्या विश्वासो के तृण खर,
सीचो अमृतोपम वाणी की
धारा से मन, भव हो उर्वर।
नव मानवता का स्वर्ण - शस्य -
सौन्दर्य लवाओ जन - सुखकर
तुम जग गृहिणी, जीवन किसान,
जन हित भडार भरो निर्भर।

वाणी

तुम वहन कर सको जन मन मे मेरे विचार,
वाणी मेरी चाहिए तुम्हे क्या अलकार।
भव कर्म आज युग की स्थितियो से है पीडित,
जग का रूपातर भी जनैक्य पर अवलंबित ;
तुम रूप कर्म से मुक्त, शब्द के पख मार,
कर सको सुदूर मनोनभ में जन के विहार,
वाणी, मेरी चाहिए तुम्हे क्या अलकार।
चित् शून्य,—आज जग, नव निनाद से हो गुजित,
मन जड,—उसमे नव स्थितियो के गुण हो जागृत,
तुम जड चेतन की सीमाओ के आर पार
झकृत भविष्य का सत्य कर सको स्वराकार,
वाणी मेरी, चाहिए तुम्हे क्या अलकार।
युग कर्म शब्द, युग रूप शब्द, युग सत्य शब्द,
शब्दित कर भावी के सहस्र शत मूक अब्द,

ज्योतित कर जन मन के जीवन का अधकार
तुम खोल सको मानव उर के नि शब्द द्वार,
वाणी मेरी, चाहिए तुम्हे क्या अलकार!

आँगन से—

रोमाचित हो उठे आज नव वर्षा के स्पर्शों से?
छोटे-से आँगन मेरे, तुम रीते थे वर्षों से!
नव दूर्वा के हरे प्ररोहो मे अब भरे मनोहर
मरकत के टुकडे-से लगते तुम विजडित भू उर पर!
जन निवास से दूर, नीड मे वन तरुओ के छिपकर,
भू उरोज-से उभरे इस एकात मौन भीटे पर
कोमल शाद्वल अचल पर लेटा मै स्मित चिन्तनपर,
जीवन की हँसमुख हरीतिमा को देखूँ आँखे भर!

एक ओर गहरी खाई मे सोया तरुओ का तम,
केका रव से चकित, बखेरे सुख स्वप्नो का सभ्रम!
और दूसरी ओर मजरित आम्र विपिन कर मुखरित
मधु मे पिक, पावस मे पी-खग करे हृदय को हर्षित!
हरित भरित वन-नीम उच्छ्वसित शाखाओ का विह्वल,
वक्षभार, हाँ, रहे झुकाए मेरे ऊपर कोमल!

याद

बिदा हो गई साँझ, विनत मुख पर झीना आँचल धर,
मेरे एकाकी आँगन मे मौन मधुर स्मृतियाँ भर!
वह केसरी दुकूल अभी भी फहरा रहा क्षितिज पर,
नव असाढ के मेघो से घिर रहा बराबर अबर!

मै बरामदे मे लेटा, शय्या पर, पीडित अवयव,
मन का साथी बना बादलो का विषाद है नीरव!
सक्रिय यह सकरुण विषाद,—मेघो से उमड उमड कर
भावी के बहु स्वप्न, भाव बहु व्यथित कर रहे अतर!
विरह मुखर दादुर पुकारता उत्कठित भेकी को,
बर्हभार से मोर लुभाता मेघ-मुग्ध केकी को,

आलोकित हो उठता सुख से मेघो का नभ चचल,
अतरतम मे एक मधुर स्मृति जग जग उठती प्रतिपल।
कपित करता वक्ष धरा का घन गभीर गर्जन स्वर,
भू पर ही आ गया उतर शत धाराओ में अबर।
भीनी भीनी भाप सहज ही साँसो मे घुलमिल कर
एक और भी मधुर गध से हृदय दे रही है भर।

नव असाढ की सध्या मे, मेघो के तम मे कोमल,
पीडित एकाकी शय्या पर, शत भावो से विह्वल,
एक मधुरतम स्मृति पल भर विद्युत् सी जल कर उज्वल,
याद दिलाती मुझे हृदय मे रहती जो तुम निश्चल।

विनय

विज्ञान ज्ञान बहु सुलभ, सुलभ बहु नीति धर्म,
सकल्प कर सके जन, इच्छा अनुरूप कर्म।
उपचेतन मन पर विजय पा सके चेतन मन,
मानव को दो यह शक्ति पूर्ण जग के कारण।

मनुजो की लघु चेतना मिटे, लघु अहकार,
नव युग के गुण से विगत गुणो का अधकार।
हो शात जाति विद्वेष, वर्ग गत रक्त समर,
हो शात युगो के प्रेत, मुक्त मानव अतर।
सस्कृत हो सब जन, स्नेही हो, सहृदय, सुदर,
सयुक्त कर्म पर विश्व एकता हो निर्भर।
राष्ट्रो से राष्ट्र मिले, देशो से देश आज,
मानव से मानव, हो जीवन निर्माण काज।
हो धरणि जनो की, जगत स्वर्ग, जीवन का घर,
नव मानव को दो, प्रभु। भव मानवता का वर।

सम्मोहन

जादू बिछा दिया जन भू पर।
तुमने सोने की किरणो की
जीवन हरियाली बो बो कर।
फूलो से उड फूल, रँगो से
निखर सूक्ष्म रँग उर के भीतर
बुनते स्वप्न मधुर सम्मोहन
स्वर्ण रुधिर से अतर थर् थर्।

स्पदित आज हृदय कण कण मे
भाषा बनी द्रुमो की मर्मर,
लहरे उर पर देती आँचल
कमल मुखो मे जीवित-से सर।
प्रणय दृष्टि दी मुग्ध दृगो को,
प्राणो मे सगीत दिया भर,
स्वर्ण कामना का नव घूँघट
डाल धरा के मुख पर सुदर।

निज जीवन का कटु सघर्षण
भूल गया अब मानव अतर,
जग जीवन के नव स्वप्नो की
ज्योति वृष्टि मे अमर स्नान कर।
स्वर्ण जाल मे तुमने जीवन
लिपटा लिया, हृदय मे हँसकर,
मर्म प्रीति का झरता अविरल
इन प्राणो मे स्वर्णिम निर्झर।

स्वर्ग धरा को बाँध पाश म
स्वर्ण चेतना के चिर सुखकर
स्वप्नो को तुमने जीवन की
देही दे दी, मर्त्य शोक हर।

रजतातप
(आत्म निर्माण)

आज चेतना के प्लावन सा
निखर रहा रजतातप सुदर,
ऊषा सध्या के स्वप्नो के
स्वर्णिम पुलिनो को मज्जित कर।
चद्रातप सी स्निग्ध नीलिमा
यज्ञ धूम सी छाई ऊपर,
किरणो के स्पर्शों से गुफित
ज्योति वृत्त सा खिचा दिगतर।

किन स्वर्गिक शिखरो को छूकर
बहता रजत समीरण मथर।—
गध हीन, निज सूक्ष्म गध से
सहसा प्राणोज्वल कर अतर।
निर्मलता ही जल धारा सी
बह बह धोती भू के रज कण,
भूतो की चिर पावनता मे
हृदय सहज करता अवगाहन।

लौट मुग्ध विस्मित लोचन मन
अतर्मुख करते अवलोकन,
निभृत स्पर्श पाकर निसर्ग का
आत्मा गोपन करती चिन्तन।
श्रात इद्रियाँ अनुप्राणित हो
देवो का करती आवाहन,
अतर्नभ के दुग्धामृत से
भरे पुन वे इनमे जीवन।

दीप शिखा सी जगे चेतना
मिट्टी के दीपक से उठ कर,
तैल धारवत् मर्म स्नेह पा
स्वर्ग विभा से भूतल दे भर।
अतरतम की नीरवता मे
जाग्रत् हो सुर मादन गुजन,
खडित भव विश्रृखलता को
बाँध अमर गति लय मे चेतन।

फिर श्रद्धा विश्वास प्रेम से
मानव अतर हो अत स्मित,
सयम तप की सुदरता से
जग जीवन शतदल दिक् प्रहसित।
व्यक्ति विश्व मे व्यापक समता
हो जन के भीतर से स्थापित,
मानव के देवत्व से ग्रथित
जन समाज जीवन हो निर्मित।

करे आत्म निर्माण लोकगण
आत्मोज्वल, भू मगल के हित,
बहिरतर जड चेतन वैभव
मस्कृति मे कर निखिल समन्वित।
सहृदयता का सागर हो मन
हृदय शिला हो प्रेरणा सरित,
भू जीवन के प्रति रुचि जन मे
मानव के प्रति मानव प्रेरित।

प्राणो के स्तर स्तर मे पुलकित
अमर भावनाएँ हो विकसित,
प्रीति पाश मे बँध सुदरता
काम भीति से हो अकलकित।
देव वृत्तियो के सगम मे
डूबे भ् विप्लव, सघर्षण,
जीवन के सगीत मे अमित
परिणत हो धरती का क्रदन।

ऊर्ध्वग शृगो के समीर को
आओ, साँसो मे उर मे भर
इस पवित्रता से हम तन का
मन का पोषण करे निरतर।
मुक्त चेतना के प्लावन सा
उमड रहा रजतातप निर्झर,
आज सत्य की बेला बहती
स्वप्नो के पुलिनो के ऊपर।

हिमाद्रि

मानदड भू के अखड हे,
पुण्य धरा के स्वर्गारोहण,
प्रिय हिमाद्रि, तुमको हिमकण - से
घेरे मेरे जीवन के क्षण।
मुझ अचलवासी को तुमने
शैशव मे आशी दी पावन,
नभ मे नयनो को खो, तब से
स्वप्नो का अभिलाषी जीवन।

कब से शब्दो के शिखरो मे
तुम्हे चाहता करना चित्रित
शुभ्र शाति मे समाधिस्थ हे
शाश्वत सुदरता के भ्भृत।
बाल्य चेतना मेरी तुम मे
जडीभूत आनद तरगित,
तुम्हे देख सौन्दर्य साधना
महाश्चर्य से मेरी विस्मित।

जिन शिखरो को स्वर्ण किरण नित
ज्योति मुकुट से करती मडित,
जिन पर सहसा स्खलित तडित्
हो उठती निज आलोक से चकित।
जिन शिखरो पर रजत पूर्णिमा
सिन्धु ज्वार सी लगती स्तभित,
जिनकी नीरवता मे मेरे
गीत स्वप्न रहते थे झकृत।

जिनकी शीतल ज्वाला मे जल
बनी चेतना मेरी निर्मल
प्राण हुए आलोकित जिनके
स्वर्गोन्नत सौन्दर्य से सजल।
हृदय चाहता काव्य कल्पना को
किरीट पहनाना उज्वल
स्मति मे ज्योति तरगित स्वर्गिक
शृगो के आलोक का तरल।

वसुधा की महदाकाक्षा - से
स्वर्ग क्षितिज से भी उठ ऊपर

अतर आलोकित - से स्थित तुम
अमरो का उल्लास पार्न कर!
उरोभार - से गौर, धरणि के,
सोया स्वर्ग शीश धर जिस पर,
तुम भारत के शाश्वत गौरव
प्रहरी - से जागरित निरतर!

रवि की किरणे जिसे स्पर्श कर
हो उठती आलोक निनादित,
जिस पर ऊषा सध्या की छबि
आदि सृष्टि - सी ही स्वर्णांकित!
इन्दु ज्वलित तुम स्फटिक धवलिमा
के क्षीरोदधि - से हिल्लोलित
ज्योत्स्ना मे थे स्वप्न मौन
अप्सरा लोक - से लगते मोहित!

सुरँग प्रवालो की रत्नश्री
अहरह रहती जहाँ मर्मरित,
देवदारु की चारु सूचि से
मरकत तलहटियाँ रोमाचित!
मौन स्वर्ग मुख पर अकित तुम
शुचि दिगत स्मिति-से चिर शोभित,
आदि तत्व - से, अपनी ही शोभा
विलोक रहते अनिमेषित!

नीली छायाएँ थी तन पर
लगती आभा की - सी सिकुडन,
इद्रधनुष मडल से दीपित
उडते थे शत हँसमुख हिमकण!
स्वर्दूतो के पखो - से स्मित
तडित् चकित हिम के रोमिल घन
रगो से वेष्टित रखते थे
तुमको हे आलोक निरंजन!

प्रति वत्सर आती थी मधुऋतु
सद्य. स्फुट देही ले कुसुमित
चीर रश्मियो को, फूलो के
अगो पर निज कर शत रंजित!

खुलती पखडियो की कचुक
सौरभ श्वासो से थी स्पदित,
मेरे शैशव को नित उसकी
गीत कोकिला रखती कूजित !

कलरव, स्वप्नातप, सुरधनु पट,
शशि मुख, हिम स्मिति, गात्र ले श्वसित
षड्ऋतु करती थी परिक्रमा
अप्सरियो सी सुरपति प्रेषित !
शरद चद्रिका हो जाती थी
स्वप्नो के शृगो पर विजडित,
हिम की परियो का अंचल उड,
भू को कर लेता था परिवृत !

रग रग के चित्रित पक्षी
उडते नभ में गीत तरगित,
नील पीत भृंगो का गुजन
मौन क्षणो को रखता मुखरित !
ऊष्मा का सूर्यातप तुम मे
लगता शीतलता - सा मूर्तित,
इद्रचाप पुल पर, वर्षा मे,
सुरबालाएँ आ जाती नित !

जग प्रच्छाय गुहाओ मे, नव
वाष्पो के गज भरते गर्जन,
चचल विद्युत् लेखाएँ थी
लिपट दृगो से जाती तत्क्षण !
ताराओ के साथ सहज
शैशव स्वप्नो से भर जाता मन,
उठते थे तुम अतर मे
सौन्दर्य स्वप्न शृगो पर मोहन !

मेघो की छाया के सँग - सँग
हरित घाटियाँ चलती प्रतिक्षण,
वन के भीतर उडता चचल
चित्र तितलियो का कुसुमित वन !
रँग - रँग के उपलो पर रणमण
उछल उत्स करते कल गायन,
झरनो के स्वर जम - से जाते
रजत हिमानी सूत्रो मे घन !

भीम विशाल शिलाओ का वह
मौन, हृदय मे अब तक अकित,
फेनो के जल स्तभो - से वे
निर्झर रभस वेग से मुखरित !
चीडो के तरु वन का तम
साँसे भरता मन मे आदोलित,
दरियो की गहरी छायाएँ
ज्योतिरिगणो से थी गुफित !

गाते उर मे क्षिप्र स्रोत,
लहराते सर तुषार के निर्मल,
सौरभ की गुजित अलको से
छू समीर उर करता शीतल !
नीली पीली हरी लाल
चपलाओ का नभ जगता चचल
रजत कुहासे मे, क्षण मे,
माया प्रातर हो जाता ओझल !

सभव, पुरा तुम्हारी द्रोणी
किन्नर मिथुनो से हो कूजित,
छाया निभृत गुहाएँ उन्मद
रति सौरभ से सतत उच्छ्वसित !
औषधियाँ जल जल दरियो के
स्वप्न कक्ष करती हो दीपित,
ओसो के वन मे मिलते हो
स्तन हारो के मुक्ताफल स्मित !

मदन दहन की भस्म अनिल मे
उड अब तक तन करती पुलकित,
सती अपर्णा के तप से
वन श्री अवाक्-सी लगती विस्मित !
अब भी ऊषा वहाँ दीखती
वधू उमा के मुख-सी लज्जित,
बढती चद्र कला भी गिरिजा-सी
ही गिरि के क्रोड मे उदित !

अब भी वही वसत विचरता
पुष्प शरो से भर दिगत स्मित,
गधोद्दाम धरा वह ही, पाषाण
शिलाएँ पुलक पल्लवित !

अब भी प्रिय गौरा का शैशव
वर्णन करते खग पिक मुखरित,
देवदारु के ऊर्ध्व शिखर
वैसे ही शकर-से समाधि स्थित।

अभी उतरता कूर्म सानु पर
वप्र क्रीडा परिणत गज घन,
वातायन से मद स्तनित कर
देता कवि सदेश आर्द्र स्वन।
अब भी अलके उठा देखती
ग्राम वधू उसको सरल नयन,
शुभ्र बलाको के दल नभ मे
कल ध्वनि भर करते अभिवादन।

× × ×

आज जीवनोदधि के तट पर
खड़ा अवाछित, क्षुब्ध, उपेक्षित,
देख रहा मै क्षुद्र अहम् की
शिखर लहरियो का रण कुत्सित।
सोच रहा, किसके गौरव से,
मेरा यह अतर जग निर्मित,
लगता तब, हे प्रिय हिमाद्रि,
तुम मेरे शिक्षक रहे अपरिचित।

और, पूछता मै मन से, क्या
यह धरती रह सकती जीवित
जो तुम स्वर्गिक गरिमा भू पर
बरसाते रहते न अपरिमित।
शिखर शिखर ऊपर उठ तुमने
मानव आत्मा कर दी ज्योतित,
हे असीम आत्मानुभूति मे
लीन, ज्योति शृगो के भूभृत्।

घनीभूत अध्यात्म तत्व-से
जिससे ज्योति सरित शत नि सृत
प्राणो की हरियाली से स्मित
पृथ्वी तुमसे महिमा मडित।
स्फटिक सौध-से श्री शोभा के
रश्मि रेख शृगो से कल्पित,
स्वर्ग खड तुम इस वसुधा पर,
पुण्य तीर्थ हे, देव प्रतिष्ठित।

मत्स्य गंधाएँ

स्वर्ण पख साध्य प्रहर,
ज्योति तरगित सागर
मान चित्र सा सुदर!

लहरो से लिपट लहर
लोट रही लहरो पर,
स्नायु हर्ष रहा सिहर!

पुलिन स्वप्न वेश्म जडित
ताल हस्ततल वीजित
यक्ष लोक सा चित्रित!

वाष्प ग्रथित मेघ सुभग
द्वाभा पखो मे रँग,
उडते ज्यो तूल विहग!

सौ सौ ये लोल लहर
परियो के रत्न विवर
सौधो की स्वर्ण शिखर!

तट पर मै रहा विचर
ये परियाँ, सतरँग पर,

कहती आकर बाहर
'हम जीवन धात्री वर!'

सुनता मै फेन मुखर
विगलित मोती के स्वर!

'जीवन के अणु उर्वर
पाल पोस पृथ्वी पर
लाईं हम, भू नभचर!'

'ज्योति प्रीति प्राण सुघर
सिन्धु प्रजा, जन-सुखकर
रचे धरा स्वर्ग अमर,—

देख रही उठ उठ कर
हम भू तट छू दुस्तर
मा की ममता से भर!'

स्वर्ण निर्झर
(सौन्दर्य चेतना)

स्वर्ण रजत के पत्रों की रत्नच्छाया में सुदर
रजत घटियो सा झरता स्वर्णिम किरणो का निर्झर।
सिहर इद्रधनुषी लहरो मे इद्रनीलिमा का सर
गलित मोतियो के पीतोज्वल फेनो से जाता भर।
वहाँ सूक्ष्म छायाभा के तन तैर अमृत मे मादन
वर्ण विभा से भरी अगभगी से हर लेते मन।
वह शोभा की द्वाभा का नीहार लोक चिर मोहन
सहज स्फुरित हो उठता नीरव अतस्तल में गोपन।

ऊषा की लाली से कल्पित नव वसत के कोपल,
सौरभ वाष्पो पर पुष्पो के शत रँग खिलते प्रतिपल।
शशि किरणो के नभ के नीचे, उर के सुख से चचल,
तुहिनो का छाया वन कँपता रहता नित तारोज्वल।
वहाँ एक अप्सरी, स्वर्ण तन चद्रातप से निर्मित,
नवल अवयवो की जल तल की जाल व्रतति सी शोभित।
फूल देह को उसकी घेरे स्वर्ग लालसा गुजित,
एकाकी प्रिय अगो पर कोमल लावण्य अनावृत।

सुप्त स्वर्ण के चक्रागो-से गौर उरोजो पर स्थित
शुभ्र सुधा के मेघो की जाली उठती गिरती नित।
उठे कामना शिखरो-से, श्वासो से स्वर्गिक स्पदित,
रजत प्रीति के उन कलशो पर स्वर्ण शिराएँ वेष्टित।
ज्योति भँवर सी सुघर नाभि प्रिय रजत फुहार उदर में,
स्वर्ण वाष्प का घन लटका जघनो के माणिक सर में।
रजत शाति आत्मा के नभ की, झकृत उसके स्वर मे,
मुक्ता घट मे स्वर्ण प्रीति की सुरा लिये वह कर मे।

मृदुल कामना लतिकाओ-सी बाँहे प्रीति प्रलंबित
आलिगन भरने को अति कोमल पुलको से कल्पित।
अरुण सुरा प्यालो-से करतल, प्रणय रुधिर से रजित,
दीप शिखा-सी अगुलियो पर हीरक छवि नख ज्योतित।
भौरो की गुजारो-से श्लथ कुतल मसृण तरगित,
जिनके कोमल सुरभित तम मे स्वप्न काम के निद्रित।
वाणी के उद्ग्रीव हस-सी ग्रीवा की शोभा सित,
भाल भृकुटि श्रुति चिबुक नासिका उसके सतत निरुपमित।

स्वर्गिम निर्झर सी रति सुख की जघाओ पर पेशल,
लिपटी जीवन की ज्वाला उद्दीपन करती शीतल।
नव प्रभात किरणो से चुम्बित रक्त कमल-से पदतल,
लहरा उठती पग पग पर स्वर्गगा भू पर चचल।
खिले कपोलो पर सुषमा के पाटल छवि से लज्जित,
अधरो पर मदिरा प्रवाल की बनी मधुर अधरामृत।
इदु रश्मि के कुद मुकुल दशनो मे द्रवित सहज स्मित,
नील कमल नयनो मे नीरव स्वर्ग प्रीति का विकसित।

स्निग्ध स्पर्श बहता प्राणो मे अमर चेतना सा नव,
उर को होता चिर प्रतीति की मधुर मुक्ति का अनुभव।
मन मे भर जाता स्वर्गिक भावो का स्वर्णिम वैभव,
हृदय हृदय का मिल, अभिन्न बनना हो जाता सभव।
यह सौन्दर्य विभा रे उसके अमर प्रेम की छाया,
दिव्य प्रेम देही, सुदरता उसकी सतरँग काया।
प्रेम सत्य, शिव सार, प्रेम मे नित आनद समाया,
दृढ प्रतीति को उसने अपनी चिर पद पीठ बनाया।

ज्योति भारत

ज्योति भूमि,
जय भारत देश।
ज्योति चरण धर जहाँ सभ्यता
उतरी तेजोन्मेष।

समाधिस्थ सौन्दर्य हिमालय,
श्वेत शाति आत्मानुभूति लय,
गगा यमुना जल ज्योतिर्मय,
हँसता जहाँ अशेष।

फूटे जहाँ ज्योति के निर्झर
ज्ञान भक्ति गीता वशी स्वर,
पूर्ण काम जिस चेतन रज पर
लोटे हँस लोकेश।

रक्त स्नात मूर्च्छित धरती पर
बरसा अमृत ज्योति स्वर्णिम कर,
दिव्य चेतना का प्लावन भर
दो जग को आदेश।

हिमाद्रि और समुद्र

वह शिखर शिखर पर स्वर्गोन्नत,
स्तर पर स्तर ज्यो अतर्विकास
चढ सूक्ष्म सूक्ष्मतम चिद् नभ मे
करता हो शुचि शाश्वत विलास।
वह मौन, गभीर, प्रशात, ऊर्ध्व,
स्थित धी, असग, चिर निरभिलाष
आत्मा की गरिमा का भू पर
बरसाता हो अकलुष प्रकाश।

वह निर्विकल्प चेतना शृग
उठ स्वर्ग क्षितिज से भी ऊपर
अतर्गौरव मे समाधिस्थ
अपनी ही सत्ता पर निर्भर।
वह ज्यो असीम सौन्दर्य अमर,
जो तृण तृण पर से रहा निखर,
वह रोमाचित आनद, नृत्य करता
विमुग्ध भव जिस लय पर।

यह ज्यो अनत जीवन वारिधि,
अहरह अशात औ' उद्वेलित,
जिसके निस्तल गहरे रँग मे
अगणित भव के युग अतर्हित।
जग की अबाध आकाक्षा से
इसका अतस्तल आदोलित,
सुख दुख आशा आशका के
उत्थान पतन से चिर मथित।

यह मनश्चेतना ज्यो सक्रिय
भू के चरणो पर बिखर बिखर
शत स्नेहोच्छ्वसित तरगो की
बाँहो में लेती भू को भर।
नभ से बन पवन, पवन से जल,
लालायित यह चेतना अमर
सोई धरती से लिपट, जगाने
उसे, युगो की जडता हर।

ऊषा

(मन. स्वर्ग)

लो, वह आई विश्वोदय पर
स्वर्ण कलश वक्षोजो पर धर!
अर्ध विवृत कर ज्योति द्वार पट,
ज्वलित रश्मियो की अजलि भर!
वह पवित्रता सी अभिषेकित,
सद्य स्फुट शोभा मे आवृत,
आई अरुणोदय मदिर मे
पथ प्रकाश का करने विस्तृत!
आनन मे लावण्य अगुठित,
प्रीति दृष्टि आलोक से स्तिमित,
दिव्य चेतना की ऊषा वह
अधर पल्लवो मे प्रभात स्मित!

ज्योति नीड के विहग जगे, गाते नव जीवन मगल,
रजत घटियाँ बजी अनिल मे, ताली देते तरुदल!
चूम विकच नलिनी उर, गूँजे गीत पख मधुकर दल,
नृत्य तरगित बहे स्रोत, ज्यो मुखरित भू पग पायल!
विहँसे हिमकण किरण गर्भ, स्वर्गिक जीवन के-से क्षण,
खोल तृणो के पुलक पख उडने को भू रज के कण!
खिसका वसुधा के उरोज शिखरो से चल मलयाचल,
सरिता की जाँघो से सरका लहरा रेशम सा जल!
स्वर्ग विभा धरती को छू हो उठी सुरजित,
ज्योति तमस मिल हुए विश्व द्वाभा में विकसित!
शुभ्र चेतना हँसी हृदय के रागो मे स्मित,
जीवन के वैभव से हुई धरा रज कुसुमित!

रग चपल पुष्प हास पख खोल भूमि कंत
भृग गुजरित, पिकी रटित जगा नवल वसंत!
नव प्रवाल प्रज्वलित श्वसित रजत हरित दिगत,
गीत गध मधु मरद हिम ग्रथित समीर मद!
अमद रहस गीत नृत्य नाद से दिशा ध्वनित,
अनत नीलिमा सृजन तरग भगिमा गलित!
अबाध कामना मथित समुद्र वारि उच्छ्वसित,
अलघ्य शैल शृंग मौन चित्र-शाति में जडित!

कुजो के कपित भूतल पर
ढँक रजत हरित जाली से तन
छाया की बाँहो मे आतप
अँगडाता स्वप्नो से उन्मन!
श्लथ कर कचुक की पखडियाँ
कलियो के नव उर कर विकसित,
फूलो पर कँपता मलयानिल,
स्वर्णिम मरद-रज से सुरभित!
लहरो से लिपट रही लहरे
तरुओ से लतिकाएँ कोमल,
भू रज पर लोट रही किरणे
तरुदल को चूम रहे तरुदल!

स्वर्ण रजत की धूलि भरा रे निखिल दिगतर,
मनश्चेतना चूर्ण उड रहा हो ज्यो भास्वर!
दिव्य उषा के मनोहास्य से दिशि आलोकित,
सूक्ष्म सृष्टि नीहार सृजन सुख से आदोलित!

नव प्रवाल लाली मे गुठित
छुईमुई सी लज्जा कोमल,
मसृण जलद मे शशि छाया सी
आ-जा, दिपती छिपती प्रतिपल!
अधरो पर मरती मृदु मर्मर,
कँपते गालो मे स्वर्णिम सर,
स्वर्ग विभा रज तन को छूकर
खिलती सकुचाती क्षण क्षण पर!

व्रीडा दौडी भू पर आ ऊषा के मुख पर
प्रणय रुधिर से हृदय शिराएँ काँपी थर थर!
अधर पल्लवो मे जागा मधु स्वर्णिम मर्मर,
मौन मुकुल मुख खिला लालिमा से रँग सुदर!
क्या था गिरि कुजो मे, सरित तटो मे गोपन,
लिपटी मर्म मधुर लज्जा मे जो अमर किरण!
सलज किसलयो का धर आनन पर अवगुठन
स्वर्ग चेतना बनी लाज मदिरा पी मोहन!
नवल उरोज सरोज हुए सरसी के दोलित,
लहरो का आँचल दे वह तन करती आवृत,
अमिट कामना स्पदित षट्पद शत स्वर गुजित
उडते, ईषत् नव कलियों का मुख कर चुबित!

रत्नच्छाया मे ज्यो परिवृत
आई सज्जा चरण धर रणित,
मणि मुक्ताओ के कर इगित
स्वर्ण रजत सुषमा मे झकृत।
पुष्प पँखडियो के शत-रँग पर,
तुहिन तरल नख, नव पल्लव कर,
धरती पग कुछ नभ कुछ भू पर
इद्रधनुष प्रति रजकण मे भर।

किया तापसी को नव कलियो ने खिल सज्जित,
मधुऋतु के रगो की चोली से कर वेष्टित।
लिपटी लता पदो से चल अलियो से गुजित,
स्वर्ण मजरित कटि काची झनकी पिक कूजित।

मल्लिका बनी हृदय का हार
स्वर्ण गेदा श्रुति भूषण स्फार,
कचो मे गुँथे बकुल सुकुमार
हँसे ककण बन हरसिगार।
यूथिका बनी वलय कोमल
कुमुद वक्षोजो बीच तरल
शीश का फूल शिरीष नवल
पदो पर खिल वजुल पायल।
जलधि-से लहरे चचल प्राण,
खिला सरसिज सा जीवन-सार,
हृदय के शतदल खुले अजान
भाव सुषमा से रँग सुकुमार।
सलिल पर ज्यो पकज के पत्र
चेतना पर जीवन का भार
लगा तिरने, स्वप्नो का छत्र
पद्म सा जगा मनस् साकार।
मर्म मे अमृत प्रीति मधुकोष,
दलो मे ध्वनित स्पृहा गुजार,
स्वय ज्यो जीवन का परितोष
बना शोभा विकास विस्तार।

अमर चरण रग हृदय राग से, मरण शील बन,
परम अहम्, चेतना बुद्धि बन, तपस से सृजन
करने लगे मनोजीवन का स्वप्नो से घन,
आत्मा का ऐश्वर्य बाँध भावो मे मोहन।

तुहिन कणो का मुकुट पहन आनद बना सुख,
चटुल लहरियों पर चल, किरणो से ढँक स्मित मुख।
स्रोतो मे मोती, तरुदल मे काचन मर्मर
रजत अँगुलियो मे समीर के पुलक स्पर्श भर।
हृदय शिराएँ झकृत, पलक निमिष से चचल,
उतरा वह भू पर पकडे शोभा का अचल।
रोओ मे विद्युत्, श्वासो मे विस्मृति मादन,
मदिर प्रीति की स्वर्ण सुरा का पी सजीवन।

गात्र कनक चपक ज्योत्स्ना का, केसर पुलकित,
रजत हस उर के नव इन्द्र जलद से सवृत,
शोभा थी स्वप्नो की कोमलता से कल्पित,
स्वर्ण किकिणी स्मिति, प्रवाल अधरो पर झकृत।
सीप छटा सा उदर, नाभि मुक्ताफल सी स्मित,
पुष्प पुलिन जघनो पर चिर लालसा तरगित,
वह लावण्य व्रतति थी कटि तनिमा से दोलित
प्रीति पाश बाँहे पुलको से स्पर्श - प्रलबित।
उसे देख, वसुधा के स्वप्नो का जग अपलक
रँग रँग की पखडियो मे खिल उठा अचानक।
रँगो का हँस उठा इद्र सम्मोहन व्यापक,
गूँज उठी, कल कूक उठी कामना जग अथक।

मधुलिह् चुबि शिरीष वेणि, लेखा शशि आनन,
सुरभि वाष्प के वसन, हिमानी धौत कुसुम तन,
आई प्रीति, पकड प्रतीति का रश्मि-स्पर्श कर,
उर स्पदन से दोलित, आशा के खोले पर।
स्वप्नो का पट बुन उसने, उर रागो से रँग,
जन्म मरण, सुख दुख, विरह मिलन बाँधे सँग सँग।
उदधि उच्छ्वसित, पृथ्वी पुलकित, अपलक उडुगण,
रहे अवाक् गिरि, किया सभी ने आत्म समर्पण।
प्राणो के स्वप्नालिगन मे बँध वसुधा पर
सृजन-प्राण बन गए स्वय को भूल चराचर।
रक्त सुरा, सगीत बना उर उर का स्पदन,
पुलको में पल्लवित हँस उठे जड औ' चेतन।

तुहिन वाष्प के सुरँग जलद से छादित
इदु रश्मि के इद्रजाल से स्पर्शित,
अर्ध विकच कलिका के उर मे जृभित
स्वप्न दिखाई दिया रह मुख से स्मित।

स्वर्णिम केसर की अलके थी सुरभित
अर्ध खुले लोचन रहस्य से विस्मित,
ऊर्मिल सरसी सा उर शशि कर गुफित,
इद्र धनुष छाया पट से तन आवृत।
सृजन प्ररोह हृदय मे था चिर गोपन,
मुग्ध कल्पना सँग कर उसने प्रजनन,
भरा धरा मे अतुल मनोमय जीवन,
उर उर मे मधु आकाक्षा का गुजन।

हिम कुदेन्दु समान कल्पना शोभित,
सित सरसिज पर लेटी शशि कर सी स्मित,
धूपछाँह रँग तिर अचल मे अगणित
करते थे मानस को रग तरगित।
प्राणो की झकृत तत्री कर मे धर
बरसाती उर मे रागो के मधु स्वर,
सुघर इगितो से शोभा पडती झर
मर्म मधुर नीरव स्मिति से रस निर्झर।

आई आशा, शशि की रजत तरी पर चढकर,
स्वर्ण हास्य से आलोकित कर मेघो का घर।
गीत स्वप्न से ग्रथित मनोजव के खोले पर,
चपल तडित् भ्रू भगो से पुलकित कर अतर।
रजत पल्लवो की ज्वाला से वेष्टित प्रिय तन,
उदधि ज्वार पर चढ फेनो पर करती नर्तन,
चिर अधखुले उरोजो पर जलते थे उडुगण,
रजस्राव के अभ्रक से ज्योतित भू रज कण।

शरद चद्रिका स्नात मल्लिका सी नव निर्मल
हिम वाष्पो का झीना पट पहने किरणोज्वल,
शैशव की स्मिति सी प्रतीति आई चिर निश्छल,
भर अनभ्र नीलिमा मौन नयनो मे निस्तल।
स्वर्ग सुधा ला इदु रश्मि घट में हिम जल स्मित
पावन उसने किए हृदय भेदो से पीडित,
दशनो की आभा स्मिति से अतर कर विगलित,
किए प्राण कोमल मृणाल के ततु मे ग्रथित।

लहरो के पुलिनो-से अचपल
जागे धैर्य शौर्य उर सबल,
हिम शिखरो से उन्नत अविचल
अतर पौरुष से अरुणोज्वल।

रजत स्वर्ण ज्वाला के मुदर
कर मे धरे त्रिशूल अभयकर,
झझा लहरो के तुरगो पर
आए वे तम भ्रम के जित्वर ।

नभ-से नीरव निस्तल लोचन,
धरती सा था धीरज का मन,
शौर्य सपख अद्रि सा शोभन,
छू न सका था जिसे वृत्रहन् ।
आत्म त्याग,—तप से दीपित तन,
मृत्यु कठ, आपद् आभूषण,
प्रकट हुआ, आक्षितिज थे नयन,
ममता घन से शून्य उर गगन ।
सेवापगा, विरति शशि मस्तक,
थी विनम्रता उर मे नत स्नक्,
शात गहन निशि नभ सा अपलक,
अथक कर्म रत, भव से अपृथक् ।

सेवा उतरी, ज्यो गगाजल,
कलुष तृषित लहरो से चचल,
वीतराग तन पर सध्याचल,
नत मुख पर श्रमकण मुक्ताफल ।
स्तिमित दृष्टि थी, अधर सहज स्मित
सेवा का वक्षस्थल विस्तृत,
ध्रुव तारा से पथ चिर ज्योतित,
कांटो को करती थी कुसुमित ।
सँग कृतज्ञता थी, सजल नयन,
आकुल अतर, मूक थे वयन,
सुधर कुँई सी स्वप्निल चितवन,
लिपट व्रतति सी जाती तत्क्षण ।

विनत मुकुल सा सुहृद था विनय,
ग्रहण शील, चिर निरलस, निर्भय,
वह स्वभाव ही से था सहृदय,
निज अतर्वैभव मे तन्मय ।
इन्दु विभा ज्यो जलदो से छन
बेला वन मे लगती मोहन,
मौन मधुर गरिमा से शोभन
बना शील सस्कृत जग जीवन ।

जुगनुओ के ज्योति मडल से घिरा मुख शात,
तारिकाओ की सरसि सा स्वप्न स्मित उर प्रात,
इन्दु विगलित शरद घन सा वाष्प का तन कात
सजल करुणा थी खडी ज्यो इंद्रधूम दिनांत।
अतल नील अकूल नयनो का द्रवित नीहार
अश्रु फेनो से स्फुटित स्पदित उरोज उभार,
आर्द्र सौरभ श्वास, स्मिति हिम-स्रस्त हरसिंगार,
स्खलित होते स्रोत भू से सुन चरण झकार।

सहचरी थी क्षमा, गौरव रश्मि चुम्बित भाल,
युग पयोधर थे सुधाम्रुत् ज्योति कलश विशाल,
न्याय को धर अक मे मुख चूमती थी बाल,
दृष्टि पथ पर पख खोले शुभ्र रजत मराल।
दीप लौ सी थी अँगुलियाँ वरद कर मे स्फार,
चूम अधरो को सुरा बनती सुधा की धार,
स्पर्श पा हँसता पुलक सुख से व्यथा का भार,
मर्त्य से था स्वर्ग तक दृग नीलिमा विस्तार।

आभा देही श्रद्धा प्रकटी अतर्लोचन,
उर की सार सुरभि से कल्पित था प्रिय-श्री तन,
बरसाती आशीष रश्मि थी स्वर्गिक चितवन,
दिव्य रजत नीहार शाति से मडित आनन।
भू प्रदीप की शिखा स्वर्ग की ओर ऊर्ध्वचित्
वह निश्चल निष्कप, स्तभ किरणो की शोभित,
सूक्ष्म चेतना सिन्धु मथन से स्वत प्रस्फुटित,
शुभ्र उषा सी थी उर नभ मे उदित अगुठित।

साथ भक्ति थी, रोमाचो की स्रक् सी पावन,
नयनो के अभ्रो से झरते थे प्रकाश कण।
अधरो के पुलिनो पर बहता स्मिति का प्लावन,
उर-कपन मे बजते प्रिय पग नुपूर प्रतिक्षण।
तप्त कनक द्युति देह, सहज चदन सी वासित,
गेरिक श्रृगो - से उरोज थे, अश्रु माल स्मित,
सित कर्पूर शिखर सी, दिव्य शिखा से दीपित,
साध्य पद्म सा ध्यान मग्न उर प्रिय को अर्पित।

रक्त घनो की दीप गुहा से, दृष्टि कर चकित,
ज्वलित अर्चियो की प्रतिभा, हो तडित् सी स्फुरित,
दौडी मानस लहरो पर आलोक चमत्कृत,
सुरँग खगो-से उडते थे स्वर शब्द कल ध्वनित।

वर्ण वर्ण की गलित विभा से स्रवित कलेवर,
चपल चौकडी भरता शशि मृग था प्रिय सहचर,
तिग्म सुरभि सी उडती थी मारुत पखो पर,
दिव्य प्रेरणा किरणो की जाली मुख पर धर!
मुक्ति, सत्य औ' श्रेय अत मे हुए अवतरित,
सृष्टि पद्म सी मुक्ति हुई दश दिशि मे विकसित,
बधन हीन विविध बधन मे बँधती वह नित,
सूक्ष्म वाष्प से हिम, हिम से बन वाष्प अपरिमित!
मुक्ति पद्म पर धरे, सत्य आलोक के चरण
हँसता था, आनन से उठा हिरण्मय गुठन,
निज-पर को ज्यो भूल धरा के जड औ' चेतन
सत्य बन गए, स्वय सत्य था रज का प्रतिकण!

सत्य सुदूर समीप, सत्य था भीतर बाहर,
सत्य एक बहु, सूक्ष्म स्थूल, केवल, क्षर अक्षर,
धरा सत्य थी, सत्य पवन जल पावक अबर,
सत्य हृदय मन इद्रिय, सत्य समस्त चराचर!
अकथनीय था सत्य, ज्योति मे लिपटा शाश्वत,
अणु से भी लघु देह ज्वलित गिरि शृग सी महत्,
दृष्टि रश्मि थी ज्योति पथिक औ' स्वय ज्योति पथ,
धावित-स्थिर, जाज्वल्यमान शुभ सप्त अश्व रथ!
किरणो के दूर्वाप्रभ नभ सी मुक्ति थी अमित,
शुभ्र हस घेरे थे उसको पख खोल स्मित,
था अकूल आनद उदधि उर मे उद्वेलित,
ज्योति चूर्ण झरता अगो से मुक्त अनावृत!

तरुण सत्य के अर्ध विवृत जघनो पर शिर धर
लेटी थी वह दामिनि सी रुचि गौर कलेवर,
गगन भग-से लहराए मृदु कच अगो पर,
वक्षोजो के खुले घटो पर लसित सत्य कर!
समाधिस्थ था श्रेय, सत्य आरूढ निरतर,
धरे अक मे भू को, सुर जल स्रोत शीर्ष पर,
ताप गले में, सुधा शाति मस्तक पर भास्वर,
लिपटा तन से भाव विभूति, अभाव भोगधर!
देश काल सदसत् से पर, त्रिक् तप शूल धर,
देवो का पोषक था वह, दैत्यो का जित्वर,
काम क्रोध मद मत्सर थे उसके पद अनुचर,
वह स्वर्णिम किरणो से मडित, पाप तमस हर!

इस प्रकार चिर स्वर्ग चेतना हुई प्रतिष्ठित
जीवन शतदल पर, मन के देवो से भूषित;
जड धरणी के ताप शाप दुख दैन्य अपरिमित
काको-से पर खोल, हुए लय तमस में अचित्।

चद्रोदय

वह सोने का चॉद उगा ज्योतिर्मय मन सा,
सुरँग मेघ अवगुठन से आभा आनन सा।
उज्वल गलित हिरण्य बरसता उससे झर झर,
भावी के स्वप्नो से धरती को विजडित कर।

दीपित उससे अतरिक्ष पर मेघो का घर,
वह प्रकाश था कब से भीतर नयन अगोचर।
इदु स्रोत से ही रस स्रवित निभृत अभ्यतर,
प्राणों की आकाक्षा के वैभव से सुदर।

वह प्रकाश का बिम्ब मोहता मानव का मन,
स्वप्नो से रजित करता भू का तमिस्र घन।
आत्मा का पूषण वह, मनसोजात चद्रमस्,
जिससे चिर आदोलित जग जीवन का अभस्।

देव लोक मेखला, इदु पूषण का अतर,
सृजन शक्तियाँ देव, इद्र है जिनका ईश्वर।
दिव्य मनस् वह, निखिल विश्व का करता चालन,
पोषित उससे अन्न प्राण मन का जग जीवन।

वह सोने का चॉद उठा ज्योतित अधिमन सा,
मानस के अवगुठन के भीतर पूषण सा।
दुग्ध धार सी दिव्य चेतना बरसा झर झर,
स्वप्न जडित करता वह भू को स्वर्जीवन भर।

द्वा सुपर्णा

दो पक्षी है सहज सखा, सयुक्त निरतर,
दोनो ही बैठे अनादि से उसी वृक्ष पर।
एक ले रहा पिप्पल फल का स्वाद प्रतिक्षण,
बिना अशन दूसरा देखता अतर्लोचन।

दो सुहृदो - से मर्त्य अमर्त्य सयोनिज होकर
भोगेच्छा से ग्रसित, भटकते नीचे ऊपर,
सदा साथ रह, लोक लोक मे करते विचरण,
ज्ञात मर्त्य सब को, अज्ञात अमर्त्य चिरतन!

कही नही क्या पक्षी ? जो चखता जीवन फल,
विश्व वृक्ष पर नीड, देखता भी है निश्चल!
परम अहम् औ' द्रष्टा भोक्ता जिसमे सँग सँग,
पखो मे बहिरतर के सब रजत स्वर्ण रँग!
ऐसा पक्षी, जिसमे हो सपूर्ण सतुलन,
मानव बन सकता है, निर्मित कर तरु जीवन!
मानवीय सस्कृति रच भू पर शाश्वत शोभन
बहिरतर जीवन विकास की जीवित दर्पण!
भीतर बाहर एक सत्य के रे सुपर्ण द्वय,
जीवन सफल उडान, पक्ष सतुलन जो, विजय!

व्यक्ति और विश्व

यह नीला आकाश न केवल,
केवल अनिल न चचल,
इनमे चिर आनद भरा
मेरी आत्मा का उज्वल!
हलकी गहरी छायाओ के
घिरते जो रँग - बादल,
मेरी आकाक्षा की विद्युत्
बहती उनमे प्रतिपल!

मेरे प्राणो की श्यामलता
तृण तरु दल मे पुलकित,
मेरे उर की प्रणय भावना
कलि कुसुमो मे रजित!
मै इस जग मे नही अकेला
मुझको तनिक न सशय,
वही चाह है कण कण मे
जो मेरे उर मे निश्चय!

मेरे भीतर परिभ्रमित ग्रह,
उदित अस्त शशि दिनकर,
मैं हूँ सबसे एक, एक रे
मुझसे निखिल चराचर।
कब से हो जग से वियुक्त
मेरा अतर था पीडित,
आज खडा भाई बहिनो के
सँग मै चिर आनदित।

प्रभात का चाँद

नील पक मे धँसा अश जिसका
उस श्वेत कमल सा शोभन
नभोनीलिमा मे प्रभात का
चाँद उनीदा हरता लोचन।
इसमे वह न निशा की आभा,
दुग्ध फेन सा यह नव कोमल,
मानवीय लगता नयनो को
स्नेह-पक्व सकरुण मुख मडल।

तिरते उजले बादल नभ मे
बेला कलियो से कुम्हलाए,
उडता सँग सँग नाग दत सा
चाँद, सीप के पर फैलाए।
आभा इसकी हुई अतरित
यह शशि मानो भू का वासी,
यह आलोक मनस् है, मुख पर
जीवन श्रम की भरी उदासी।

दिव्य भले लगता हो किरणो से
मडित निशिपति का आनन,
गौर मास का सा यह शशि मुख
भाता मुझको ज्योति प्राण मन।
उदित हो रहा भू के नभ पर
स्वर्ण चेतना का नव दिनकर
आज सुहाते भू जीवन के
पावन श्रमकण मानव मुख पर।

ऐसे ही परिणत आनन सा
यह विनम्र विधु हरता लोचन,
भू के श्रम से सिक्त, नम्र
मानव के शारद मुख सा शोभन !

हरीतिमा

(प्राण)

ओ हरित भरित वन अधकार !
तृण तरुओ मे हँस हँस श्यामल
दूर्वा से भू को भर कोमल,
ढँक लेते जीवन को प्रतिपल
तुम प्राणो का अचल पसार !

सुख स्पर्शों से अणु अणु पुलकित,
मादकता से उर उर स्पदित,
गति जव से श्वास अनिल नर्तित,
नित रग प्राण करते विहार !

तुम प्राणोदधि चिर उद्वेलित
जीवन पुलिनो को कर प्लावित,
जड चेतन को करते विकसित
अग जग मे भर नव शक्ति ज्वार !

तुममे स्वप्नो का सम्मोहन
आकाक्षा की मदिरा मादन,
आवेगो का मधु संघर्षण,
दुर्धर प्रवाह, गति, रव, प्रसार !

जग जीवन को कर परिशोभित,
इच्छाओ के स्तर स्तर हर्षित,
रागो द्वेषो से चिर मथित,
निस्तल अकूल तुम दुर्निवार !
ओ रोमाचित हरिताधकार !

छाया पट

मन जलता है,
अधकार का क्षण जलता है,
मन जलता है।
मेरा मन तन बन जाता है,
तन का मन फिर कट कर,
छँट कर,
कन कन ऊपर
उठ पाता है।
मेरा मन तन बन जाता है।

तन के मन के श्रवण नयन है,
जीवन से सबध गहन है,
कुछ पहचाने, कुछ गोपन हैं,
जो सुख दुख के सवेदन है।
कब यह उड जग मे छा जाता,
जीवन की रज लिपटा लाता,
घिर मेरे चेतना गगन मे
इद्रधनुष घन बन मुसकाता ?
नही जानता, कब, कैसे फिर
यह प्रकाश किरणे बरसाता
बाहर भीतर ऊपर नीचे
मेरा मन जाता आता है,
सर्व व्यक्ति बनता जाता है।

तन के मन मे कही अतरित
आत्मा का मन है चिर ज्योतित,
इन छाया दृश्यो को जो
निज आभा से कर देता जीवित।
यह आदान प्रदान मुझे
जाने कैसे क्या सिखलाता है।
क्या है ज्ञेय ? कौन ज्ञाता है ?
मन भीतर बाहर जाता है।

मन जलता है,
मन मे तन मे रण चलता है,
चेतन अवचेतन नित नव
परिवर्तन में ढलता है।
मन जलता है।

भू लता

घने कुहासे के भीतर लतिका दी एक दिखाई,
आधी थी फूलो मे पुलकित, आधी वह कुम्हलाई ।
एक डाल पर गाती थी पिक मधुर प्रणय के गायन,
मकडी के जाले मे बदी अपर डाल का जीवन ।
इधर हरे पत्ते यात्री को देते मर्मर छाया,
उधर खडी ककाल मात्र सूनी डालो की काया ।
विहगो के थे गीत नीड, कृमि कुल का कर्कश क्रदन,
मै विस्मय से मूढ, सोचता था क्या इसका कारण ।

बोली गुजित हरित डाल, साँसे भर सूखी टहनी,
मै हूँ भाग्य लता अदृष्ट, मै सगी काल की बहनी ।
सुख दुख की मै धूप छाँह सी भव कानन मे छाई,
आधे मुख पर मधुर हँसी, आधे पर करुण रुलाई ।
शूल फूल की बीथी, चलता जिसमे रोना गाना,
खोज खोज सब हार गए, मुझको न किसी ने जाना ।
मैने भी ढूँढा, पर मुझको मूल न दिया दिखाई,
वह आकाश लता सी जीवन पादप पर थी छाई ।

जन मन के विश्वासो से बढती थी वह हो सिंचित,
एक दूसरे से लिपटे थे, जिससे थी वह जीवित ।
सब मिल उसको छिन्न भिन्न कर सकते थे यह निश्चित,
किन्तु उसी के बल पर रे मानव मानव से शोषित ।
नाच रही जो ज्योति ज्योति पिडो मे वैभव भास्वर,
कहती वह, यह छाया मेरी नही, तुम्हारी भू चर ।
छोडो युग युग का छाया मन, वरो ज्योति मन भव जन,
प्राक्तन जीवन बना भाग्य, चेतना मुक्त हो नूतन ।

कौवे के प्रति

तरु की नग्न डाल पर बैठे लगते तुम चिर सुदर,
कोविदार के शकुनि, पार्श्वमुख, साध्य कपिश नभ पट पर ।
कृष्ण कुहू मे जनमे तुम तरु कोटर मे, वन नभचर,
तारो की ज्यो छाँह गले पड गई नीड से छन कर ।

पखो की काली उडान तुम भरते नित ऋजु कुचित,
शुभ्र ज्योति का तुम पर कभी प्रभाव न पडता किंचित्!
रग नही चढता जिस पर वह यती व्रती है निश्चित,
समित् पाणि मै प्रश्न पूछता तुमको मान विपश्चित!
तुम भविष्य वक्ता जग विश्रुत, प्रणय दूत कवि कीर्तित,
मढवा चुके चोच सोने से फिर फिर प्रीति पुरस्कृत!
क्या है जग के दुरित दैन्य का कारण? खग, दो उत्तर,
कलुष कालिमा की होगी कालिमा तुम्हारी सहचर!

मत्री वृद्ध तुम्हारे कौशिक, दिवाभीत चमगादर,
जाग्रत् रहते भूत निशा मे तरु सेवी तापस वर!
गरदन मटका हिला करट, कुछ विस्मित, कुछ चिन्तनपर,
एक चक्षु को पलट, दूसरे लोचन पुट में सत्वर!
मैंने कहा, मुखर भाषी, क्या तुमको कहने मे डर?
यह महत्व का प्रश्न, लोक जीवन है इस पर निर्भर!
काँव काँव कर कहा काक ने ग्राम्य भणिति मे निश्चय,
काम, काम है तापो का कारण, था उसका आशय!

मैने पूछा, मोह काम से पीडित जग नि सशय,
किन्तु, कौन पा सकता, बलिभुज्! अमिट कामना पर जय?
पक्षपात कर उडा विहग, काले प्रकाश से भर मन,
समाधान मेरी शका का उस तम मे था गोपन!
पक्षपात है नाम कामना का, जो दुख की कारण,
उज्वल सभी प्रकाश नही रे, काला नही सभी तम!
इस प्रकाश के शिखी पिच्छ-से रूप अनेक मनोहर,
जिनमे लिप्त मनुज मन रहता लोभ स्वार्थ हित तत्पर!

अधकार के रूप विविध, घनश्याम इद्रधनु जलधर
उर्वर रखते भू को, मोहक काली कोयल के स्वर!
ज्योति हस औ' तमस काक इन दोनो से जो है पर
उसी सर्वगत पर जो केन्द्रित रहे मनुज का अतर,
हस रहे जग मे मयूर औ' वायस रहे परस्पर,
सबके साथ अपापविद्ध, स्थित प्रज्ञ रहे जग मे नर!
श्वेत कृष्ण मिल, रग-पूर्ण नित धरे जगत जीवन पथ,
पक्षपात से रहित मनुज हो विरत, विश्व मे भी रत!
किया हृदय ने ज्योति श्याम परभृत् का मन में स्वागत,
दीप तले के तम के छाया खग, तुम दीप शिखावत्!

सविता

लो, सविता आता सहस्रकर,
सविता, उज्वल व्योम पृष्ठ पर,
नव्य रश्मियो से ज्योतिर्मय,
अतरिक्ष को आलोकित कर।

सप्त अश्व से सप्त लोक कर
पार, वेग मे दिव्य तेज भर,
वह महेन्द्र आ रहा घिरा, निज
किरणो से त्रिभुवन का तम हर।

उठो, मनुष्यो, जागो, करो
उषाओ का दिव मे अभिवादन,
मार्ग उन्होने खोल दिया
सविता का, जो ज्योतिर्मय पूषण।

अधकार हट गया, प्राणमय
नव जीवन हो रहा प्रवाहित,
वह महेन्द्र आ रहा, रश्मियो से
आभृत, प्रकाश से आवृत।

अधरूढि पर चलने वाले
आज पा गए है अभिनव पथ,
नव प्रकाश का सूर्य उन्हे
मिल गया, दमकता सप्त अश्व रथ।

स्वर्ग ओर नित धावमान, उस
दिव्य हस के पख ज्योतिमय
फैले हुए सहस्र दिनो से,
बढता ही जाता वह निर्भय।

सब भुवनो को देखता हुआ
देवो को ले हृदय मे सकल,
व्याप्त सर्व लोको मे वह
फैले अपार पखो मे दिशिपल।

हाउ हाउ, वह स्वर्ण पुरुष,
वह ज्योति पुरुष मै हूँ अजर अमर।
झरते सप्त धार सोने के
सतत मातरिश्वा से निर्झर।

स्वर्णोदय

(जीवन सौन्दर्य)

जयति, प्रथम जीवन स्वर्णोदय,
रक्त स्फीत, लो, दिशा का हृदय!
काल तमस व्यवधान चीर कर
किसने मारा स्वर्ण पख शर?
जय, अमर्त्य जीवन यात्री, जय!

देखो, कोमलार्त कर क्रदन
किसने जग मे किया आगमन!
(यह क्या भू का रुदन सनातन?)

पलको मे जग उठे निमिष क्षण,
स्तब्ध हृदय मे दिशि का स्पदन!
गुहा बद्ध चित् स्रोत हो स्खलित
जीवन पथ मे हुआ प्रवाहित!
मुक्त अरूप रूप धर सीमित,
श्वासो से कर गगन तरंगित!

(शैशव)

मगल गायन!
मगल वादन!
क्यो न मनाएँ जन्मोत्सव जन!
धन्य आज का पुण्य दिवस क्षण,
फिर अमर्त्य ने धरा मर्त्य तन!

स्वागत, स्वागत,
प्रयत नवागत,
हो प्रशस्त तेरा जीवन पथ,
जग के शूल फूल हो अभिमत,
प्रिय शिशु, तू हो पूर्ण मनोरथ!

ओ मा, वह रोता है, उसको स्तन्य पिलाओ,
वह अशक्त, असहाय, उसे निज अंक लगाओ!
कैसे पार करेगा दुर्गम जगती का मग
वह निर्बल निर्बोध पथिक, वह पख हीन खग!

लोरी गाओ, लोरी गाओ,
फूल दोल मे उसे झुलाओ,
निदिया की प्रिय परियो, आओ,
मुन्ना का मुख चूम सुलाओ!
स्वप्नो के छाया पखो को
नन्हे के ऊपर सिमटाओ!

चद्र लोक की परियो, आओ,
स्मिति से सुधा अधर रँग जाओ,
मलय सुरभि की चचल परियो,
साँसो से आँचल भर लाओ!
जुगनूँ झमका, वन की परियो,
झिलमिल कर पलकें झपकाओ,
रिमझिम कर, मेघो की परियो,
लालन का गा हृदय रिझाओ!
अहरह उर कपन मे दोलित,
मर्म स्पृहा की मूर्ति देख स्मित,
मुग्ध नव जननि, बलि बलि जाओ,
लाड लुटाओ, प्यार लुटाओ,
लोरी गाओ!

स्निग्ध पूस की धूप, स्वर्ग आशीर्वाद सी,
बरस रही भू पर शैशव के मुक्त ह्लाद सी!
स्वच्छ प्रकृति मुख, सोम्य दिशा स्मिति, शात विहायस
शीतलोष्म पखो के सुख मे सिमटा मालस!

नलिनी उर मे लेटा हिमजल
बाल चेतना सा तारोज्वल,
हँसमुख, निर्मल, चचल!
लो, वह नटखट पाँव चलाता,
कौन उसे बढना सिखलाता?
क्रदन था जिसका सभाषण,
वह अस्फुट स्वर मे तुतलाता!

दुधमुँही सरल मधुर मुसकान
न जानें कहती किन अनजान
रहस्यो के नीरव आख्यान!
कौन अप्सरियाँ आ चुपचाप
कर रही उससे मौनालाप,
फूटती स्वप्न सरित स्मिति आप!

नाम रूप के जग को, केवल
वह चितवन स्पर्शों से प्रतिपल
अकित करता उर मे कोमल।
ताराओ से भरा गगन
स्वप्नो का - सा वन
उपजाता मन मे सवेदन।

लो, चदा ने
चाँदी की नैया मे मोहन
बिठा लिया अब लालन का मन,—
पलने मे हिलता डुलता तन।

दीप शिखा के लिए वह मचल
नचा रहा निज कोमल करतल।
चूँ चूँ करती चिडिया सुदर
फूल पाँखुडी उडती फर् फर्,
उन्हे बनाने निज सुख सहचर
पास बुलाता वह इगित कर।
सोच रहा ज्यो एकटक नयन,
मौ माखी क्या कहती भन भन
कानो मे भर गुजन।

मर्मर, मर्मर।
तरुओ के चल पत्र रहे झर।
विरल टहनियो की जाली से
लगता मुक्त प्रशस्त दिगतर।
यह लो, नव शिशु सा ही सुदर
निखिल विश्व बन गया दिगबर,
नवल पल्लवो से वह मासल,
वेष्टित होगा सत्वर।

कहाँ जरा रे? कहाँ है मरण?
सृजन शील जग का परिवर्तन।
कौन, कहाँ के क्षणिक पाथचर
कहाँ अरे जा रहे निरंतर
ये पीले पत्ते उड उड कर?
धरती इनसे क्यो न गई भर।

कब मे झर झर
चुपके हँस कर
ये किस पर हो रहे निछावर ?
क्या ये उड़ते पत्ते केवल ? कौन यहाँ दे उत्तर !

यह अनत यात्रा का रे पथ,
शिशु अनत का यात्री शाश्वत,
वह अनादि से नित्य नवागत,
अपने ही घर का अभ्यागत !
सूर्य चद्र उसके ही लोचन
श्वसन उसी के उर का स्पदन,
उसका आत्म प्रसार दिशा क्षण,
महाश्चर्य रे, पुरुष पुरातन,—
आदि सृष्टि का कारण,—
शिशु, अनत का पाथ चिरतन !

क्रम विकास के पथ से निश्चित
विश्व नीड कर अपना निर्मित,
जननि जनक मे स्वय विभाजित
वह अवतरित हुआ या विकसित ?
कोटि योनि, शत कोटि जन्म तर
विविध भ्रूण स्थितियो मे बढकर
दिव्य अतिथि वह मनुज देह धर
आया फिर से, मर्त्य बन अमर !

देखो, देखो आँखे भर
कैसा रहस्यमय ईश्वर !
देखो हे आँखे भर
कैसा सुदर ईश्वर !

(यौवन)

स्वर्ण मजरित आम्र कानन,
कोकिला करती कल कूजन,
सूँघ चख चूम फूल आनन,
झूम मधुलिह् भरते गुजन !
आज भव वारिधि उद्वेलित
नभो नीलिमा बनी विस्तृत,
डोलता मारुत रोमांचित,
साँस पी फूलो की सुरभित !

रजत किंकिणियों सी कल-कल
लहरियाँ थिरक रहीं चचल,
कँप रहीं वल्लरियाँ कोमल
खोलती कलियाँ वक्ष नवल।

रग प्राणों का स्वर्णिम लोक
कहाँ था यह अदृश्य चुपचाप,
हँस उठा इद्रधनुष मे आज,
हृदय का छाया वाष्प कलाप।
बज उठा जीवन में मधु छद
किसी की सुन नीरव पद चाप,
भाव गरिमा से भरा अनत,
मुखर स्वर से अब मौनालाप।

युवक नव युवति विचरते आज
मर्म में स्पृहा, दृगों मे लाज,
न अब कैशोर भीति का भाव
आज उनसे चरितार्थ समाज।
बने वे नर-नारी मोहन,
न अब जीवन रहस्य गोपन,
न परियाँ देती शिशु को जन्म,
सृष्टि मे निहित जनन पावन।

नीलिमा क्यों नीरव निस्तल,
स्रवती बहती क्यों कल कल,
ज्ञात अब, खिलते क्यों कुड्मल,
गधवह फिरता क्यों चचल।
न रोके रुकते चपल नयन,
मीन तिरते, उडते खजन,
अधर से मिलते मधुर अधर,
मुग्ध कलि अलि करते चुम्बन।

बाँह यदि भरती आलिगन,
लताओं से लिपटे तरुगण,
प्रबल रे फूलों का बधन
अमिट प्राणों का आकर्षण।
आज भ्रू लतिकाओं मे भग,
प्रतनु तन-शोभा प्रीति-तरग,
गढे किस शिल्पी ने ये अग,
निछावर निखिल प्रकृति के रग।

स्पर्श मे बहती प्राण तडित्
स्वत तन हो उठता पुलकित,
हृदय स्वप्नो से जग रजित,
उषा अब इद्रधनुष वेष्टित ।

मिलते सहसा मौन नयन, अपलक-से रह जाते क्षण,
नव प्रवाल अधरो मे बहती मदिरा ज्वाला मादन ।
प्राणो की चिर तृषा फूट बनती पुलको के बधन,
कौन भूल सकता है रे नव यौवन का सम्मोहन ।
मर्म कामना युगल स्वर्ण कलशो मे मूर्त गई भर,
चपल नयनिमा ने पाए मृदु फूलो के मादक शर ।
यह लज्जा सज्जा सुषमा मधुरिमा कहाँ थी गोपन,
नव यौवन औ' प्रथम प्रणय औ' मुग्धा तरुणी का तन ।
कौन बाँध सकता अजस्र उद्दाम वेग निर्झर का,
कौन रोक सकता अबाध उद्वेलन रे सागर का ।
मदोन्मत्त यौवन का, मेघो का अदम्य आलोडन,
चकित नहीं कामिनी दामिनी करती किसके लोचन ।

सरित पुलिन अब लगते शोभन,
बह जाता धारा के सँग मन ।
मधुर, मौन सध्या का आँगन,
प्रिय-स्वप्नो मे सजग निशि गगन ।
कूजन गुजन गध-समीरण
सब मे मर्म मधुर सवेदन,
तरुण भावनाओ से रजित
मुकुलित नव अगो का उपवन ।

स्वर्ण नील भृगो से झकृत, कोकिल स्वर से कीर्तित
अपलक, रत्न खचित, मधु वैभव मन को करता मोहित ।
ताराओ से शत लक्षित, ज्योत्स्ना अचल मे वेष्टित
उदय हृदय मे होता फिर-फिर लेखा शशि मुख परिचित ।
शरद निशा आती सलज्ज मुग्धा सी शकित,
मुक्त कुतला वर्षा तनु चपला सी कपित,
सुरभित ऊष्मा सुघर मल्लिका स्रक् से दोलित,
लिपट मधुर हिम जाती तन से आतप सी स्मित ।

खुल पडता उर का वातायन
बहती प्राण मलय चिर मादन,
कही दूर से आता भीतर
प्रणयाकुल पचम पिक गायन ।

आओ हे चिर स्वप्न सखी, आकुल अतर मे आओ,
फूलो की नव कोमलता मे जीवन को लिपटाओ!
इन प्रिय स्नेह सरो मे अपलक शरद नीलिमा जागृत,
चपल हस पखो से चुबित सरसिज श्री बरसाओ!
इस प्रवाल के प्याले की मधु मदिरा सखि, उर मादन,
तुहिन फेन स्मित प्रीति सुधा घट स्वर्णिम मुझे पिलाओ!

स्नेह लता-से पुलक पाश मे कस मुकुलो के कोमल
उर मे सुमधुर उर सी, तन मे तन सी मृदुल समाओ!
सुरभित साँसो के पलने मे मर्म स्पृहा कर दोलित
फूलो के मधु शिखरो पर प्राणो के स्वप्न सुलाओ!
इन मासल चपक झरनो से लिपटी विद्युत् लपटे,
प्रणय उदधि मे अतर की ज्वाला को अतल डुबाओ!
लेटा नव लावण्य चाँदनी सा बेला के वन मे,
खिलती कलिकाओ की शोभा कोमल सेज सजाओ!
स्वप्नो की पी सुरा आज यौवन जागे विस्मृति में,
चचल विद्युत् को सलज्ज ज्योत्स्ना के अक लगाओ!
आओ हे प्रिय स्वप्न सगिनी, आकुल उर में आओ!

पति-पत्नी अब बने प्रणयि जन,
निखिल प्रकृति करती अभिनदन,
अह, कैसा निष्ठुर निर्मम जग
सम्मुख क्यो जीवन सघर्षण!
हृष्ट पुष्ट नव युग्मो का तन,
रुधिर वेग मे झकृत जीवन,
आत्म भाव से विस्तृत लोचन,
शौर्य वीर्य से विकसित नव मन!

नही मानता उर दुबिधाएँ बाधा बधन,
वह निशक, निर्भीक सह्य उसको न नियत्रण!
चिर अदम्य उत्साह हृदय मे स्पदित प्रतिक्षण,
यह यौवन की आशा अभिलाषा का प्लावन!
अह, क्या करती रही पलित पीढियाँ आज तक,
रक्त पक जन धरणी का इतिहास भयानक!
रोग शोक, मिथ्या विश्वास, अविद्या व्यापक,
नगे भूखे लूलो का जग हृदय विदारक!
कौन रहे इस क्रूर सभ्यता के सस्थापक,
यह जन-नरक कलक मनुजता का, भू पातक!

बदलेंगे हम चिर विषण्ण वसुधा का आनन,
विद्युत् गति से लाएँगे जग मे परिवर्तन!
क्यो न मजरित युवको का हो विश्व सगठन,
नव यौवन आदर्शवादिता अरे न नूतन!
क्या करते ये धनकुबेर, पडित, वैज्ञानिक,
दिशाभ्रात क्यो हो जाते राष्ट्रो के नाविक!
ज्ञात नही क्या लोक नियति है आज भू पथिक,
वर्ग राष्ट्र से लोक धरा का श्रेय है अधिक!
दिवस ज्योति सा सार सत्य यह गोचर निश्चित,
मनुष्यत्व है रीति नीति धर्मो से विस्तृत!
सस्कृति रे परिहास, क्षुधा से यदि जन कवलित,
कला कल्पना, जो कुटुब तन नग्न, गृह-रहित!

आओ, मुक्त कठ से सब जन
भू मगल का गाएँ गायन,
वदे मातरम्!

जन धरणी जन भरणी
रत्न प्रसविनी मातरम्!
नृत्य हरित, पिक कूजित यौवन,
अनिल तरगित उदधि जल वसन,
छत्र सूर्य शशि दीप्त नत गगन,
प्रणयाकाक्षी स्वर्ग चिरतन,
वदे मातरम्!

बजे क्राति तूरी जन मादन,
कुडुम कुडुम हो जय दुदुभि स्वन,
जीवन हित मानव वरे मरण,
मृत्यु अक मे भी गाएं जन,
वदे मातरम्!

भू मन के टूटे जड बधन,
रूढि रीति से मुक्त बने मन,
दैन्य दुरित के हटे तमस घन,
स्वर्ण प्रभात जडित हो प्रागण!
वदे मातरम्!

दिशा लोक श्रम से हो हर्षित,
काल विश्व रचना मे योजित,
भव सस्कृति मे देश हो ग्रथित,
जन सपन्न, जगत मनुजोचित,
वदे मातरम्!

स्वर्ण कणो के मौर न अब, फूलो की ज्वाला के वन,
कितने चुँवे, झरे धरती पर, झझा का भव कानन।
लदी फलो से जीवन डाले, रस मे सब रँग गोपन,
विश्व प्रकृति का रे अपार अक्षय वैभव दिङ् मोहन।
भू की रज को कर कृतार्थ बीता निदाघ अब भीषण,
तिग्म करो से खीच सिन्धु पलनो से वाष्पो के घन।
तप्त श्वास सा ग्रीष्म पवन भी शात हुआ झुलसा तन,
विकसित वर्धित परिणत कर पुष्पित वसत का यौवन।

वर्षा आई, धूम्र नील नभ मे छाया घन घर्षण,
तीव्र लालसा तडित् जगी-सोई, कर गर्जन तर्जन।
मधु मरद से रजित भू का गर्भ हुआ फिर उर्वर,
नव प्रवाल प्रज्वलित तरु क्षितिज बना गाढ श्यामलतर।
नृत्य तरगित हुए स्रोत नव, गए प्ररोह नवल भर,
सृजन शक्ति ने अणु अणु मे फिर लगा दिए जीवन पर।
प्रणय गीत, मृदु जनन स्वरो से मुखरित हुआ दिगतर,
जीवन की रिमझिम अजस्र रे, ससृति की सावन झर।

पृथक् न अधिक रहा नारी जग
धरे पुरुष के सँग उसने पग,
रग तरगित जिसकी श्री से
कुसुमित सुषमित जग का मरु मग।
गुडियो के सँग प्रिय किशोर क्षण
बीते, उर मे भर मृदु कपन,
खीच कुसुम धनु तन, यौवन ने
किया रूप सम्मोहन वर्षण।
वक्ष श्रोणि ने बढ, कटि ने छँट
सौष्ठव रेखाएँ की रूपित,
मुग्ध नयनिमा, सलज लालिमा,
पद जडिमा ने तरुणी चित्रित।

शोभा कँपती लहरी सी उठ
हुई देह तनिमा मे स्तभित,
देख मुकर-से तन मे निज मुख
रही मधुरिमा छबि से विस्मित।
कोमलता बढ कल्पलता सी
अगभगि मे हुई प्रस्फुटित,
सुदरता ही प्रीति तूलि से
बनी मोहिनी प्रतिमा जीवित।

हुए रूपसी के नव अवयव
यौवन के आतप में विकसित,
मधुर स्त्रीत्व में धातृ कल्पना
सृजन कला के कर से मूर्तित।
जगा सलज चेष्टाओं में अब
नव लीला लावण्य अकल्पित,
पलक भृकुटि अगुलि चालन में
छवि की दीप शिखाएँ कंपित।

तिमिर ज्वाल सा केश जाल घन
पृष्ठ देश पर हुआ प्रज्वलित,
आभा जीवी नयनों को कर
कोमल शोभा-तम से मोहित।
स्वप्नों से गुफित यमुना जल
गाढ नीलतम हुआ तरंगित,
साँस ले रहे फूलों के रँग
सौरभ की कबरी में दोलित।

काचन सी तप ज्वलित कामना
ढली सघन जघनों में दीपित,
बनी कठोर कुसुम कोमलता
श्रोणि भार में हो चिर पुजित।
बाहु लताएँ फूल पाश बन
पुलकों में हो उठी पल्लवित,
कोमल करतल, चचल पदतल
जीवन के जावक से रंजित।

रूप शिखा की श्री सुषमा से
हुए गेह आँगन आलोकित,
वातायन में उदित कला शशि
गृह गृह के गवाक्ष चिर शोभित।
कलि कुसुमों ने भूतल को रँग
किया शोभना के हित सज्जित,
उर की साँसों में बहने को
बना समीर गधवह सुरभित।
ज्योत्स्ना सकुची, उषा लजाई,
रही तारिकाएँ ज्यों विस्मित,
स्रोत बहे, सरसी लहराई,
निखिल प्रकृति श्री हुई प्रभावित।

हृदयासन पर बिठा प्रेम ने
किया अमर स्वप्नो से पूजन,
समा स्वर्ग ने स्वर्ण घटो मे
स्वीकृत किया मर्त्य सुख बधन।

दो टुकडो मे सिमिट नीलिमा
रही मौन नयनो मे अपलक,
लजा अधर नव प्रणय वचन से
गए लालिमा से दुहरे रँग।
खिलती कलियो ने मार्दव भर,
कोकिल ने दे गीत स्रवित स्वर,
मोहक उसे किया ज्योत्स्ना ने
गोपन लज्जा मे वेष्टित कर।

मधु ने फूल ज्वाल से आवृत,
किया शरद ने लेखा मुख स्मित,
मणि मुक्तामय खनि सागर ने,
भू ने स्वर्ण रजत से झकृत।
जगा हृदय मे प्रीति दर्प नव
शत शत नयनो से हो लक्षित,
हाव भाव मे मधुर सयमन
शोभा तन सज्जा से सवृत।

तडित् गर्भ, सुरधनु कबरी घन
ज्यो कृतार्थ होता भू पर झर,
मधुर अप्सरा बनी जनी अब
कुल प्रदीप से ज्योतित कर घर।
मातृ स्नेह बरसा नव शिशु पर
मुग्ध प्रणयिनी हुई निछावर,
सहधर्मिणी बनी वह प्रिय की
सुख दुख की मत्री, चिर सहचर।

भूल गया ज्यो प्रणय कलह मन
गूँज उठे उर के अरसिक क्षण,
मूर्त पीठ पा मर्म स्पृहा ने
पुत्र स्नेह बन किया अवतरण।
रूप रग का रच सम्मोहन
सृजन शक्ति ने बाँधे थे मन,
पलको मे शर, पुलक मे तडित्
अधरो मे धर मदिरा मादन।

अब शिशु के अनुपम आनन मे
अतुल स्वर्ग का भर आकर्षण,
परपरा मे गूँथ, अमर ज्यो
बना दिया उसने भगुर तन।

नही गणित से रे परिचालित
मानव जीवन का विकास क्रम,
विजय पराभव सधि क्राति का
स्रवण शील मानव मन सगम।
मरती रहती बाह्य चेतना
आत्मा फिर फिर जगती नूतन,
छोड जीर्ण केचुल, नव सर्पित
होता उरग मनुज का जीवन।

(वार्धक्य)

शेष पथ श्वसित शिशिर की वात,
शिला शीतल प्राणो का ताप,
गिर रहे पीले जीवन पात
विरस क्षण, सिसक, खिसक चुपचाप।

अस्थि पजर अब जग की डाल
भर रही हिल हिल ठढी साँस।
कुहासे मे स्मृति के आवृत
विगत यौवन के चल मधुमास।

भूल फूलो के आलिगन
वात हत लतिका भू लुठित,
न अब वह गुजित तरु जीवन,
न जीवन सगिनि ही परिचित।

न वह मधु रस, न रग गुजार,
धूलि धूसर गभीर दिगत,
फूल फल, रच भव स्वप्न असार,
बीज मे लय फिर हुआ अनत।

दृगो मे हँसते जीवन अश्रु,
कमल मे ज्यो हिमजल थर् थर्,
शात नीरव आत्मिक संतोष
गया भव क्लात हृदय मे भर।

रूप रंगो की मासल देह
तीलियो की अब त्वक् पिंजर,
गूढ नि शब्द गिरा मे लीन
मुखर खग के अनर्मुख स्वर।

चल रहा झुक लाठी पर आज
वृद्ध, जीवन के प्रति साभार,
छोड चेतन जड का अवलब,
करेगा मृत्यु द्वार फिर पार।
अकेला वह विशिष्ट रे पाथ,
न पथ के सँग यात्रा का अत,
विश्व मे रिक्त व्यक्ति का स्थान
नही भर सकता स्वय अनत।
मारता वह विनोद से आँख
देख नव युवति युवक को साथ,
झुर्रियाँ हँसती नीरद हास,
फूलता पेट, झूलता माँथ।

पक्व जीवन का फल वह पूर्ण
तृप्त उर, चर्म रध्र चरितार्थ,
खीच सकते न देह मन प्राण
विश्व प्राणो से मार पदार्थ।

व्यग्र रे अमृत अनिल मे आज
व्याप्त होने को ज्यो क्षण श्वास,
विकल उडने को खग, पर खोल,
छोड भस्मात देह तरु-वास।
पितामह पलित काँस के केश,
पुत्र, प्रिय पौत्रो का अब घर,
वधू अचल मे नव शिशु देख
सोचता कुछ तटस्थ अतर।

क्या है मृत्यु? गहन अतर मे
उठता रह रह प्रश्न भयानक,
शेष यही हो जाएगा क्या
जीवन का करुणात कथानक।
खुलते है स्मृति के पट पर पट
विगत दृश्य होते क्षण गोचर,
स्वप्न चित्र-से वर्ष आयु के
उडते धूमयोनि-से नभ पर।

अह, तृष्णा के बाष्पो की क्या
माया यह भगुर जग जीवन ?
सोया काल दिशा शय्या पर
स्वप्न देखता या क्या क्षण क्षण !
देह निधन का द्वार पार कर
आत्मा कहाँ करेगी विचरण ?
क्या जीवन की गोपन तृष्णा
केवल जन्म मरण का कारण ?

आत्म मुक्ति के लिए क्या अमित
यह ग्रह ग्रथित रग भव सर्जित !
प्रकृति इद्रियो का दे वैभव
मानव तप कर मुक्त बने नित !
नही सत कुल हुआ सत रे
जीव प्रकृति के सब जन निश्चित,
लोक मुक्ति है ध्येय प्रकृति का
मनुज करे जग जीवन निर्मित !

तन से ही कर नव तन धारण
अमर चेतना करती सर्जन,
चेतन की भव मुक्ति के लिए
वाहन जड तन, मात्र न बधन !
मुक्त सृजन आनद को स्वत
रूपो का नव बधन स्वीकृत,
आत्मा जीर्ण वसन तज रज का
नव वसनो मे होती भूषित !

आशिक उसे लगा जीवन का
जड चेतन का बौद्धिक दर्शन,
जड चेतन से परे अगोचर
जीवन के है मूल सनातन !
अन्न प्राण मन आत्मा केवल
ज्ञान भेद है सत्य के परम
इन सब मे चिर व्याप्त ईश रे
मुक्त सच्चिदानद चिरतन !

आज समस्त विश्व मदिर सा
लगता एक अखड चिरतन,
सुख दुख जन्म मरण नीराजन
करते, कही नही परिवर्तन !

ऊषा के स्वर्णिम गुठन से
आभा अमर स्पर्श करती मन,
पदतल पर श्लथ जीवन छाया
सम्मुख ज्योति देश अब नूतन!

पुण्य हरित भू का दूर्वादल
पाप ताप मे सतत अकलुषित,
स्वर्ग चेतना सदृश उतर अब
उस पर धूप खडी ज्यो जीवित!
टूटी मन की जाग्रत् निद्रा
क्षीण अहम् का शशि छायानन,
विहगो के प्रात कलरव मे
मिलता शाश्वत लोक जागरण!
विनत पद्म सध्या आँगन मे
मौन प्रार्थना, आत्म समर्पण,
ताराओ के स्तिमित स्वर्ग मे
सोई अपलक शाति चिरतन!
खुला गगन मे आज मुक्त मन,
नील योनि मे अब वह सुदर,
आसन मे केवल उसका तन,
अतरतम मे स्थित अब अतर!

अटल शाति मे भव सघर्षण,
अमृत अक मे जन्म औ' मरण,
अतल अकूल चेतना सागर
क्षुब्ध मात्र भव सलिल आवरण!
हुआ हृदय मे स्फुरित अचानक
सत्य निखिल जग मे जो व्यापक,
कहाँ देखता रहा वह अथक
क्या? वह जिससे रे नित अपृथक्!

वही तिरोहित जड मे जो चेतन मे विकसित
वही फूल मधु सुरभि, वही मधुलिह् चिर गुजित!
वस्तु भेद ये चिर अमूर्त ही भव मे मूर्तित,
वह अज्ञेय, स्वत सचालित, एक, अखडित!
अध ऊर्ध्व, बहिरतर उसके सृष्टि सचरण,
सात अनत, अनित्य नित्य का वह चिर दर्पण,
एक, एकता से न बद्ध, बहु मुख शिख शोभन,
सर्व, सर्व से परे, अनिर्वचनीय, वह परम!

उतर चेतना पुन बनी मन
खुला रहस्य, सूक्ष्म पा दर्शन।
जगा दृष्टि में इद्रधनुष घन
बहिरतर जग जीवन वितरण।
सप्त चेतना निर्झर भव मे
अमृत कर रहे शाश्वत वर्षण,
स्फुरित दीप्त लोको से भासित
स्वर्गंगा स्मित उर पथ गोपन।
सृजन शक्तियो से चिर ज्योतित
अतर्मन का दिव्य चिद् गगन,
बहिर्जगत रजित चेतन मन
मात्र चित्र छाया अवगुठन।

लगा उसे युग युग से सचित
मनोद्रव्य से सस्कृति निर्मित,
नीति धर्म आदर्श जीर्ण मृत
जन समाज जीवन मे गुफित।
जाति वर्ण गौरव से पीडित,
वर्ग राष्ट्र स्वार्थो मे सीमित
जन समुद्र रे आज अचेतन
अध प्रवेगो से आदोलित।

नव मानो से हो जो कल्पित,
पुन लोक सस्कृति पट ज्योतित,
हो कृत काम नियति मानव की
स्वर्ग धरा पर विचरे जीवित।
भू पर जन सत्ता हो विकसित
अतर्जीवन से सबधित,
शिल्पी सी चेतना जागरित
करे लोक मानव मन निर्मित।

भू रचना का भूति-पाद युग
हुआ विश्व इतिहास मे उदित,
सहिष्णुता सद्भाव शाति से
हो गत सस्कृति धर्म समन्वित।
वृथा पूर्व पश्चिम का दिग् भ्रम,
मानवता को करे न खडित,
बहिर्नयन विज्ञान हो महत्
अतर्दृष्टि ज्ञान से योजित।

पश्चिम का जीवन सौष्ठव हो
विकसित विश्व तंत्र मे वितरित,
प्राची के नव स्वर्णोदय से
ज्योति द्रवित भू तमस तिरोहित।
लोक नियति निर्माण करे नव
देश देश के विबुध विपश्चित,
राष्ट्र नायको के सँग दुर्वह
राज कर्म में हो सक्रिय चित।

सर्वोपरि मानव सस्कृत बन
मानवता के प्रति हो प्रेरित,
द्रव्य मान पद यश कुटुब कुल
वर्ग राष्ट्र में रहे न सीमित।
एक निखिल धरणी का जीवन,
एक मनुजता का सघर्षण,
अर्थ-ज्ञान सग्रह भव पथ का,
विश्व क्षेम का करे उन्नयन।

नर नारी का रुद्ध हृदय रे
आज स्वर्ग की लय से वचित,
वे प्रभात के स्वर्णातप-से
रज तन मे न विचरते ज्योतित।
देह मोह, अधिकार प्रणय से
लोक चेतना भू की पीडित,
युवति युवक जीवन सागर मे
नही प्रीति लहरो से दोलित।

क्यो मानव यौवन वसत सा
हो न लोक जीवन मे कुसुमित,
मधुर प्रीति हो सामाजिक सुख,
प्राण भावना आत्म संयमित।
करे मुक्त उपभोग हृदय का
नर नारी निज रुचि से प्रेरित,
आदर प्रीति विनय हो उर मे,
अग लालसा का मुख सस्कृत!

भावी सतति को दे मानव
पुण्य चेतना की छवि दीपित,
हो मौलिक सस्कार वधू का
जागृत, कृत्रिमता से कुठित।

जाति प्रसू वह, स्वय प्राकृतिक
वरण वृत्ति हो उसकी विकसित,
नर का पौरुष जगे, पुन वह
द्रोही पशु हो मानव निश्चित।

हो प्रतीति परिणय प्राणो का
कुल दीपक सुत भू के रक्षक,
नर नारी का लौकिक जीवन
यौवन आवेगो का शिक्षक।
हृदय-तमस आलोक-स्रोत पा
हो जीवन सौन्दर्य मे द्रवित,
प्राण कामना सृजन शील बन
धरा स्वर्ग रचना मे योजित।

आज पारिवारिक जग जीवन
अश्रु नयन कलहो से कवलित,
परिणय के अगणित पापो से
बद्ध मनुज चेतना कलकित।
जब तक मानव-हृदय देह के
नर नारी मानो मे खडित
नही मानुषी रे वह सस्कृति
वह सामाजिकता अभिशापित।

नर नारी का मुक्त हृदय ही
निकष प्रकृत सस्कृति का केवल,
अकित उस पर शोभा रेखा
मनुष्यत्व की हो स्वर्णोज्वल।
जिस जगती की चित्र प्रकृति नित
शत ध्वनि वर्णों से सुख मुखरित
वहाँ न क्यो कुसुमित अवयव जन
विचरे अत श्री से दीपित।
हँसता जहाँ अमर तारापथ
धरा नाचती श्वसित तरगित,
वहाँ न क्यो मानव जीवन हो
प्रेम हर्ष आशा से स्पदित।

बहिरंतर वैभव का हो जो विश्व समन्वय
रूपातरित जगत जीवन हो, नव स्वर्णोदय।
मूल सत्य देवत्व मनुज का रे जो निश्चय
दैन्य दुरित का मन तब केवल आत्म पराजय!

मानव को जो देव मान हम सोचे क्षण भर
गोचर तमस विकृति का कारण हो तब बाहर,
दिव्य उषा के लिए क्षेत्र जो रचे लोकगण
स्वर्ण किरण हँस धरे धरा पर ज्योति के चरण।
मन ने ज्यो दृग खोल किया जीवन को विकसित
आत्मा का सचरण करे मन को आलोकित,
प्रीति शिखा मे भेद बुद्धि जल उठे प्रज्वलित,
ऊर्ध्व चेतना विचरे जग जीवन मे मूर्तित।

दिखा उसे मानव भविष्य छाया सा चित्रित
मन से नही मनुज की भावी होगी निर्मित,
मानव के ईश्वर को नव जीवन अगीकृत,
निकट क्षितिज मे दिव्य मेघ वह उठता ज्योतित।
दीप भवन युग विद्युत् युग मे ज्यो दिक् शोभित
मन का युग हो रहा चेतना युग मे विकसित,
द्विधा बुद्धि मे मनु न रहेगा अधिक विभाजित,
जन मन के अणु से होगी चिच्छक्ति प्रवाहित।

प्लावित करती शिशु अधरो को
अतर की आभा स्मिति निश्चल,
वृद्ध सोचता किन स्थितियो मे
शिशु को बढना होगा प्रतिपल।
युग जीवन की रज को लिपटा
कैसा रंजित होगा वह मन,
जन्मो के किन सस्कारो का
उसके अतर मे आकर्षण।

अतर्यामी पुरुष करेंगे
निश्चय उसका नव पथ ज्योतित,
पर, सीमाओ का मानव मन,
काँटो का जग का मग कुचित।
नही ज्ञान से होता अविकल
समाधान मानव के मन का,
व्यक्ति विश्व से ही रे केवल
है सबध नही जीवन का।
गूढ रहस्यो के अभेद्य स्तर
जिन पर जीवन की गति निर्भर
अवचेतन प्रच्छन्न मनस् का
निस्तल अविच्छिन्न रे सागर।

वयस भार से झुका धनुष सा
पृष्ठ वश रेखाकित आनन,
दृष्टि क्षुधा निद्रा भी क्रमश
शिथिल हुईं अब, मद स्मृति श्रवण।
प्रात ब्राह्म मुहूर्त मे स्वत
खुल जाते यात्री के लोचन,
एकाकी अतर करता तब
प्रभु से नीरव आत्म निवेदन,—

हे जीवन आराध्य, हृदय वासी, हे मानव ईश्वर,
मगलमय, तुम सर्व प्रथम अक्षय करुणा के सागर।
माता पिता, पुत्र भार्या, निज पर, जन्मो के सहचर,
विश्व योनि, तुममे अनादि से जग के निखिल चराचर।
आते - जाते जन्म मरण बहु तन मे शैशव यौवन,
आशाऽकाक्षा राग द्वेष मन मे करते सघर्षण,
नीति धर्म आदर्श विविध बनते जीवन में बधन
तुम मे जगते दिशा काल, लय होते, देव परात्पर।
खोज निरतर तुम्हे, अपरिमित महिमा से हो विस्मित,
नेति नेति कह बुद्धि मनुज की कब से प्रणत, चमत्कृत।
हृदय सुलभ तुम, सहज कृपा कर देती उर तम ज्योतित,
ज्यो पारस का परस अयस का स्वर्ण रहस रूपातर।

सदसत्, कारण - कार्य प्रकृति के केवल मात्र प्रयोजन,
देव, तुम्हारी अमित दया से होता भव का पालन,
तुमसे रहित अचिर अपूर्ण जग, तुमसे पूर्ण चिरतन,
तुम हो, भव है शून्य एक के गुण मे गणित निरंतर।
तुमसे जो मन युक्त, सकल जग जीवन हो आराधन,
प्रेम, तुम्हारे हित माया का पाश मुक्ति हो प्रतिक्षण,
तुममे केन्द्रित लोक योजना बने स्वर्ग सी पावन
मानव के घटवासी, दो मानव को नव जीवन वर।

रहे निर्निमिष भौतिक लोचन,
प्रभु प्रभु-भक्त गए अभिन्न बन,
मात्र सच्चिदानद चिरतन,
जय अमर्त्य का मर्त्य पर्यटन।
श्रवण गगन मे गूँज रहे स्वर
ॐ क्रतो स्मर कृत क्रतो स्मर।

सृजन हुताशन की हवि भास्वर
बनी पुन जीवन रज नश्वर।
दृष्टि दिशा मे ज्योति मूर्त स्वर, —
ॐ ऋतो स्मर कृत स्मर
ऋतो स्मर कृत स्मर।

सत् रज तम से त्रिधा बद्ध, पद अन्न प्राण मन,
मर्त्य लोक मे कर प्रवेश वह करता रेभण।
महादेव वह सत्य मुक्ति के लिए अनामय
फिर फिर ह्मा रव करता जय, ज्योति वृषभ, जय।

अग्नि

दीप्त अभीप्स, मुझको तू ले जा सत्पथ पर,
यज्ञ कुड हो, अग्नि, हृदय मेरा अति भास्वर।
प्राण बुद्धि मन की प्रदीप्त घृत आहुति पाकर
मेरी ईप्सा को पहुँचा दे परम व्योम पर।

तू भुवनो मे व्याप्त, निखिल देवो की ज्ञाता,
यज्ञ अश के भागी वे, तू उनकी त्राता।
निशि दिन हवि दे बुद्धि कर्म की, भूरि नमन कर
आते हम तेरे समीप, हे अग्नि , निरतर।

निज यज्ञो मे मरणशील हम करते पूजन
उस अमर्त्य का जो सबके अतर म गोपन।
यदि तू मे, मै तू बन जाऊँ, शिखे ज्योतिमय,
तो तेरे आशीष सत्य हो, जीवन सुखमय।

ज्ञान रश्मियो से, मन से कर तुझे प्रज्वलित,
पाते हम सद्बुद्धि, तेज, सत्कर्मों को नित।
जिन जिन देवो का करते हम यजन प्रतिक्षण
वे शाश्वत विस्तृत हवि तुझको, अग्नि, समर्पण।
ज्योति प्रचेता, निहित अकवियो मे तू कवि बन,
मर्त्यों मे तू अमृत, वरुण के हरती बधन।

कैसे तुझे प्रसन्न करे हम, वरे दीप्त मन,
ज्ञात नही पथ, प्राप्त नही तप, बल या साधन।
कौन मनीषा यज्ञ भेट दे, कौन हवि, स्तवन,
जिससे तेरी शिखा, अग्नि, कर सके वहन मन।

काल अश्व

काल अश्व यह, तप शक्ति का रूप अनश्वर,
दिशा पृष्ठ पर धावमान, अति दिव्य वेग भर।

महावीर्य यह, सप्त रश्मियो से हो शोभित
चला रहा भव को सहस्रधुर,—प्राण उच्छ्वसित।
भुवन भुवन सब घूम रहे चक्रो - से अविरत,
महा अश्व यह, खीच रहा अश्रात विश्व रथ।

अतर्द्रष्टा ऋषि, त्रिकालदर्शी जो कविगण,
इस पर करते धीर विपश्चित ही आरोहण।
निष्ठुर विधि से पीडित जग के शेष चराचर
परिवर्तन चक्रो मे पिस कर होते जर्जर।
नाम रूप मे ही जिनका मन मोहित सीमित
प्रबल पदाघातो से वे नित होते मर्दित।

काल बोध विस्तृत करता मन को, देता बल,
निखिल वस्तुएँ क्षण घटनाएँ जग मे केवल।
बहिरतर जो निज को कर सकते सयोजित
नही व्यापती काल अश्व गति उनको निश्चित।
अथवा जो निर्द्वन्द्व, शुद्ध, निर्लिप्त, ऊर्ध्वचित्
दिव्य तुरग पर चढ, जाते वे पार आत्मजित्।

देव काव्य

तरुण युवक वह, कर्मो मे था जिसके कौशल,
रण मे अरियो के मद को करता था हत बल,
पलित वृद्ध उसको जाता है आज रे निगल,
मृतक पड़ा वह वीर, साँस लेता था जो कल।
इस महत्वमय देव काव्य को देखो प्रतिपल,
क्षण भगुर यह विश्व, काल का मात्र रे कवल।

ज्यो हो जाता चद्र, सूर्य की आभा मे लय,
प्राण इद्रियॉ आत्मा मे मिलती नि सशय।
नित्य, इद्रियो से अतीत, आत्मा का जीवन,
अमृत नाभि जो अन्न प्राण मन की चिर गोपन।
व्यक्ति केन्द्र है, विश्व परिधि, सत्ता रे अक्षय,
नियम सनातन सृजनशील परिवर्तन निश्चय।
नाम रूप परिधान पुरुष के मात्र रे वसन
आत्मवान् होते न काल के दशन के अशन।

दिव्य पुरुष जो अति समीप, अतरतम मे स्थित,
नही देख पाते जन उसको, वह अभिन्न नित।
देखो उसके दिव्य काव्य को ससृति - विस्तृत,
वह न कभी मरता, न जीर्ण होता, वेदाऽमृत।

देव

कर्म निरत जन ही देवो से होते पोषित,
निरलस रे वे स्वय, अहर्निशि रहते जागृत।
दिति पुत्रो को अदिति सुतो के कर चिर आश्रित
मैने अपने को देवो को किया समर्पित।
देवो का है तेज अमित सागर सा विस्तृत,
वे सबसे रे महत्, नम्रता से चिर भूषित।
मानव, तुम शत हस्त करो वैभव एकत्रित,
औ' सहस्र कर होकर उसे करो नित वितरित।

इस प्रकार सब पुण्य करो अपने मे सचित,
अपने कृत क्रियमाण कर्म चिर कर सयोजित।
गाँवो के पशु तजते ज्यो वन पशुओ का पथ
पाप कर्म तुम छोड, रहो सत्कर्मों मे रत।
साथ चलो, सब के हित बोलो, बनो सगठित
साथ मनन कर, करो समान गुणो को अर्जित।
एक ज्ञान औ' एक प्राण सब रहो सम्मिलित,
तुम देवो के तुल्य बनो, सहयोग समन्वित।
व्रत से दीक्षा, दीक्षा से दक्षिणा ग्रहण कर
उससे श्रद्धा, श्रद्धा से कर प्राप्त सत्य वर,
ऋतभरा प्रज्ञा से भर निज ज्योतित अतर
तुम देवो के योग्य बनो, बन मर्त्य से अमर।

पुरुषार्थ

कभी न पीछे हटने वाले ही पाते जय,
बहिरतर के ऐश्वर्यों का करते सचय,
वह प्रति जन का हो अथवा सामूहिक वैभव
ऐहिक आत्मिक सुख पुरुषार्थी के हित सभव।

ठुकरा सकते वीर मृत्यु-पद जो पग पग पर
आत्म त्याग, उत्सर्ग हेतु जो रहते तत्पर,
दीर्घ विशद विस्तृत जीवन धारण कर निश्चय
प्रजा धान्य सयुक्त सदा बनते समृद्धिमय।

शुद्ध चित्त बन, दीप्त अभीप्सा हवि कर अर्पित
विश्व यज्ञ मे, बने मनुज सब अमृत, मृत्युजित्।
उठे सत्य से प्रेरित होकर दुर्बल पीड़ित,
बने सत्य के सम्मुख सत्ताधारी विनमित।

ऋत की रे सपदा शुद्ध, निष्कलुष, सनातन,
सुनता है आह्वान सत्य का बधिर भी श्रवण।
दुह सुहस्त गोधुक् कोई, सुदुघा गो को नित
हमे पिलाए सविता का रस, ऋत दुग्धामृत।

अंतर्गमन

दाँई बाँई ओर, सामने पीछे निश्चित
नही सूझता कुछ भी बहिरतर तमसावृत।
हे आदित्यो, मेरा मार्ग करो चिर ज्योतित,
धैर्य रहित मैं, भय से पीडित, अपरिपक्व चित।

विविध दृश्य शब्दो की माया गति से मोहित
मेरे चक्षु श्रवण हो उठते मोह विभ्रमित।
विचरण करता रहता चचल मन विषयो पर
दिव्य हृदय की ज्योति बहिर्मुख गई है बिखर।

तेजहीन मैं, क्या उत्तर दूँ, करूँ मनन कब?
बहु द्वारो से बहिर्गमन कर मै खोया अब।
भरते थे सुदर उडान जो पक्षी प्रतिक्षण
तृषित इद्रियाँ करती थी जो रूप सगमन,

आज श्रात, विषयाघातो से होकर कातर
तुम्हे पुकार रही वे, ज्योतिर्मन के ईश्वर।
रूप पाश मे बद्ध, ज्ञान मे अपने सीमित,
इद्र, तुम्हारी अमित ज्योति हित वे उत्कठित।

प्रार्थी वे हे देव, हटा यह तिमिर आवरण,
ज्ञान लोक मे आज हमारे खोलो लोचन।
ज्योति पुरुष तुम जहाँ दिव्य मन के हो स्वामी,
निखिल इद्रियो के परिचालक, अतर्यामी।
ऋत चित से है जहाँ सूक्ष्म नभ चिर आलोकित,
उस प्रकाश मे हमे जगाओ, इद्र, अपरिमित।

एकं सत्

इद्रदेव तुम, स्वभू सत्य, सर्वज्ञ, दिव्य मन,
स्वर्ग ज्योति, चित् शक्ति मर्त्य मे लाते अनुक्षण।
त्रय ऋभुओ से रचित तुम्हारा ज्योति अश्व रथ,
प्राण शक्ति मरुतो से विघ्न रहित विग्रह पथ।
तुम्ही अग्नि हो, सप्तजिह्व, अति दिव्य तपस द्युति,
पहुँचाती जो अमर लोक तक धी-घृत आहुति।
दिव्य वरुण तुम, चिर अकलुष, ज्यो विस्तृत सागर,
तप पूत मन की स्थिति, उज्वल, अखिल पापहर।

तुम्ही मित्र हो, ज्योति प्रीति की शक्ति समन्वित,
राग, बुद्धि, कर्मों मे समता करते स्थापित।
गरुत्मान तुम, ज्योतित पखो की उडान भर,
आत्मा की आकाक्षा को ले जाते ऊपर।
तुम हो भग, चिर आशा-सुखमय, शोक पापहन्,
सूक्ष्म दृष्टि, ईप्सा तप की तुम शक्ति अर्यमन्।
मधुपायी युग अश्विन्, तरुण, सुभग, द्रुत भास्वर,
रोग शमन कर, नव निर्मित तुम करते अतर।

अमृत सोम तुम, झरते दिव आनद से मुखर
अन्न प्राण जीवन प्रद, मुक्त तुम्हारे निर्झर।
काल रूप यम, निखिल विश्व का करते नियमन,
तुम्ही मातरिश्वा, सातो जल करते धारण।
तुम्ही सूर्य, आलोक वर्ण, ऋत चित के ईश्वर,
पथ ऊषाएँ, दिव्य प्रेरणाएँ सहस्र कर।
तुम हो एक, स्वरूप तुम्हारे ही सब निश्चित,
विप्रो से तुम बहुधा बहु नामो से कीर्तित।

प्रच्छन्न मन

वेद ऋचाएँ परम व्योम मे अक्षय जीवित,
निखिल देवगण चिर अनादि से जिसमे निवसित ।
जिसे न अनुभव परम तत्व का अक्षर पावन
मत्र पाठ से नही प्रकाशित होता वह मन ।
जिसे ज्ञात वह सत्य, वही रे विज्ञ विपश्चित,
ज्योतित उसका बहिरतर, आनद रूप नित ।

एक अश भर मात्र बहिर्मुख इद्रिय जीवन,
शेष अश प्रच्छन्न मनस् मे रहते गोपन ।
अतर्जीवन से जो मानव हो सयोजित
पूर्ण बने वह, स्वर्ग बने यह वसुधा निश्चित ।
अन्न प्राण मन अतर्मन से हो परिपोषित,
सत्य मूल से युक्त, ज्योति आनद प्रस्रवित ।

वाणी के रे तीन अश उर गुहा मध्य स्थित
अधिमानस से दिव्य ज्ञान हो उनका प्रेरित,
बहिरतर मानव जीवन हो सत्य समन्वित,
अतर्वैभव से हो भौतिक वैभव दीपित ।
आत्मा का ऐश्वर्य, भूत श्री सुख हो अविरत,
ऊषाओ के पथ से उतरे पूषण का रथ ।

सृजन शक्तियाँ

आज देवियो को करता मन भूरि रे नमन,
सृजन शक्तियाँ चिन्मयि जो करती भव सर्जन !

माहेश्वरी महेश्वर की आज्ञा का पालन,
लक्ष्मी श्री सौन्दर्य विभव नव करती वितरण ।
सरस्वती विस्तार सूक्ष्म करती सपादन,
काली भरती प्रगति, विघ्न कर निखिल निवारण ।
आभा देही अदिति, देवताओ की माता,
वह अभिन्न अविभाज्य, एकता की चिर ज्ञाता ।
उसके सुत आदित्य सत्य से युक्त निरतर,
भेद बुद्धि दिति के सुत दैत्य, अहम्मय तमचर ।

आदि सत्य का सक्रिय बोध इला देती नित,
सरस्वती चिर सत्य स्रोत अतर मे समुदित ,

मही, भारती, वाणी - जिनका ज्ञान अपरिमित,
सद् का देती बोध दक्षिणा, हवि कर वितरित।
शर्मा है प्रेरणा, श्वान जो अचित् मे उतर
चित् का छिपा प्रकाश ढूँढ लाता चिर भास्वर।
देवो की शक्तियाँ देवियाँ रे चिर पूजित,
मानव का प्रच्छन्न चित्त जिनसे नित ज्योतित।

इंद्र

इद्र, सतत सत्पथ पर देवे मर्त्य चरण नित,
दिव्य तुम्हारे ऐश्वर्यों को कर अगीकृत।
तुम, उलूक-ममता के तम का हटा आवरण,
वृक-हिंसा औ' श्वान-द्वेष का करो निवारण।
कोक काम रति, श्येन दर्प औ' गृद्ध लोभ हर,
षड् रिपुओ से देव, करो जन त्राण निरतर।
ज्यो मृद् पात्र विनष्ट शिला कर देती तत्क्षण,
पशु प्रवृत्तियाँ छिन्न करो हे प्रबल वृत्रहन्।

इद्र, हमे आनद सदा तुम देते उज्वल,
पीछे अघ न पडे जो आगे हो चिर मगल।
दिव्य भाव जितने, जो देव तुम्हारे सहचर
वृत्र श्वास से भीत, छोडते तुम्हें निरतर।
प्राण शक्तियाँ मरुत साथ देते जब निश्चय,
पाप असुर सेना पर तुम तब पाते नित जय।
दान दान पर करता मैं श्रद्धा नत वदन,
तुम अपार हो, स्तुति से भरता नही कभी मन।
जौ के खेतो में ज्यो गायें करती विचरण,
देव, हमारे उर मे रमण करो तुम प्रतिक्षण।
सर्व दिशाओ से दो हमको अभय अनामय,
विजयी हो षड् रिपुओ पर, जीवन हो सुखमय।

वरुण

वरुण, मुक्त कर दो मेरे त्रिक् जीवन बधन,
पाप निवारक हे, प्रकाश से भर मेरा मन।

पाश गुणो के ऊपर और खुले ये उत्तम,
नीचे टूटें अधम, मध्य मे श्लथ हो मध्यम।
अन्न प्राण मन, सत रज तम का हो रूपातर,
हम चिर अकलुष बने अदिति का आश्रय पाकर।
यह मानव तन सतत सप्त ऋषियो से रक्षित,
चैत्य प्राण जिनमे सुषुप्ति मे भी चिर जागृत।

सदा भद्र सकल्पो से हम हो परिपोषित,
देवो को कर तुष्ट रहे नित स्वस्थ, हृष्ट चित।
भद्र सुने ये श्रवण, भद्र देखे ये लोचन,
स्थिर अगो से सदा सत्य पथ करे जन ग्रहण।
देव सखा बन ऋजु प्रिय, रहें सुरो से वेष्टित,
उनकी भद्रा सुमति करे सब की रक्षा नित।
पृथ्वी द्यौ औ' अतरिक्ष की समिधा देकर
श्रम से, तप से, अमृत ज्योति का पाएँ हम वर।

सोमपायी

चिर रमणीय वसत, ग्रीष्म, वर्षा ऋतु सुखमय,
स्निग्ध शरद, हेमत शिशिर, रमणीय असशय।
मधु केन्द्रो को घेर बैठते ज्यो नित मधुकर,
ज्ञान इन्द्रियो पर स्थित सोम पिपासु निरतर।
ध्यान मग्न होकर जीवन मधु करते सचय,
अर्पित कर कामना, इद्र, तुममे होकर लय।
रथ पर रख ज्यो पैर, बैठ जाते वे तन्मय,
ऋजु पथ से तुम ले जाते उनको ज्योतिर्मय।

जिसकी महिमा गाते हिमवत् सिन्धु नदी नद,
जिसकी बाहु दिशाओ सी फैली हैं कामद,
जहाँ अमृत आनद ज्योति के झरते निर्झर,
मुक्त सोम रस पीकर पाते धाम वे अमर।
ब्रह्म लोक वह, सूर्य समान अमित ज्योतिर्मय,
मनोगगन द्यौ, विस्तृत सागर सदृश अनामय।
पृथ्वी से अगणित गुण इद्र बृहद् बल ईश्वर,
दिव्य शक्तियाँ उसकी शतशत किरणे भास्वर।

मंगल स्तवन

अमित तेज तुम, तेज पूर्ण हो जनगण जीवन,
दिव्य वीर्य तुम, वीर्य युक्त हो सबके तन मन।
दीप्त ओज बल तुम, बल ओज करे हम धारण,
शुद्ध मन्यु तुम, करे मन्यु से कलुष निवारण।
तुम चिर सह, हम सहन कर सके, धीर शात बन,
पूर्ण बने हम सोम, सत्य पथ करें सब ग्रहण।

ज्ञान ज्योति का दिव्य चक्षु सामने अब उदित,
देखे हम शत शरद, शरद शत सुने भद्र नित।
बोलें हम शत शरद, शरद शत तक हो जीवित,
ऐश्वर्यों मे रहे, शरद शत दैन्य से रहित।
शत शरदो से अधिक सुने देखे हम निश्चित,
तन मन आत्मा के वैभव से युक्त अपरिमित।

स्वर्ग शाति दे, अतिरक्ष दे शाति निरतर,
पृथ्वी शाति, शाति जल, ओषधि शाति दे अजर।
विश्व देव दे शाति, वनस्पति शाति दे सकल,
ब्रह्म शाति दे, सर्व शाति, दे शाति दिशा पल।

शाति शाति दे हमें, शाति हो व्यापक उज्वल,
शाति धाम यह धरा बने, हो चिर जन मगल।

सामंजस्य

भाव सत्य बोली मुख मटका,
'तुम - मैं की सीमा है बधन,
मुझे सुहाता बादल सा नभ मे
मिल जाना, खो अपनापन।
'ये पार्थिव सकीर्ण हृदय है,
मोल तोल ही इनका जीवन,
नही देखते एक धरा है,
एक गगन है, एक सभी जन।'

बोली वस्तु सत्य मुँह बिचका,
'मुझे नही भाता यह दर्शन,
भिन्न देह है जहाँ, भिन्न रुचि
भिन्न स्वभाव, भिन्न सबके मन।
नही एक मे भरे सभी गुण,
द्वन्द्व जगत मे है नारी नर,
स्नेही द्रोही, मूर्ख चतुर है,
दीन धनी, कुत्सित औ' सुदर।'

आत्म सत्य बोली मुसका कर,
'मुझे ज्ञात दोनो का कारण,
मै दोनो को नही भूलती,
दोनो का करती सचालन।
'पख खोल सपने उड जाते,
सत्य न बढ पाता गिन गिन पग,
सामजस्य न यदि दोनो मे
रखती मै, क्या चल सकता जग?'

लक्ष्मण

विश्व श्याम जीवन के जलधर
राम प्रणम्य, राम है ईश्वर।
लक्ष्मण निर्मल स्नेह सरोवर
करुणा सागर से भी सुदर।
सीता के चेतना जागरण
राम हिमालय से चिर पावन,
मेरे मन के मानव लक्ष्मण
ईश्वरत्व भी जिन्हे समर्पण।

धीर वीर अपने पर निर्भर
झुका अह धनु, धर सेवा शर,
कब से भू पर विचर रहे वे
लक्ष्मण, सच्चे भ्राता, सहचर।
युग युग से चिर असि व्रत चारी,
जग जीवन विघ्नो के हारी,
जन सेवा उनकी प्रिय नारी
वह ऊर्मिला, हृदय को प्यारी।

रुधिर वेग से कपित थर थर
पकड ऊर्मिला का पल्लव कर
बोले, 'प्रिये , बिदा दो हँसकर,
सग राम के जाता अनुचर।'
चौदह बरस रहे वह बाहर
बिछुडे नही प्रिया से क्षण भर,
सजग ऊर्मिला थी उर भीतर
मानस की सी ऊर्मि निरतर।

स्नेह ऊर्मिला का चिर निश्चल
नही जानता विरह मिलन पल,
वह बह बह अतर मे अविरल
बनता रहता सेवा मगल।
वह सेवा कर्त्तव्य नही है,
वह भीतर से स्वत बही है,
हार्दिकता की सरित रही है,
जिससे निश्चित हरित मही है।

सहज सलज्ज सुशील स्नेहमय,
जन जन के साथी, चिर सहृदय,
मुक्त हृदय, विनयी , अति निर्भय,
जन्म जन्म का हो ज्यो परिचय–,
आते वे सम्मुख प्रसन्न मन
भू पर नत आनद के गगन,–
बरस गया जिसका ममत्व घन,
गौर चाँदनी सा चेतन तन।

ऐसे भू के मानव लक्ष्मण
कभी गा सकूँ उनका जीवन,
छू जिनके सेवा रत पदतल
बिछ जाते पथ शूल फूल बन।
राम पतित पावन, दुख मोचन,
लक्ष्मण भव सुख दुख मे शोभन।
वे सर्वज्ञ, सर्वगत, गोपन,—
ज्ञान मुक्त ये, पद नत लोचन।

चौथी भूख

'भूखे भजन न होय गुपाला',
यह कबीर के पद की टेक,
देह की है भूख एक!—

कामिनी की चाह, मन्मथ दाह,
तन को है तपाते,
औ' लुभाते विषय भोग अनेक,
चाहते ऐश्वर्य सुख जन,
चाहते स्त्री पुत्र औ' धन,
चाहते चिर प्रणय का अभिषेक!
देह की है भूख एक!—

दूसरी रे भूख मन की!
चाहता मन आत्म गौरव,
चाहता मन कीर्ति सौरभ,
ज्ञान मथन, नीति दर्शन
मान पद अधिकार पूजन!
मन कला विज्ञान द्वारा
खोलता नित ग्रथियाँ जीवन मरण की!
दूसरी यह भूख मन की!

तीसरी रे भूख आत्मा की गहन!
इद्रियो की देह से ज्यो है परे मन,
मनोजग से परे त्यो आत्मा-चिरतन,
जहाँ मुक्ति विराजती
औ' डूब जाता हृदय क्रदन!
वहाँ सत् का वास रहता,
वहाँ चित् का लास रहता,
वहाँ चिर उल्लास रहता,
यह बताता योग दर्शन!
किन्तु ऊपर हो कि भीतर
मनोगोचर या अगोचर
क्या नही कोई कही ऐसा अमृत घन
जो धरा पर बरस भर दे भव्य जीवन?
जाति वर्गों से निखर जन
अमर प्रीति प्रतीति मे बँध
पुण्य जीवन करे यापन
औ' धरा हो ज्योति पावन!

छायाभा

छाया प्रकाश जग जीवन का
बन जाता स्वप्न मधुर सगीत,
इस घने कुहासे के भीतर
दिप जाते तारे इदु पीत।

देखते देखते आ जाता,
मन पा जाता
कुछ जग के जगमग रूप नाम,
रहते रहते कुछ छा जाता,
उर को भाता
जीवन सौन्दर्य अमर ललाम।

प्रिय यहाँ प्रीति
स्वप्नो मे उर बाँधे रहती,
स्वर्णिम प्रतीति
हँस हँस कर सब सुख दुख सहती।

अनिवार कामना
नित अबाध अमना बहती,
पद आराधना
विपद मे बाँह सदा गहती।
जड रीति नीतियाँ
जो युग कथा विविध कहती,
भीतियाँ
जागते सोते तन मन को दहती।

क्या नही यहाँ? छाया प्रकाश की सस्कृति मे?
नित जीवन मरण बिछुडते मिलते भव गति मे।
ज्ञानी ध्यानी कहते, प्रकाश, शाश्वत प्रकाश,
अज्ञानी, मानी,—छाया माया का विलास।

यदि छाया, यह किसकी छाया?
आभा, छाया जग क्यो आया?
मुझको लगता
मन मे जगता,
यह छायाभा है अविच्छिन्न,
यह आँख मिचौनी चिर सुदर,
सुखदुख के इद्रधनुष रंगो की
स्वप्न सृष्टि अज्ञेय, अमर।

पतिता

रोता हाय मार कर माधव
वृद्ध पडोसी जो चिर परिचित,
'क्रूर, लुटेरे, हत्यारे—कर गए
बहू को नीच, कलकित!!
'फूटा करम! धरम भी लूटा!'
शीश हिला, रोते सब परिजन,
'हा अभागिनी! हा कलकिनी!'
खिसक रहे गा गा कर पुरजन!

सिसक रही सहमी कोने मे
अबला साँसो की सी ढेरी,
कोस रही घेरे पडोसिने
आँख चुराती घर की चेरी!
इतने मे घर आता केशव,
'हा बेटा!' कर दारुण रोदन,
माथा लेते पीट कुटुबी
छिन्न लता सा कँप उठता तन!

'सब सुन चुका!' चीखता केशव,
'बद करो यह रोना धोना,
उठो मालती, लील जायगा
तुमको घर का काला कोना!
'मन से होते मनुज कलकित,
रज की देह सदा से कलुषित,
प्रेम पतित पावन है, तुमको
रहने दूँगा मै न कलकित!'

परकीया

विनत दृष्टि हो बोली करुणा,
आँखो मे थे आँसू के घन,
'क्या जाने क्या आप कहेगे,
मेरा परकीया का जीवन!'

स्वच्छ सरोवर सा वह मानस,
नील शरद नभ-से वे लोचन
कहते थे वह मर्म कथा जो
उमड रही थी उर मे गोपन।

बोला विनय, 'समझ सकता हूँ,
मै त्यक्ता का मानस क्रदन,
मेरे लिए पच कन्या मे
षष्ट आप है, पातक मोचन।
यदपि जबाला सदृश आपको
अर्पित कर अपना यौवन धन
देना पडा मूल्य जीवन का
तोड बाह्य सामाजिक बधन,

'फिर भी लगता मुझे आपने
किया पुण्य जीवन है यापन,
बतलाती यह मन की आभा,
कहता यह गरिमा का आनन।
'पति पत्नी का सदाचार भी
नही मात्र परिणय से पावन,
काम निरत यदि दपति जीवन,
भोग मात्र का परिणय साधन।

'प्राणो के जीवन से ऊँचा
है समाज का जीवन निश्चय,
अग लालसा मे, सामाजिक
सृजन शक्ति का होता अपचय।
'पकिल जीवन मे पकज सी
शोभित आप देह से ऊपर,
वही सत्य जो आप हृदय से,
शेष शून्य जग का आडबर।

'अत स्वकीया या परकीया
जन समाज की है परिभाषा,
काम मुक्त औ' प्रीति युक्त,
होगी मनुष्यता, मुझको आशा!'

लोक सत्य

बोला माधव,
'प्यारे यादव,
'जब तक होगे लोग नही अपने सत्वो से परिचित
जन सग्रह बल पर भव सस्कृति हो न सकेगी निर्मित।
आज अल्प है जीवित जग मे औ' असख्य उत्पीडित,
लौह मुष्टि से हमे छीननी होगी सत्ता निश्चित।'

बोला यादव
'प्यारे माधव,
'मुझको लगता आज वृत्त मे घूम रहा मानव मन,
भौतिकता के आकर्षण से रण जर्जर जग जीवन।
समतल व्यापी दृष्टि मनुज की देख न पाती ऊपर,
देख न पाती भीतर अपने, युग स्थितियो से बाहर।
'नही दीखता मुझे जनो का भूत भ्राति मे मंगल
वाह्य क्राति से प्रबल हृदय मे क्राति चल रही प्रतिपल।
मध्य वर्ग की वैभव तद्रा के स्वप्नो से जग कर
हमको अभिनव लोक सत्य है स्थापित करना भू पर।
'युग युग के जीवन से औ' युग जीवन से उत्सर्जित,
सूक्ष्म चेतना मे मनुष्य की, सत्य हो रहा विकसित।
आज मनुज को ऊपर उठ औ' भीतर से हो विस्तृत
नव्य चेतना से जग जीवन को करना है दीपित।'

बोला यादव,
'प्यारे माधव,
'वही सत्य कर सकता मानव जीवन का परिचालन
भूतवाद हो जिसका रज तन, प्राणिवाद जिसका मन,
औ' अध्यात्मवाद हो जिसका हृदय गभीर चिरंतन,
जिसमे मूल सृजन विकास के, विश्व प्रगति के गोपन।
'आज हमे मानव मन को करना आत्मा के अभिमुख,
मनुष्यत्व मे मज्जित करने युग जीवन के सुख दुख।
पिघला देगी लौह मुष्टि को आत्मा की कोमलता,
जन बल से रे कही बडी है मनुष्यत्व की क्षमता।'

काले बादल

सुनता हूँ, मैंने भी देखा,
काले बादल मे रहती चाँदी की रेखा।
काले बादल जाति द्वेष के
काले बादल विश्व क्लेश के,
काले बादल उठते पथ पर
नव स्वतत्रता के प्रवेश के।
सुनता आया हूँ, है देखा
काले बादल मे हँसती चाँदी की रेखा।
आज दिशा है घोर अँधेरी
नभ मे गरज रही रण भेरी,
चमक रही चपला क्षण क्षण पर
झनक रही झिल्ली झन झन कर,
नाच नाच आँगन मे गाते केकी केका
काले बादल मे लहरी चाँदी की रेखा।
काले बादल, काले बादल,
मन भय से हो उठता चचल।
कौन हृदय मे कहता पल पल
मृत्यु आ रही साजे दलबल।
आग लग रही, घात चल रहे, विधि का लेखा।
काले बादल मे छिपती चाँदी की रेखा।
मुझे मृत्यु की भीति नही है,
पर अनीति से प्रीति नही है,
यह मनुजोचित रीति नही है,
जन मे प्रीति प्रतीति नही है।
देश जातियो का कब होगा
नव मानवता मे रे एका,
काले बादल मे कल की
सोने की रेखा।

जाति मन

सौ सौ बाँहे लडती है, तुम नही लड रहे,
सौ सौ देहे कटती है, तुम नही कट रहे,
हे चिर मृत, चिर जीवित भू जन।

अध रूढियाँ अडती हैं, तुम नही अड रहे,
सूखी टहनी छँटती हैं, तुम नही छँट रहे,
जीवन-मृत, नव जीवित भू जन।

आने से पहिले ही तुम आ गए यहाँ
इस स्वर्ण धरा पर,
मरने से पहिले तुमने नव जन्म ले लिया,
धन्य तुम्हे, हे भावी के नारी नर।

काट रहे तुम अधकार को,
छाँट रहे मृत आदर्शों को,
डुबा रहे नव चेतनता मे
युग मानव के सघर्षों को।

मुक्त कर रहे भूत योनि से
भावी के स्वर्णिम वर्षों को,
हाँक रहे तुम जीवन रथ, नव मानव बन,
पथ मे बरसा, शत आशाओ को,
शत हर्षों को।

सौ सौ बाँहे, सौ सौ देहे नही कट रही,
बलि के अज, तुम आज कट रहे,
युग युग के वैषम्य, जाति मन,
एवमस्तु बहिरतर जो तुम
आज छँट रहे।

मृत्युंजय

ईश्वर को मरने दो हे, मरने दो,
वह फिर जी उठ्ठेगा, ईश्वर को मरने दो।
वह क्षण क्षण मरता, जी उठता,
ईश्वर को नित नव स्वरूप धरने दो।

शत रूपो मे, शत नामो मे, शत देशो मे,
शत सहस्र बल होकर उसे सृजन करने दो,
क्षण अनुभव के विजय पराजय, जन्म मरण
औ' हानि लाभ की लहरों मे उसको तरने दो।
ईश्वर को मरने दो हे, फिर फिर मरने दो।

दूर नही वह तन से, मन से या जीवन से
अथवा रे जनगण से।

द्वेष कलह सग्राम बीच वह
अधकार से औ' प्रकाश से शक्ति खीच वह
पलता, बढता, विकसित होता अहरह
अपने दिव्य नियम से।

दूर नही वह तन से, मन से, जीवन से
अथवा जनगण से।

एक दृष्टि से, एक रूप मे, देख रहे हम
इस भूमा को, जग को औ' जग के जीवन को निश्चय,
इसमे सुख सुख, जरा मरण है, जड चेतन,
सघर्ष शाति,—यह रे द्वन्द्वो का आशय।

परम दृष्टि से, परम रूप मे यह है ईश्वर
अजर अमर औ' एक अनेक, सर्वगत, अक्षर,
व्यक्ति, विश्व, जड, स्थूल, सूक्ष्मतर।

स प्रत्यागात् शुक्रमकायमव्रणम्
अस्नाविर शुद्धमपापविद्धम्,
कविर्मनीषी परिभू स्वयभू,—पूर्ण परात्पर।

मरने दो तब ईश्वर को मरने दो हे,
वह जी उट्ठेगा, ईश्वर को मरने दो।
वह फिर फिर मरता, जी उठता,
ईश्वर को चिर मुक्त सृजन करने दो।

१५ अगस्त १९४७

चिर प्रणम्य यह पुण्य अहन्, जय गाओ सुरगण,
आज अवतरित हुई चेतना भू पर नूतन।
नव भारत, फिर चीर युगो का तिमिर आवरण,
तरुण अरुण सा उदित हुआ परिदीप्त कर भुवन।
सभ्य हुआ अब विश्व, सभ्य धरणी का जीवन,
आज खुले भारत के सँग भू के जड बधन।

शात हुआ अब युग युग का भौतिक सघर्षण,
मुक्त चेतना भारत की यह करती घोषण।
आम्र मौर लाओ हे, कदली स्तभ बनाओ,
पावन गगा जल भर मगल कलश सजाओ।
नव अशोक पल्लव के बदनवार बँधाओ,
जय भारत गाओ, स्वतत्र जय भारत गाओ।
उन्नत लगता चद्र कला स्मित आज हिमाचल,
चिर समाधि से जाग उठे हो शभु तपोज्वल।
लहर लहर पर इद्रधनुष ध्वज फहरा चचल
जय निनाद करता, उठ सागर, सुख से विह्वल।

धन्य आज का मुक्ति दिवस, गाओ जन-मगल,
भारत लक्ष्मी से शोभित फिर भारत शतदल।
तुमुल जयध्वनि करो, महात्मा गाधी की जय,
नव भारत के सुज्ञ सारथी वह नि सशय।
राष्ट्र नायको का हे, पुन करो अभिवादन,
जीर्ण जाति मे भरा जिन्होने नूतन जीवन।
स्वर्ण शस्य बाँधो भू वेणी मे युवती जन,
बनो वज्र प्राचीर राष्ट्र की, वीर युवकगण।
लोह सगठित बने लोक भारत का जीवन,
हो शिक्षित सपन्न क्षुधातुर नग्न भग्न जन।
मुक्ति नही पलती दृग जल से हो अभिसिचित,
सयम तप के रक्त स्वेद से होती पोषित।
मुक्ति माँगती कर्म वचन मन प्राण समर्पण,
वृद्ध राष्ट्र को, वीर युवकगण, दो निज यौवन।

नव स्वतत्र भारत हो जग हित ज्योति जागरण,
नव प्रभात मे स्वर्ण स्नात हो भू का प्रागण।
नव जीवन का वैभव जाग्रत् हो जनगण मे,
आत्मा का ऐश्वर्य अवतरित मानव मन मे।
रक्त सिक्त धरणी का हो दु स्वप्न समापन,
शाति प्रीति सुख का भू स्वर्ग उठे सुर मोहन।
भारत का दासत्व दासता थी भू-मन की,
विकसित आज हुई सीमाएँ जग जीवन की।
धन्य आज का स्वर्ण दिवस, नव लोक जागरण,
नव संस्कृति आलोक करे जन भारत वितरण।
नव जीवन की ज्वाला से दीपित हो दिशि क्षण,
नव मानवता मे मुकुलित धरती का जीवन।

आज़ाद

पैगबर के एक शिष्य ने
पूछा, 'हजरत, बदे को शक,
है आज़ाद कहाँ तक इसाँ
दुनिया मे पाबद कहाँ तक ?'
'खडे रहो ।' बोले रसूल तब,
'अच्छा, पैर उठाओ ऊपर।'
'जैसा हुक्म ।' मुरीद सामने
खडा हो गया एक पैर पर ।

'ठीक, दूसरा पैर उठाओ',
बोले हँसकर नबी फिर तुरत,
बार बार गिर, कहा शिष्य ने
'यह तो नामुमकिन है हजरत ।'
'हो आजाद यहाँ तक, कहता
तुमसे एक पैर उठ ऊपर,
बँधे हुए दुनिया से कहता
पैर दूसरा अडा जमी पर ।'—
पैगबर का था यह उत्तर ।

अंतिम पैगंबर

दूर दूर तक केवल सिकता, मृत्यु, नास्ति, सूनापन,—
जहाँ हिंस्र बर्बर अरबो का रण जर्जर था जीवन,
ऊष्मा झझा बरसाते थे अग्नि बालुका के कण,
उस मरुस्थल मे आप ज्योति निर्झर-से उतरे पावन ।
वर्ग जातियो मे विभक्त बद्दू औ' शेख निरतर
रक्तधार से रँगते रहते थे रेती कट मर कर,
मद धीर ऊँटो की गति से प्रेरित प्रिय छदो पर,
गीत गूँथते गुनगुन जन, निर्जन को स्वप्नो से भर ।

वहाँ उच्च कुल मे जनमे तुम दीन कुरेशी के घर,
बने गडरिए, तुम्हे जान प्रभु, भेड नवाती थी सर ।
हँस उठती थी हरित दूब मरु मे प्रिय पदतल छूकर,
प्रथित खादिजा के स्वामी तुम बने तरुण चिर सुदर ।

छोड विभव घर द्वार एक दिन, अति उद्वेलित अतर
हिरा शैल पर चले गए तुम प्रभु की आज्ञा सिर धर ,
दिव्य प्रेरणा से नि सृत हो जहाँ ज्योति विगलित स्वर
जगी ईश वाणी कुरान, चिर तप पूत उर भीतर।

घेर तीन सौ साठ बुतो से काबा को, प्रति वत्सर
भेज कारवाँ, करते थे व्यापार कुरेश धनेश्वर,
उस मक्का की जन्मभूमि मे, निर्वासित भी होकर,
किया प्रतिष्ठित फिर से तुमने अब्राहम का ईश्वर।
ज्योति शब्द, विद्युत् असि लेकर तुम अतिम पैगम्बर,
ईश्वरीय जन सत्ता स्थापित करने आए भू पर,
नबी, दूरदर्शी, शासक, नीतिज्ञ, सैन्य नायक वर,
धर्म केतु, विश्वास सेतु, तुम पर जन हुए निछावर।

'अल्ला एक मात्र ईश्वर है और रसूल मोहम्मद,
घोषित तुमने किया, तडित् असि चमका, मिटा अहम्मद,
ईश्वर पर विश्वास, प्रार्थना, दान,—सत की सपद,
शाति धाम इस्लाम, जीव प्रति प्रेम, स्वर्ग जीवनप्रद।
जाति व्यर्थ है, सब समान है मनुज, ईश के अनुचर,
अविश्वास औ' वर्ग भेद से है जिहाद श्रेयस्कर।
दुर्बल मानव, पर रहीम ईश्वर चिर करुणा सागर,
ईश्वरीय एकता चाहता है इस्लाम धरा पर।

प्रकृति जीव ही को जीवन की मान इकाई निश्चित,
प्राणो का विश्वास पथ कर तुमने प्रभु का निर्मित,
व्यक्ति चेतना के बदले कर जाति चेतना विकसित,
जीवन सुख का स्वर्ग किया अतरतम नभ मे स्थापित।
आत्मा का विश्लेषण कर या दर्शन का सश्लेषण
भाव बुद्धि के सोपानो मे बिलमाए न हृदय मन ,
कर्म प्रेरणा स्फुरित शब्द से जन मन का कर शासन
ऊर्ध्व गमन के बदले समतल गमन बताया साधन।

स्वर्ग दूत जबरील तुम्हारा बन मानस पथ दर्शक,
तुम्हे सुझाता रहा मार्ग जन मगल का निष्कटक ,
तर्कों वादो और बुतो के दासो को, जन रक्षक,
प्राणो का जीवन पथ तुमने दिखलाया आकर्षक।
एक रात मे मृत मरु को कर तुमने जीवन चेतन,
पृथ्वी को ही प्रभु के शब्दो को कर दिया समर्पण ,
'मै भी अन्य जनो सा हूँ।' कह, रह सबसे साधारण
पावन तुम कर गए धरा को, धर्म तत्र कर रोपण।

सावन

झम झम झम झम मेघ बरसते हैं सावन के,
छम छम छम गिरती बूँदे तरुओ से छन के।
चम चम बिजली चमक रही रे उर मे घन के,
थम थम दिन के तम मे सपने जगते मन के।
ऐसे पागल बादल बरसे नही धरा पर,
जल फुहार बौछारे धारे गिरती झर झर।
आँधी हर हर करती, दल मर्मर, तरु चर चर,
दिन रजनी औ' पाख बिना तारे शशि दिनकर।

पखो से रे, फैले फैले ताडो के दल,
लबी लबी अगुलियाँ है, चौडे करतल,
तड तड पडती धार वारि की उन पर चचल,
टप टप झरती कर-मुख से जल बूँदे झलमल।
नाच रहे पागल हो ताली दे दे चल दल,
झूम झूम सिर नीम हिलाती सुख से विह्वल।
हरसिंगार झरते, बेला कलि बढती पल पल,
हँसमुख हरियाली मे खग कुल गाते मगल।

दादुर टर टर करते, झिल्ली बजती झन झन,
म्याउँ म्याउँ रे मोर, पीउ पिउ चातक के गण।
उडते सोन बलाक आर्द्र सुख से कर क्रदन,
घुमड घुमड घिर मेघ गगन मे भरते गर्जन।
वर्षा के प्रिय स्वर उर में बुनते सम्मोहन,
प्रणायतुर शत कीट विहग करते सुख गायन।
मेघो का कोमल तम श्यामल तरुओ से छन
मन मे भू की अलस लालसा भरता गोपन।

रिमझिम रिमझिम क्या कुछ कहते बूँदो के स्वर,
रोम सिहर उठते, छूते वे भीतर अतर।
धाराओ पर धाराएँ झरती धरती पर,
रज के कण कण मे तृण तृण की पुलकावलि भर।
पकड वारि की धार झूलता है मेरा मन,
आओ रे सब मुझे घेर कर गाओ सावन।
इद्रधनुष के झूले मे झूले मिल सब जन,
फिर फिर आए जीवन मे सावन मन भावन।

हृदय तारुण्य

आम्र मजरित, मधुप गुजरित,
गध समीरण मद सचरित!
प्राणो की पिक बोल उठी फिर
अतर मे कर ज्वाल प्रज्वलित!
डाल डाल पर दौड रही वह
ज्वाल रग-रगो मे कुसुमित,
नस नस मे कर रुधिर प्रवाहित
उर मे रस वश गीत तरगित!

तन का यौवन नही, हृदय का
यौवन रे यह आज उच्छ्वसित,
फिर जग मे सौन्दर्य पल्लवित
प्राणो मे मधु स्वप्न जागरित!
आम्र मजरित, मधुप गुजरित,
गध समीरण अध सचरित!
प्राणो मे पिक बोल उठी फिर
दिशि-दिशि मे कर ज्वाल प्रज्वलित!

प्रेम मुक्ति

एक धार बहता जग जीवन
एक धार बहता मेरा मन!
आर पार कुछ नही कही रे
इस धारा का आदि न उद्गम!
सत्य नही यह स्वप्न नही रे
सुप्ति नही यह मुक्ति न बधन,
आते जाते विरह मिलन नित
गाते रोते जन्म मृत्यु • क्षण!

व्याकुलता प्राणो मे बसती
हँसी अधर पर करती नर्तन,
पीडा से पुलकित होता मन
सुख से ढलते आँसू के कण!

शत वसत शत पतझर खिलते
झरते, नही कही परिवर्तन,
बँधे चिरतन आलिगन मे
सुख-दुख, देह जरा, उर-यौवन!

एक धार जाता जग जीवन,
एक धार जाता मेरा मन,
अतल अकूल जलधि प्राणो का
लहराता उर मे भर कपन!

प्राणाकांक्षा

वज पायल छम,
छम छम!
उर की कपन मे निर्मम
बज पायल छम,
छम छम!

हृदय रक्त रजित सुदर
नृत्य मुग्ध प्रिय चरणो पर,
प्राणो की स्वर्णाकाक्षा सम
प्रणय जडित, चचल, निरुपम,
बज पायल छम,
छम छम!

उद्वेलित हो जब अतर
व्यथा लहरियो पर पग धर,
जीवन की गति लय से अक्लम
पद उन्मद, मत थम, मत थम,
वज पायल छम,
छम छम!

रस स्रवण

रस बन, रस बन,
प्राणो मे!
निष्ठुर जग, निर्मम जीवन,
रस बन, रस बन,
प्राणो मे!

अतस्तल मे व्यथा मथित हो,
भाव भगि मे ज्ञान ग्रथित हो,
गीति छद मे प्रीति रटित हो,
क्षण क्षण छन,
रस बन, रस बन
प्राणो मे।

तम से मुक्त प्रकाश उदित हो,
घृणा युक्त उर दया द्रवित हो,
जडता मे चेतना अमृत हो
गरज न घन,
रस बन, रस बन
प्राणो मे।

आवाहन

(फिर) वीणा मधुर बजाओ,
वाणी, नव स्वर मे गाओ।
उर के कपित तारो मे
झकार अमर भर जाओ।

आनंदित हो अतर,
स्पदित प्राणो के स्वर,
नव युग के सौन्दर्य ज्वार मे
जीवन तृषा डुबाओ।

ज्योतित हो मानव मन,
निर्मित नव जग जीवन,
देश जाति वर्णो से
निखरे नव मानवपन।

शोभा हो, श्री सुषमा,
धरणि स्वर्ग की उपमा,
नवल चेतना की जग मे
स्वर्णिम किरणे बरसाओ।
(फिर) वीणा मधुर बजाओ।

मर्म कथा

बाँध दिए क्यो प्राण
प्राणो से !
तुमने चिर अनजान
प्राणो से !

गोपन रह न सकेगी
अब यह मर्म कथा,
प्राणो की न रुकेगी
बढती विरह व्यथा,
विवश, फूटते गान,
प्राणो से !

यह विदेह प्राणो का बधन
अतर्ज्वाला मे तपता तन !
मुग्ध हृदय, सौन्दर्य ज्योति को
दग्ध कामना करता अर्पण !
नही चाहता जो कुछ भी आदान
प्राणो से !
बाँध दिए क्यो प्राण
प्राणो से !

प्रणय कुंज

तुम प्रणय कुज मे जब आई
पल्लवित हो उठा मधु यौवन
मजरित हृदय की अमराई !
मलय हुआ मद चचल,
लहराया सरसी जल,
अलि गूँज उठे, पिक ध्वनि छाई !
अब वह स्वप्न अगोचर
मर्म व्यथा मथित करती अतर,
प्राणो के दल झर झर
करते आकुल मर्मर,
चिर विरह मिलन मे भर लाई,
तुम प्रणय कुज में जब आई !

शरद चाँदनी

शरद चाँदनी।
विहँस उठी अतल मौन
नीलिमा उदासिनी।

आकुल सौरभ समीर,
छल छल चल सरित नीर,
हृदय प्रणय से अधीर,
जीवन उन्मादिनी।

अश्रु सजल तारक दल,
अपलक दृग गिनते पल,
छेड रही प्राण विकल
विरह वेणु वादिनी।

जगी कुसुम कलि थर् थर्,
जगे रोम सिहर सिहर,
शशि असि सी प्रेयसि स्मृति
जगी हृदय ह्लादिनी।
शरद चाँदनी।

मर्म व्यथा

प्राणो मे चिर व्यथा बाँध दी।
क्यो चिर दग्ध हृदय को तुमने
वृथा प्रणय की अमर साध दी।

पर्वत को जल, दारु को अनल,
वारिद को दी विद्युत् चचल,
फूल को सुरभि, सुरभि को विकल
उडने की इच्छा अबाध दी।

हृदय दहन रे हृदय दहन,
प्राणो की व्याकुल व्यथा गहन,
यह सुलगेगी, होगी न सहन,
चिर स्मृति की श्वास समीर साथ दी।

प्राण गलेंगे, देह जलेगी,
मर्म व्यथा की कथा ढलेगी,
सोने सी तप, निकलेगी
प्रेयसि प्रतिमा, ममता अगाध दी!
प्राणो मे चिर व्यथा बाँध दी!

गोपन

मै कहता कुछ, रे बात और!
जग मे न प्रणय को कही ठौर!

प्राणो की सुरभि बसी प्राणो मे,
बन मधु सिक्त व्यथा,
वह नीरव गोपन मर्म मधुर
वह सह न सकेगी लोक कथा,—

क्यो वृथा प्रेम आया जग मे
सिर पर काँटो का धरे मौर!
मै कहता कुछ, रे बात और!

सौन्दर्य चेतना विरह मूढ,
मधु प्रणय भावना बनी मूक,
रे हूक हृदय मे भरती अब
कोकिल की नव मंजरित कूक!—

काले अक्षर का जला प्रेम
लिखते कलियो से सटे भौर!
मै कहता कुछ, रे बात और!

स्वप्न बंधन

बाँध लिया तुमने प्राणो को फूलो के बधन मे,
एक मधुर जीवित आभा सी लिपट गई तुम मन मे!
बाँध लिया तुमने मुझको स्वप्नो के आलिगन में!
तन की सौ शोभाएँ सम्मुख चलती फिरती लगती,
सौ सौ रगो मे, भावो मे तुम्हे कल्पना रँगती,
मानसि, तुमसौ बार एक ही क्षण मे मन में जगती!

तुम्हे स्मरण कर जी उठते यदि स्वप्न, ऑक उर मे छवि,
तो आश्चर्य, प्राण बन जाएँ गान, हृदय प्रणयी कवि ?
तुम्हे देखकर स्निग्ध चाँदनी भी जो बरसावे रवि !
तुम सौरभ सी सहज मधुर बरबस बस जाती मन मे,
पतझर मे लाती वसत, रस स्रोत विरस जीवन मे,
तुम प्राणो मे प्रणय, गीत बन जाती उर कपन मे !

तुम देही हो ? दीपक लौ सी दुबली कनक छबीली,
मौन मधुरिमा भरी, लाज ही सी साकार लजीली,
तुम नारी हो ? स्वप्न कल्पना सी सुकुमार सजीली ?
तुम्हे देखने शोभा ही ज्यो लहरी सी उठ आई,
अग भगिमा, तनिमा बन, मृदु देही बीच समाई,
कोमलता कोमल अगो मे पहिले तन धर पाई !

फूल खिल उठे, तुम वैसी ही भू को दी दिखलाई,
सुदरता वसुधा पर खिल सौ सौ रगो मे छाई,
छाया सी ज्योत्स्ना सकुचाई, प्रतिछवि सी उषा लजाई !
तुम मे जो लावण्य मधुरिमा, जो असीम सम्मोहन,
तुम पर प्राण निछावर करने पागल हो उठता मन,
नही जानती क्या तुम निज बल, निज अपार आकर्षण ?
बाँध लिया तुमने प्राणो को प्रणय स्वप्न बधन मे,
तुम जानो, क्या तुमको भाया, छिपा मर्म क्या मन मे !
इद्रधनुष बनकर हँसती तुम अश्रु वाष्प के घन मे !

स्वप्न देही

स्वप्न देही हो प्रिये, तुम,
देह तनिमा अश्रु धोई !
रूप की लौ सी सुनहली
दीप मे तन के सँजोई !

सेज पर लेटी मुघर
सौन्दर्य छाया सी सुहाई,
काम देही स्वप्न सी
स्मृति तल्प पर तुम दी दिखाई !
कल्पना की मधुरिमा सी
भाव मृदुता मे डुबोई !

देह में मृदु देह सी
उर मे मधुर उर सी समा कर,
लिपट प्राणो से गई तुम
चेतना सी निपट सुदर!
प्रेम पलको पर अकल्पित
रूप की सी स्वप्न सोई!

विरल पट से झलक
ऊर्मिल अलक करते हृदय मोहित,
सरित जल मे तैरती ज्यो
नील घन छाया तरगित!
काम वन मे प्रणय ने हो
कामना की बेलि बोई!

लालसा तम - से तुम्हारे
कुतलो के जाल मे भ्रम
क्यो न होता प्यार अधा
छबि अपार निहार निरुपम!
मर्म की आकुल तृषा तुम
प्रणय श्वासो मे पिरोई!

स्नेह प्रतिमा सी मनोरम
मर्म इच्छा से विनिर्मित,
हृदय शतदल मे सतत
तुम झूलती अभिलाष स्पदित!
सार तत्वो की बनी तुम
देह भूतो बीच खोई!

श्रद्धा के फूल

(१)

अतर्धान हुआ फिर देव विचर धरती पर,
स्वर्ग रुधिर से मर्त्य लोक की रज को रँगकर!
टूट गया तारा, अतिम आभा का दे वर,
जीर्ण जाति मन के खँडहर का अधकार हर!

अतर्मुख हो गई चेतना दिव्य अनामय,
मानस लहरो पर शतदल सी हँस ज्योतिर्मय,
मनुजो मे मिल गया आज मनुजो का मानव
चिर पुराण को बना आत्म बल से चिर अभिनव!

आओ, हम उसको श्रद्धाजलि दे देवोचित,
जीवन सुदरता का घट मृत को कर अर्पित,
मगलप्रद हो देव मृत्यु यह हृदय विदारक
नव भारत हो बापू का चिर जीवित स्मारक!
बापू की चेतना बने पिक का नव कूजन,
बापू की चेतना वसत बखेरे नूतन!

(२)

हाय, हिमालय ही पल मे हो गया तिरोहित
ज्योतिर्मय जल से जन धरणी को कर प्लावित!
हाँ, हिमाद्रि ही तो उठ गया धरा से निश्चित
रजत वाष्प सा अतर्नभ मे हो अर्तहित!

आत्मा का वह शिखर, चेतना मे लय क्षण मे,
व्याप्त हो गया सूक्ष्म चाँदनी सा जन मन मे!
मानवता का मेरु, रजत किरणो से मडित,
अभी अभी चलता था जो जग को कर विस्मित,
लुप्त हो गया लोक चेतना के क्षत पट पर
अपनी स्वर्गिक स्मृति की शाश्वत छाप छोड़कर!

आओ, उसकी अक्षय स्मृति को नीव बनाएँ
उस पर सस्कृति का लोकोत्तर भवन उठाएँ!

स्वर्ण शुभ्र धर सत्य कलश स्वर्गोच्च शिखर पर,
विश्व प्रेम मे खोल अहिसा के गवाक्ष वर।

(३)

हाय, आँसुओ के आँचल से ढँक नत आनन
तू विषाद की शिला बन गई आज अचेतन,
ओ गाधी की धरे, नही क्या तू अकाय-व्रण ?
कौन शस्त्र से भेद सका तेरा अछेद्य तन ?

तू अमरो की जनी, मर्त्य भू मे भी आकर
रही स्वर्ग से परिणीता, तप पूत निरतर।
मगल कलशो-से तेरे वक्षोजो मे घन
लहराता नित रहा चेतना का चिर यौवन।
कीर्ति स्तभ-से उठ तेरे कर अबर पट पर
अकित करते रहे अमिट ज्योतिर्मय अक्षर।

उठ, ओ गीता के अक्षय यौवन की प्रतिमा,
समा सकी कब धरा स्वर्ग मे तेरी महिमा।
देख, और भी उच्च हुआ अब भाल हिम शिखर,
बाँध रहा तेरे अचल से भू को सागर।

(४)

हिम किरीटिनी, मौन आज तुम शीश झुकाए ?
सौ वसत हो कोमल अगो पर कुम्हलाए।
वह जो गौरव श्रृग धरा का था स्वर्गोज्वल,
टूट गया वह ?—हुआ अमरता मे निज ओझल।
लो, जीवन सौन्दर्य ज्वार पर आता गाधी,
उसने फिर जन सागर मे आभा पुल बाँधी।

खोलो, मा, फिर बादल सी निज कबरी श्यामल,
जन मन के शिखरो पर चमके विद्युत् के पल।
हृदय हार सुरधुनी तुम्हारी जीवन चचल,
स्वर्ण श्रोणि पर शीश धरे सोया विध्याचल।
गज रदनो-से शुभ्र तुम्हारे जघनो मे घन
प्राणो का उन्मादन जीवन करता नर्तन।
तुम अनत यौवना धरा हो, स्वर्गाकाक्षित,
जन को जीवन शोभा दो भू हो मनुजोचित।

(५)

देख रहा हूँ, शुभ्र चाँदनी का सा निर्झर,
गाधी युग अवतरित हो रहा जन धरणी पर।

विगत युगो के तोरण, गुबद, मीनारो पर
नव प्रकाश शोभा रेखाओ का जादू भर।
सजीवन पा जाग उठा हो राष्ट्र का मरण,
छायाएँ सी आज चल रही भू पर चेतन,—
जन मन मे जग, दीप शिखा के पग धर नूतन,
भावी के नव स्वप्न धरा पर करते विचरण,
सत्य अहिसा बन अतर्राष्ट्रीय जागरण,
मानवीय स्पर्शो से भरते धरती के व्रण।
झुका तडित् अणु के अश्वो को, कर आरोहण,
नव मानवता करती गाधी का जय घोषण।
मानव के अतरतम शुभ्र तुषार के शिखर
नव्य चेतना मडित, स्वर्णिम उठे अब निखर।

(६)

प्रथम अहिसक मानव बन तुम आए हिस्र धरा पर,
मनुज बुद्धि को मनुज हृदय के स्पर्शों से सस्कृत कर।
निबल प्रेम को भाव गगन से निर्मम धरती पर धर
जन जीवन के बाहु पाश मे बाँध गए तुम दृढतर।
द्वेष घृणा के कटु प्रहार सह, करुणा दे प्रेमोत्तर
मनुज अह के गत विधान को बदल गए, हिंसा हर।
घृणा द्वेष मानव उर के सस्कार नही है मौलिक,
वे स्थितियो की सीमाएँ है. जन होगे भौगोलिक।
आत्मा का सचरण प्रेम होगा जन मन के अभिमुख,
हृदय ज्योति से मडित होगा हिंसा स्पर्धा का मुख।
लोक अभीप्सा के प्रतीक, नव स्वर्ग मर्त्य के परिणय,
अग्रदूत बन भव्य युग पुरुष के आए तुम निश्चय।
ईश्वर को दे रहा जन्म युग मानव का सघर्षण,
मनुज प्रेम के ईश्वर, तुम यह सत्य कर गए घोषण।

(७)

राजकीय गौरव से जाता आज तुम्हारा अस्थि फूल रथ
श्रद्धा मौन असख्य दृगो से अतिम दर्शन करता जन पथ।
हृदय स्तब्ध रह जाता क्षणभर, सागर को पी गया ताम्र घट,
घट घट मे तुम समा गए, कहता विवेक फिर, हटा तिमिर पट।
बाँध रही गीले आँचल मे गगा पावन फूल ससभ्रम,
भूत भूत में मिले, प्रकृति क्रम रहे तुम्हारे सँग न देह भ्रम।
अमर तुम्हारी आत्मा, चलती कोटि चरण धर जन मे नूतन,
कोटि नयन आभा तोरण बन, मन ही मन करते अभिनंदन।

भूल क्षणिक भस्मात स्वप्न यह, कोटि कोटि उर करते अनुभव,
बापू नित्य रहेगे जीवित भारत के जीवन मे अभिनव!
आत्मज होते महापुरुष वे अगणित तन कर लेते धारण,
मृत्यु द्वार कर पार, पुनर्जीवित हो, भू पर करते विचरण!
राजोचित सम्मान तुम्हे देता, युग सारथि, जन मन का रथ,
नव आत्मा बन उसे चलाओ, ज्योतित हो भावी जीवन पथ!

(८)

लो, झरता रक्त प्रकाश आज नीले बादल के अचल से,
रँग-रँग के उडते सूक्ष्म वाष्प मानस के रश्मि ज्वलित जल से!
प्राणो के सिन्धु-हरित पट से लिपटी हँस सोने की ज्वाला,
स्वप्नो की सुषमा मे सहसा निखरा अवचेतन अँधियाला!

आभा-रेखाओ के उठते गृह, धाम, अट्ट, नव युग तोरण,
रुपहले परो की अप्सरियाँ करती स्मित भाव सुमन वर्षण!
दिव्यात्मा पहुँची स्वर्ग लोक, कर काल अश्व पर आरोहण,
अतर्मन का चैतन्य जगत करता बापू का अभिनदन!

नव सस्कृति की चेतना शिला का न्यास हुआ अब भू-मन मे,
नव लोक-सत्य का विश्व सचरण हुआ प्रतिष्ठित जीवन मे!
गत जाति धर्म के भेद हुए भावी मानवता मे अवलय,
विद्वेष घृणा का सामूहिक नव हुआ अहिंसा से परिचय!
तुम धन्य, युगो के हिसक पशु को बना गए मानव विकसित,
तुम शुभ्र पुरुष बन आए, करने स्वर्ण पुरुष का पथ विस्तृत!

(९)

जय हे,
जय राष्ट्रपिता, जय जय हे!

देव विनय, अविजेय आत्मबल,
शुभ्र वसन, तन काति तपोज्वल,
हृदय क्षमा का सागर निस्तल
शात तेज नव सूर्योदय, जय जय हे!

नव प्रभात लाए तुम जन प्रागण मे
जीवन के अरुणोदय-से हँस मन मे,
अपराजित तुम रहे, अहिसक, रण मे,
सत्य-शिखर के पाथ अभय, जय जय हे!

पशु बल का हर अधकार जन दुस्तर,
मनुष्यता का मुख कर संस्कृत, सुदर,
विचरे स्वर्ग शिखा ले तुम धरती पर
मनुजो के मानव, चिर मगलमय हे!

भारत गीत

जय जन भारत, जन मन अभिमत,
जन गण तत्र विधाता!
गौरव भाल हिमालय उज्वल
हृदय हार गगा जल,
कटि विन्ध्याचल, सिन्धु चरण तल
महिमा शाश्वत गाता!

हरे खेत लहरे नद निर्झर
जीवन शोभा उर्वर,
विश्व कर्म रत कोटि बाहु कर
अगणित पद ध्रुव पथ पर!

प्रथम सभ्यता ज्ञाता, साम ध्वनित गुण गाथा,
जय नव मानवता निर्माता,
सत्य अहिंसा दाता!
जय हे जय हे, जय हे, शाति अधिष्ठाता!

प्रयाण तूर्य बज उठे,
पटह तुमुल गरज उठे,
विशाल सत्य सैन्य, लौह भुज उठे!

शक्ति स्वरूपिणि, बहु बल धारिणि, वदित भारत माता,
धर्म चक्र रक्षित तिरग ध्वज अपराजित फहराता!
जय हे, जय हे, जय हे, अभय, अजय, त्राता!

जागरण

आओ, जन स्वतन्त्र भारत को
जीवन उर्वर भूमि बनाएँ,
उसके अत स्मित आनन से
तम का गुठन भार उठाएँ!
अह, इस सोने की धरती के
खुले आज सदियो के बधन,
मुक्त हुई चेतना धरा की,
युक्त बने अब भू के जनगण!

अगणित जन लहरो से मुखरित
उमड रहा जग जीवन सागर,
इसके छोर हीन पुलिनो मे
आज डुबाएँ युग के अतर!
अश्रु स्वेद से ही सीचेगे
जन क्या जीवन की हरियाली?
सस्कृति के मुकुलित स्वप्नो से
क्या न भरेगे उर की डाली?
क्या इस सीमित धरती ही मे
समा सकेगा मानव का मन,
मौन स्वर्ग शृगो के ऊपर
कौन करेगा तब आरोहण?

धरती ही के कर्दम मे सन
नही फूलता फलता जीवन,
उसे चाहिये मुक्त समीरण,
उसे स्वर्ग किरणो के चुबन!
समाधान भू के जीवन का
भू पर नही,—वृथा सघर्षण,
भू मन से ऊपर उठ कर हम
बना सकेगे भू को शोभन!
मानवता निर्माण करे जन
चरण मात्र हो जिसके भू पर,
हृदय स्वर्ग मे हो लय जिसका,
मन हो स्वर्ग क्षितिज से ऊपर!

यान्त्रिकता के विषम भार से
आज डूबने को जन धरणी,
महा प्रलय के सागर मे क्या
भारत बन न सकेगा तरणी?
अधकार के महा सिन्धु मे
डूबी रह न सकेगी धरती,
किरणे जिसमे अग्नि बीज बो,
यौवन की हरियाली भरती!
मिट्टी ही से सटे रहेगे
क्या भारत भू के भी जनगण,
क्या न चेतना शस्य करेगे
वे समस्त पृथ्वी पर रोपण?

देव, आपका वह अतर्राष्ट्रीय स्वप्न भी
अभी नही साकार हो सका भू पलको पर,
राष्ट्रो के कटु स्वार्थ विभक्त किए है जिसको
वर्ग श्रेणि की दीवारो मे मानवता को
बदी कर चिर अध रूढियो की कारा मे।

भूल गया मानव निज अतर्जग का वैभव,–
जीवन का सौन्दर्य, प्रेम, आनद,-सूक्ष्म से
उतर नही पाते जन भू पर। सृजन चेतना
निष्क्रिय होकर पगु पडी है। धरा स्वर्ग को
स्वप्न-चपल पखो से आज नही छू पाती।
अतर्मन के भूमि कप से ध्वस भ्रश हो
अतर्विश्वासो के, उन्नत आदर्शो के
शिखर सनातन बिखर रहे है मर्त्य धूलि पर।
मानव के नयनो से शाश्वत का प्रसन्न मुख
अस्त हो गया यह वसुधरा निरानद है।

एक सुनहली रेखा है काले बादल मे।–
आज आपका प्रिय भारत स्वाधीन हो गया,
छूट गई दासता, युगो की लौह श्रृखला
टूट गई,–नैराश्य, दैन्य, पीडन से निर्मित।
छिन्न कर गए आप जिसे थे पहिले ही से
निज वज्र स्वर के प्रहार कर, नव जागृति भर।
देव, आपकी स्वर्ण भूमि स्वाधीन हो गई
बापू यद्यपि नही रहे। वह मानवता के
देव शिखर,–अपने शोणित से नव जीवन का
युग प्रभात रँग, लुप्त हो गए!–मुक्त हो गए।
सबोधन करते थे जो गुरुदेव आप को।

रूप मास थे आप, आत्म पजर थे वे दृढ,–
ऊर्ध्व रीढ ही, शातिनिकेतन की पृथ्वी पर,
जिसे चाहते थे दोनो ही स्थापित करना
स्वप्नो से, कर्मो से, जग के रण प्रागण मे,
जन मगल के हित अह, दोनो चले गए तुम।।
मुक्त नही हो सका अभी जन भारत का मन,–
मध्य युगो की क्षुद्र विकृतियाँ शीश उठा कर
नव्य राष्ट्र को बना रही नि शक्त, क्षीण है।
विविध मतो मे, विविध दलो, व्यूहो मे बँटकर

देश आज निर्वीर्य, निबल, निस्तेज हो रहा,
घृणित साम्प्रदायिक बर्बरता से पीडित हो!—
शोणित की नदियाँ बहती अब तपोभूमि मे!

नही झलकता मानव गौरव जन के मुख पर,
रुद्ध हृदय है उनका, मन स्वार्थो मे सीमित,
आत्म त्याग से हीन, अभी वे नही बन सके
महाराष्ट्र के उपादान,—गभीर, धीर, दृढ,
युग प्रबुद्ध, निर्भीक, वज्र सयुक्त परस्पर!

रहने दूँ यह कटु प्रसग.मै नही चाहता
फिर विषण्ण भू-मन की छाया पडे आप पर!
भारत यदि स्वाधीन हो गया तो निश्चय ही
छूट गई भौतिक परवशता आज धरा की,
उसके प्राणो के स्तर अब चैतन्य हो गए!
पशु बल का खल अह मिट गया शात हो गई
अवचेतन की निम्न वृत्तियाँ घृणा द्वेष की
अतर्जग मे,—बाहर अभी भले सक्रिय हो!
मद पड गई कटु स्पर्धा, अधिकार लालसा,
जीवन की आकाक्षा मे सतुलन आ गया,—
दीप्त हो गया तामस का मुख!—

यह भारत की
विश्व विजय है! जयी हुई इस स्वर्ण धरा की
अमर चेतना! सफल हुए उसके तप साधन,
अधकार, मिथ्या, हिंसा के बर्बर स्थल पर
विजयी हुआ प्रकाश,—अहिंसा, आत्म सत्य का!
निश्चय, मानव का भविष्य अब चिर उज्वल है,
असदिग्ध भू का मगल,—निर्भय हो जन मन!

विचरण करते होगे, कवि गुरु, आप अतीन्द्रिय
स्वर्ग लोक मे सप्रति,—देवो से भी सुदर
मानव देव समान, अमर निज यश काया मे!
पारिजात मदार प्रभृति सुमनो की स्वर्गिक
स्वप्निल सौरभ नासा द्वारो से प्रवेश कर
आदोलित रखती होगी प्राणो को नित नव
भावो से, स्वप्नो से, सुर सौन्दर्य बोध से—
नदन का अपलक वसत ज्यो गुजित रहता
मुकुल अधर मधुपायी स्वर्णिम भृग वृंद से!

अथवा बैठे होगे आप रहस्य शिखर पर
अमर लोक के, निभृत मौन मे ध्यानावस्थित,
बहती होगी शाश्वत सुदरता की सरिता
नीचे, स्वर्णिम छाया की सतरँग घाटी मे,
कल कल छल छल गाती अनादिता अमरो की।
वहाँ विजन मे आप दिव्य उन्मेष से स्फुरित
सृष्टि रच रहे होगे अश्रुत अमर स्वरो की,
सूक्ष्म चेतना की छाया शोभा से गुफित,
मौन मग्न हो अतल सृजन आनद सिन्धु मे।

सुर सुदरियाँ आती होगी पास आपके
ध्यान भग करने को, ईर्ष्याकुल निज मन मे,
त्यक्त, उपेक्षित, विस्मृत अपने को अनुभव कर।
क्षण भर को अपलक रह जाते होगे लोचन
सुरागनाओ का सौन्दर्य विलोक अपरिमित।
देह शिखाओ से अनत यौवन की आभा
फूट फूट कर विस्मय से, भरती होगी मन।
मसृण सुरँग छाया-पट से छन तन की शोभा
झलका करती होगी सौष्ठव रेखाओ मे,
स्तिमित शरद घन से कपित विद्युल्लेखा सी,—
झकृत कर अतरतम सत्ता के तारो को।

स्वप्नो के शिखरो-से उठ उठ श्वसित पयोधर
टकराते होगे, आकाक्षा के भुवनो-से,
जिन पर धर कल्पना श्रात शिर कविर्मनीषी
लेते होगे क्षण विराम, फिर स्वप्न मग्न हो।
अप्सरियो की पीन श्रोणि, लावण्य चूड सी,
घनीभूत कर निज उभार मे अमरो का सुख,
मुखरित रहती होगी प्राणो के गुजन से,
त्रिदिव लालसा की काची से अहरह दोलित।
स्वर्गिक शोभा स्तभो-से पेशल जघनो पर
कँपती होगी कौश जलद छाया ओझल हो,
जिसमे दिप दिप तडित्, चकित कर देती होगी,
कवि लोचन, लज्जा लोहित लावण्य राशि से।
क्षमा करे, गुरुदेव, आप जो भू जीवन के
रसोल्लास के प्रति सदैव जीवित जाग्रत् थे,
जो रस सिद्ध कवीश्वर बन विचरे पृथ्वी पर,
आज आप भी वहाँ ऊबते होगे निश्चय

अमरो के उस अनाहत आनद लोक मे, –
और चाहते होगे फिर से मर्त्य धरा पर
आकर, जीवन श्रम के शोभा सुख को वरना।
एक बार आए थे जहाँ स्नेहवश प्रेरित
देवो का ले दिव्य रूप, हे कवियो के कवि,
अमरो की वीणा धर कर में भुवन मोहिनी,
भू जीवन सागर को करने रग उच्छ्वसित,
गीति छद की तीव्र मधुर शत झंकारो से
प्राणो का जल लहरा, ज्वार उठा आशा का,
फेनो के शिखरो पर लोक बसा स्वप्नो का
इदु रश्मि के सम्मोहन से माया दीपित।

आए थे भू रोदन को सगीत बनाने
श्लक्ष्ण मधुर स्वर श्रुतियो के शत आवर्तों से
भावो के छाया पुलिनो को स्वप्न ध्वनित कर।
आए थे तुम जीवन शोभा के शिल्पी बन,
मानव उर की आशाओ, अभिलाषाओ को
सूक्ष्म स्वरो मे पुन ऊर्ध्वमुख झकृत करने,
निज विराट् प्रतिभा की अद्भुत रहस शक्ति से
स्वर्ग धरा के बीच कल्पना का रगस्मित
इद्रधनुष-प्रभ सेतु बाँधने सुर नर मोहन,
अप्सरियो के रणित पदो से मौन गुजरित।

युग द्रष्टा बन आए आप यहाँ, जन गायक,
देश काल का तमस चीर निज सूक्ष्म दृष्टि से,
पैठे जन जीवन के निस्तल अतस्तल में
धरती के अवसाद भरे जनगण को देने
उद्बोधन का गान, जागरण मत्र, मनोबल।
मानव की चेतना रश्मि को अतल गुहा से
बाहर ला, मन में अभिनव आलोक भर गए,
रग रग की आभा पखडियो को बिखरा
नव जीवन सौन्दर्य गए बरसा धरती पर
गीतों से, छदो से, भावो से, स्वप्नो से।

एक बार फिर आओ कवि, इस विधुर देश को
अपनी अमर गिरा से नव आश्वासन देने।
आज और भी लोक प्रतीक्षा यहाँ आप की
वाणी के वर पुत्र, धरा की महा मृत्यु को
अमर स्वरो से जगा, विश्व को दो जीवन वर।

आओ हे, फिर अपने भारत के मानस से
मध्य युगो का घृणित जाल जबाल हटा कर
ज्वलित स्वर्ण दर्पण सी उसकी चेतनता को
लाओ फिर जग के समक्ष, जिसमे नव जीवन
नव मानवपन का उज्वल मुख प्रतिबिम्बित हो।
आज धरा के अधकार मे उसका जगमग
काचन दो फिर से उडेल, जीवन प्रभात मे,
रँग दो जन मन के नभ को नव अरुणोदय से,
स्नान करे फिर रक्तोज्वल भू स्वर्ग रुधिर मे।

आओ हे कवि, आओ, फिर निज अमृत स्पर्श से
आदर्शों की छायाओ को नव जीवन दो—
मर्त्य लोक के जड प्रागण मे जीवन चेतन
स्वर्ग स्वप्न विचरे, ज्वाला के पग धर नूतन,
नव आशा, अभिलाषा से दीपित दिगत कर।
आओ तुम, जीवन वसत के अभिनव पिक बन
धरा चेतना हँसे सास्कृतिक स्वर्णोदय मे।

आज सूक्ष्म दर्शन मे जगता मनोनयन मे
भारत का आनन हिरण्य स्मित,—जीवन मन के
तम से पर, आदित्य वर्ण उसकी आत्मा का,—
भूत शिखर के चरम चूड सा, शत सूर्योज्वल।
ह्रास नाश से रहित अमर चेतना शक्तियाँ
वह अतर्हित किए हृदय मे, सूक्ष्म, सूक्ष्मतम,
गुह्य, रहस, वर्णनातीत,—जग के मगल हित।

उसके अंतरतम के ज्योतिर्मय शतदल पर
स्वय खडे है, सत्य चरण धर, अविनाशी प्रभु
तेजोमय जाज्वल्य हिरण्य शैल-से अद्भुत।
पुरुष पुरातन, पुरुष सनातन, विश्व मोहिनी
निज वशी के सृजन नाद से जगा अचित् से
स्वर्गिक पावक के असख्य चैतन्य लोक स्मित,
बरसा रहे अनंत शून्य मे स्वर लय नर्तित
कोटि सूक्ष्म सौन्दर्य, प्रेम, आनद के भुवन।
प्राणो की आशाऽकाक्षाओ से चिर उर्वर
जीवन मन के स्वर्ग, तृप्ति के सुख मे नीरव,
रूप गध रस स्पर्श शब्द के बिम्ब जगत बहु
निज असीम वैभव मे अक्षय—दमक रहे जो
सप्त चेतनाओ के रग स्तरो मे छहरे।

सयम तप के स्वर्ण शुभ्र नीहार से जडित
भारत के चेतना श्रृग पर, ध्यान मौन रव,
परम पुरुष वह नृत्य कर रहे, सृजन हर्ष की
विस्मृति मे लय।—जिनके अति चेतन प्रकाश से
शोभा सुषमा की सहस्र दीपित मरीचियाँ,
आभा की आभाएँ, छाया की छायाएँ,
दिशा काल मे फूट रही, शत सुरधनुओ के
रगो की आलोक क्राति से दृष्टि चकित कर।
झर झर पडते सतत सत्य शिव सुन्दर उनसे
महाकाल औ' महा दिशा को चेतना से
मुग्ध चमत्कृत कर,—रोमाचित दिव्य विभव से।

आज धरा के भूतो के इस तमस क्षेत्र मे
जीवन तृष्णा, प्राण क्षुधा औ' मनोदाह से
क्षुब्ध, दग्ध, जर्जर जनगण चीत्कार कर रहे,
घृणा द्वेष स्पर्धा से पीडित, वन पशुओ-से।
बिखर गया मानव का मन अणुवीक्षण पथ से
बर्हिजगत मे, स्थूल भूत विज्ञान से भ्रमित।
अतर्दृष्टि विहीन मनुज निज अतर्जग के
वैभव से अनभिज्ञ, हृदय से शून्य, रिक्त है।
आज आत्मघाती वह, अपने ही हाथो से
मनुज जाति का महामरण निर्माण कर रहा
भौतिक रासायनिक चमत्कारो से अगणित।
तर्क नियत्रित यात्रिकता के पद प्रहार से
ध्वस्त हो रहे अतर्मन के सूक्ष्म सगठन,
सत्यो के, आदर्शो के, भावो, स्वप्नो के,—
श्रद्धा विश्वासो के, सयम तप साधन के,—
मनुष्यत्व निर्भर है जिन ज्योति स्तभो पर।

ऐसे मरणोन्मुख जग को, कहता मेरा मन,
और कौन दे सकता नव जीवन, आश्वासन,
शाति, तृप्ति,—निज अतर्जीवन के प्रवाह से
भारत के अतिरिक्त आज? जो शाश्वत अक्षर
अतर ऐश्वर्यों का ईश्वर है वसुधा पर।
कहता मेरा मन, भारत ही के मगल में
भू मगल, जन मगल, देवो का मगल है,—
देव, आप आशीर्वाद दे जन भारत को।

मर्यादा पुरुषोत्तम के प्रति

जय पुरुषोत्तम। विश्व सचरण मे धारण कर
विश्व श्याम तन, तुमने मन मे किया अवतरण
प्रथम बार त्रेता युग मे, मानव सस्कृति का
जो प्रोज्वल निर्माण काल था, जब जन का मन
बहिर्जगत् मे बिखरा था इंद्रिय द्वारो से।

जीवन के दश मुख तम से आदोलित अतर
प्राणो के आवेगो की झझा से ताडित
प्रलय सिन्धु सा गर्जन करता था दिगत मे
क्रुद्ध लालसा के आवर्तो मे आलोडित।
विकट अराजकता मे पशु आकाक्षाओ की
सभव था तब नही शात स्थिर जीवन यापन,—
वन जीवी, पशु जीवी मनुज, मनोजीवी तब
नही बना था निद्रा भय मैथुनाहार की
देह वृत्तियो से चालित वह जतु मात्र था।
प्रथम सचरण था वह मन का भू जीवन पर
नही नियत्रण था उसका वह असगठित था।

उतरे थे तुम रजत पुरुष तब अतर्नभ से
सदाचार की दिव्य शुभ्र आभा से मडित,
शरद नीलिमा-से नव, शशि किरणो से प्रहसित।
जीवन के तम को, छाया सा, सहज प्रणत कर
मानव के पद तल पर, तुमने तन के ऊपर
मन को किया प्रतिष्ठित था, जन मगल के हित।
क्षुब्ध उच्छ्वसित प्राणो के उन्मद सागर को
शासित कर, बाँधा मर्यादा सेतु चिरतन,
मर्यादा पुरुषोत्तम। बहिर्मुखी जीवन के
दश शीशो को मनोभूमि पर किया विलुठित,
रश्मि शुभ्र चेतना तीर से, चीर भू-तमस,
वैदेही सी मनश्चेतना को विदेह कर।

प्रथम विजय थी वह जीवन पर मानव मन की,
तरुण अरुण-से विहँसे थे तुम मनश्चूड पर
सूर्य मनस् के स्वर्ण बिम्ब। जब अजित वासना
हुई सयमित सस्कृत नव जीवन मानो मे
ऊर्ध्व प्रस्फुटित, विकसित हो, मनुजोचित बन कर।

पूर्ण किया वह वृत्त कृष्ण युग मे था तुमने
प्राणो मे जब हुए अवतरित तुम द्वापर मे,
मर्यादा के पुलिनो मे जीवन शोभा का
दिव्य ज्वार लहरा,—अतर के रस से झकृत
जीवन का आनद, प्रेम, सौन्दर्य बोध दे!
वह विकास परिणति का स्वर्णिम वैभव युग था!

एक बार फिर उतरो, अतर्मन के सारथि,
भू की आकाक्षा के नव विकसित शतदल पर,
आज मनोजीवन, प्राणो के जीवन के स्तर
जीर्ण, विरस, विश्री लगते, सौन्दर्य हीन हो!
विगत चेतना—कभी विशाल शुभ्र सरसिज सी,—
मूँद रही अब मन के दल युग की सध्या मे,—
स्रोत हीन पुलिनो सी नीरस रीति नीतियाँ
सीच नही पाती जीवन की उर्वरता को!

आज और भी नीचे उतरो प्राणो से तुम,
जीवन के तम के नीचे उज्वल प्रकाश की
स्वर्ण शुभ्र दो रेख खीच नव प्रतिपत् शशि सी!
विहँस उठे स्वप्नो से उपचेतन, अवचेतन,
धरा स्वर्ग बँध जाएँ एक क्षितिज के भीतर,—
एक नव्य आध्यात्मिकता आलोक ज्वार सी
मज्जित कर दे जीवन मन की सीमाओ को,
सीमा रहित चेतना की नव शोभा मे उठ!
बहे एक अविराम धार मे स्वर्ग चेतना
देह प्राण मन के भुवनो मे सजीवन भर,
मनुज और भी निज अतरतम मे प्रवेश कर
ऊर्ध्व, गहन, व्यापक बन निकले अधिक बहिर्मुख!

धरा चेतना की काले तम की पखडियाँ
फुल्ल स्वर्ण लोहित रजित हो युग प्रभात मे
नव जीवन सौन्दर्य पद्म मे विहँस उठे फिर
अतर मे भर अतिचेतन पावक पराग कण,—
प्राणों की सौरभ - विद्युत् से हर्षित कर दिक्!
हृदय कमल मे भू के फिर उतरो पुरुषोत्तम!

श्री अरविन्द के प्रति

(अ)

आज जब कि नीरस असार विश्री लगता जग-जीवन,
जीवन का सौन्दर्य फूल सा मुरझा रहा सुरभि-क्षण,
बिखर गया जब सतरँग बुद्बुद उर का स्वप्न अचानक,
जीवन सघर्षण से लोहित, गए मर्त्य के पग थक।
जीर्ण युगो की नैतिकता जब करती जन मन शोषण,
क्षुद्र अह की दासी बन, स्वार्थों को किए समर्पण,
अर्तावश्वासो के उन्नत शृग रहे ढह भू पर
सूख गया चिर स्रोत प्रेरणा का, उर हुआ अनुर्वर।

आज जब कि मन प्राण इद्रियो के क्षत विक्षत अँग-अँग,
पुनः चाहती वे गति लय मे बँधना देवो के सँग
ध्वस भ्रश हो गए विगत आदर्शों के जब खँडहर
कुचल रहा मानव आत्मा को जड भौतिक आडबर।-
आज जब कि बुझ गई चेतना अधकार से उर भर,
चूर्ण हो गया हृदय सभ्यता का, नीरव सस्कृति स्वर।

(ब)

तुम्हे पुकार रहा तब अतर, भावी मानव ईश्वर,
नव्य चेतना, नव मन, नव जीवन का भू को दो वर।
स्वर्ण चेतना द्रवित जलद तुम, रजत तड़ित् रुचि स्पदित,
रत्नच्छाय सजल, रहस्यप्रभ, शत शत सुरधनु मडित,
दिव्य प्रेरणाओ की जगमग किरणो से चिर गुफित,
मनस् पख मे ज्वलित अमर पिण्डो को किए तिरोहित।

स्वर्मानस से उठ, उतरो, अब, जन मन के शिखरो पर,
सूक्ष्म चेतना वाष्प कणो में लिपटा मानव अतर।
नव जीवन शोभा मे बरसो, करो धरा मुख सस्मित,
अमृत चेतना के प्लावन मे मर्त्य शोक कर मज्जित।
हे अतिचेतन, नव मानस वसनो मे हो कर भूषित
नव आदर्श बनो तुम, जिसमे नव जीवन हो बिम्बित।
जीवन मन से ऊपर तुम नव जीवन मे, नव मन मे
मानवता को बाँधो अभिनव ऐक्य मुक्ति बधन मे।

रँग दो

रँग दो हे, रँग दो आकुल मन !
अमर रूप स्रष्टा, किरणो की
तूली से रँग दो उडते घन !

शशि से रँग छाया प्रभ अतर,
क्षणप्रभा से इच्छा के पर,
बरसा दो उर के अबर मे
शोभा का नीरव सम्मोहन !

आशा का हो इद्र चाप वर
इद्र चाप मे स्वप्नो के शर,
विरह अश्रु का भाव जलद हो,
रग रहस्यो के हो गोपन !

रँग दो नव शोभा से लोचन,
प्रीति मधुरिमा से स्वर्णिम मन,
गीत चुबनो से मदिराधर
स्वर्ग रुधिर से रँगो कर-चरण !

उलट रश्मियो के सतरँग घट
रँग दो मेरा प्राणो का पट,
रँग रँग की पखडियो मे हँस
फूट पडे अतर का यौवन !

रँग जाए जो मेरा अतर
गोचर तुम बन सको अगोचर,
नव्य चेतना के पावक कण
मै कर सकूँ धरा पर वितरण !

युग विषाद

गरज रहा उर व्यथा भार से
गीत बन रहा रोदन,
आज तुम्हारी करुणा के हित
कातर धरती का मन।
मौन प्रार्थना करता अतर,
मर्म कामना भरती मर्मर,
युग सध्या जीवन विषाद से
आहत प्राण समीरण।
जलता मन मेघो का सा घर
स्वप्नो की ज्वाला लिपटा कर
दूर, क्षितिज के पार दीखती
रेख क्षितिज की नूतन।
बढते अगणित चरण निरतर
दुर्दम आकाक्षा के पग धर,
खुलता बाहर तम कपाट,
भीतर प्रकाश का तोरण।

श्रात रक्त से लथपथ जन मन,
नव प्रभात का यह स्वर्णिम क्षण,
युग युग का खँडहर जग करता
अभिनव शोभा धारण।

युग छाया

दारुण मेघ घटा घहराई,
युग सध्या गहराई।
आज धरा प्रागण पर भीषण
झूल रही परछाँई।

२०१

तुम विनाश के रथ पर आओ,
गत युग का हत शव ले जाओ,
गीध टूटते, श्वान भूँकते,
रोते शिवा बिदाई।

मनुज रक्त से पंकिल युग पथ
पूर्ण हुए सब दैत्य मनोरथ,
स्वर्ग रुधिर से अभिषेकित अब
नव युग की अरुणाई।

नाचेगा जब शोणित चेतन,
बदलेगा तब युग निरुद्ध मन,
कट मर जाएँगे युग दानव,
सुर नर होंगे भाई।

ज्ञात मर्त्य की मुझे विवशता,
जन्म ले रही नव मानवता,
स्वप्न द्वार फिर खोल उषा ने
स्वर्ण विभा बरसाई।

युग संघर्ष

गीत क्रांत रे इस युग के कवि का मन,
नृत्य मत्त उसके छंदो का यौवन।
वह हँस हँस कर चीर रहा तम के घन
मुरली का मधुरव भर करता गर्जन।
नवल चेतना से उसका उर ज्योतित,
मानव के अंतर वैभव से विस्मित।
युग विग्रह मे उसे दीखती बिम्बित
विगत युगो की रुद्ध चेतना सीमित।

उसका जाग्रत् मन करता दिग् घोषण,
अंतर्मानव का यह युग संघर्षण।
शोषक है इस ओर, उधर है शोषित,
बाह्य चेतना के प्रतीक जो निश्चित।

धनिको श्रमिको का स्वरूप धर बाहर
ह्रास शक्तियाँ आत्म नाश हित तत्पर,
क्षोभ भरे युग शिखर उभड़ते दुर्धर
टकराता भू ज्वार क्षुब्ध भव सागर!

नृत्य कर रही क्राति रक्त लहरो पर,
घृणा द्वेष की उठी आँधियाँ दुस्तर!
कौन रोक सकता उद्वेग प्रलयकर,
मर्त्यों की परवशता, मिटते कट मर!
महा सृजन की तडित् टूटती दु सह
अधकार भू का विदीर्ण कर दुर्वह!
युग युग की जडता कँप उठती थर थर
आज स्वप्न प्रज्वलित चकित रे अतर!

नव्य चेतना का विरोध करते जन,
यह जडत्व भू मन का अध पुरातन,
आज मनोजग मे जन के भय सशय
द्वेष प्रेम का देता पहिला परिचय!
सभव है, नभ मे छाएँ करुणा घन
अतर मन मे भर जाए युग क्रदन,
बरसाए उर भू पर आभा के कण
द्रोही मानव के प्रति विद्रोही बन!

ध्यान मौन आराधक, साधक, गायक,
सोच मग्न रे मनोजगत के नायक,
आदोलित मानवता के अभिभावक,
विश्व क्राति यह आपद् काल भयानक!

रक्त पूत अब धरा . शात सघर्षण,
धनिक श्रमिक मृत तर्क वाद निश्चेतन!
सौम्य शिष्ट मानवता अतर्लोचन
सृजन-मौन करती धरती पर विचरण!

उज्वल मस्तक पर मुक्ता-से श्रम कण,
शात धीर मन से करती वह चिन्तन,
भू जीवन निर्माण निरत, नव चेतन
साधारण रे बास वसन, मित भोजन!

विद्युत् अणु उसके सम्मुख अब नत फन,
वसुधा पर बन स्वर्ग सृजन के साधन,
आज चेतना का गत वृत्त समापन
नूतन का अभिवादन करता कवि मन!

नव मानव

ओ अग्नि चक्षु, अभिनव मानव!
सपर्कज रे तेरा पावक
चेतना शिखा मे उठा धधक,
इसको मन नही सकेगा ढँक!
यह ज्वाला जग जीवन दायक,—
स्वप्नो की शोभा से अपलक
मानस भू सुलग रही धक् धक्!
ओ नवल युगागम के अनुभव!
नव ऊषा सा स्वर्णाभ वरण
वह शक्ति उतरती ज्योति चरण,
उर का प्रकाश नव कर वितरण!
नव शोणित से उर्वर भू मन,
शोभा से विस्मित कवि लोचन,
अब धरा चेतना नव चेतन!
ओ अतर्ज्ञान नयन वैभव!
भू तम का सागर रहा सिहर
जन मन पुलिनो पर बिखर बिखर,
उठ रश्मि शिखर नाचती लहर!
तिरते स्वप्नो के पोत अमर,
देवो का स्वर्णिम वैभव हर,
नव मानवीय द्रव्यो से भर!
लो, गूँज रहा अबर मे रव,—
मै लोक पुरुष, मै युग मानव,
मै ही सोया भू पर नीरव,
मेरे ही भू रज के अवयव!
अपने प्रकाश से कर उद्भव,
मै ही धारण करता हूँ भव,
नव स्वप्नो का रच मनोविभव
जय त्रिनयन, युग सभव मानव!

गीत विहग

मैं नव मानवता का सदेश सुनाता,
स्वाधीन लोक की गौरव गाथा गाता,
मैं मन क्षितिज के पार मौन शाश्वत की
प्रज्वलित भूमि का ज्योतिवाह् बन आता।
युग के खँडहर पर डाल सुनहली छाया,
मैं नव प्रभात के नभ मे उठ मुसकाता,
जीवन पतझर मे जन मन की डालो पर
मैं नव मधु के ज्वाला पल्लव सुलगाता।

आवेशो से उद्वेलित जन सागर मे
नव स्वप्नो के शिखरो का ज्वार उठाता,
जब शिशिर क्रात, वन-रोदन करता भू मन,
युग पिक बन प्राणो का पावक बरसाता।
मिट्टी के पैरो से भव - क्लात जनो को
स्वप्नो के चरणो पर चलना सिखलाता,
तापो की छाया से कलुषित अतर को
उन्मुक्त प्रकृति का शोभा वक्ष दिखाता।

जीवन मन के भेदो मे सोई मति को
मैं आत्म एकता मे अनिमेष जगाता,
तम पगु, बहिर्मुख जग मे बिखरे मन को
मैं अतर सोपानो पर ऊर्ध्व चढाता।
आदर्शों के मरु जल से दग्ध मृगो को
मैं स्वर्गंगा स्मित अतर्पथ बतलाता,
जन जन को नव मानवता मे जाग्रत् कर
मैं मुक्त कठ जीवन रण शख बजाता।

मैं गीत विहग, निज मर्त्य नीड से उड कर
चेतना गगन मे मन के पर फैलाता,
मैं अपने अतर का प्रकाश बरसा कर
जीवन के तम को स्वर्णिम कर नहलाता।
मैं स्वर्दूतो को बाँध मनोभावो मे
जन जीवन का नित उनको अग बनाता,
मैं मानव प्रेमी, नव भू स्वर्ग बसा कर
जन धरणी पर देवो का विभव लुटाता।

म जन्म मरण के द्वारो से बाहर कर
मानव को उसका अमरासन दे जाता,
मै दिव्य चेतना का सदेश सुनाता,
स्वाधीन भूमि का नव्य जागरण गाता!

जगत घन

जब जब घिरे जगत घन मुझ पर
करूँ तुम्हारा चिन्तन,
ढँक जाए जब अतर्नभ मै
करूँ प्रतीक्षा गोपन!

जब तम की छाया गहराए,
मानस मे सशय लहराए,
युग विषाद का भार वहन कर
तुम्हे पुकारूँ प्रतिक्षण!

तुम तम का आवरण उठाओ,
करुणा कोमल मुख दिखलाओ,
मेरे भू मन की छाया को
निज उर मे कर धारण!

तुम्हे करूँ जन मन दुख अर्पण,
आत्मदान दे भरूँ धरा व्रण,
भू विषाद गर्जन से, उर मे
बरसे नव चेतन कण!

जो बाहर जीवन सघर्षण,
जो भीतर कटु पीडा का क्षण,
वह तुममे सतुलन ग्रहण कर
बने उन्नयन नूतन!

अंतर्व्यथा

ज्योति द्रवित हो, हे घन!
छाया सशय का तम,
तृष्णा भरती गर्जन,
ममता विद्युत् नर्तन
करती उर मे प्रतिक्षण!

करुणा धारा मे झर
स्नेह अश्रु बरसा कर,
व्यथा भार उर का हर
शात करो आकुल मन!

तुम अतर के क्रदन
अकथनीय चिर गोपन,
मद्र स्तनित भर चेतन
करो अनिष्ट निवारण!

घट घट वासी जलधर,
तुमको ज्ञात निरतर
अतर का दुख नि स्वर,
करता जो नव सर्जन!

मन से ऊपर उठ कर,
विचर ऊर्ध्व शिखरो पर
स्वर्गिक आभा से भर
उतरो बन नव जीवन!

खोलो उर वातायन
आएँ स्वर्ग किरण छन,
भू स्वप्नो का नूतन
रचे इद्रधनु मोहन!

आगमन

मौन गुजरण जगता मन मे,
मर्मर धूपछॉह के वन मे!

आज भर गया प्राण समीरण
स्वर्ग मधुरिमा से रे नूतन,
दिखलाता जीवन प्रभात मुख
खोल क्षितिज उर का वातायन
लोक जागरण के इस क्षण मे!

मन के भीतर का मन गाता,
स्वर्ग धरा मे नही समाता,
स्वप्नो का आवेश ज्वार उठ
विश्व सत्य के पुलिन डुबाता,–
लहरा शाश्वत के जीवन मे!

आज आ रही लहर लहर पर
डूब रहे युग युग के अतर,
यह अतर्मन का आदोलन,
असुर जूझते, जीतते अमर,—
धरा चेतना के प्रागण मे!
कहाँ बढाते भीत जन चरण?
हुआ समापन बाहर का रण!
स्वर्ग चेतना के शोणित से
लथपथ आज मर्त्य भू का मन,—
मरते जड, जग नव चेतन मे!

मौन सृजन

मौन आज क्यो वीणा के स्वर?
इस नीरवता मे तुम गोपन
कौन रच रहे नूतन गायन?
स्तब्ध हृदय कपन मे जगते
आशा भय, सशय जय थर थर!
स्वप्नो से मुँद जाते लोचन,
आकुल रहस प्रभावो से मन,
प्राणो मे कैसा आकर्षण
बहता जाने सुख से मथर!
तुम शाश्वत शोभा के मधुवन,
शिशिर निदाघ जहाँ रहते क्षण,
आज हृदय के चिर यौवन बन
भरते प्रिय, अतर्मुख मर्मर!
रगो मे गाता कुसुमाकर,
सौरभ मे मलयानिल नि स्वर,
नील मौन मे गाता अबर,
ध्यान लीन सुख स्पर्श पा अमर!
शोभा मे गाते लोचन लय,
प्राण प्रीति के मधु मे तन्मय,
रस के बस, उल्लास मे अभय
गाता उर भीतर ही भीतर!
मौन आज क्या वीणा के स्वर?

युग विराग

भू की ममता मिटती जाती
मेघो की छाया सी चचल,
सुख सपने सौरभ-से उडते
झरते उर के रगो के दल।

पुँछती स्मृति पट की रेखाएँ
धुलते जाते सुख दुख के क्षण,
चेतना समीरण सी बहती
बिखरा ओसो के सचित कण।

वह रही राग मे नही जलन
कुछ बदल गया उर के भीतर,
खो गया कामना का घनत्व
रीते घट सा अब जग बाहर।

यह रे विराग की विजन भूमि
मन प्राणो के साधन के स्तर,
तुम खोल स्वप्न का रहस द्वार,–
जो आते भीतर आज उतर,–

हँस उठता उर का अधकार
नव जीवन शोभा मे दीपित,
भू पुलिन डुबाता स्वर्ग ज्वार,
रहता कुछ भी न अचिर, सीमित।

फिर प्रीति विचरती धरती पर
झरती पग पग पर सुदरता,
बधन बन जाते प्रेम मुक्ति
देव प्रिय होती नश्वरता।

मेघो के पर्वत

यह मेघो की चल भूमि घोर
बह रहे जहाँ उनचास पवन,
तुम बसा सकोगे यहाँ कभी
क्या मानव का गृह, मनोभवन?

जन जन का मन करता गर्जन
बरसाती चितवन विद्युत् कण,
टकराते दुर्दम फेन शिखर
सागर सा उफनाता भू मन!

यह विश्व शक्तियो की क्रीडा
गत छायाएँ बनती चेतन,
जन मन विमूढ जिनका वाहक
बढता जाता युग सघर्षण!

पर्वत पर पर्वत खडे भीम,
अडते तृष्णा, अज्ञान, अह,
उन्मथित धरा-चेतना सिन्धु
आदोलित अवचेतन का तम!

मन स्वर्ग - शिखर पर मॅडराता
उर मे गहराता, नव जीवन,
वह अतर आभा से स्वर्णिम
झरता भू पर, स्वप्नो का घन!

मनोमय

तुम हँसते हँसते घृणा बन गए मन मे,
जन मगल हित हे!
अब काटो जग का अधकार
भू के पापो का विषम भार,
मेटो मानव का अहकार
चिर सचित तुम्हे समर्पित हे,
युग परिवर्तन मे!

तुम तपते तपते द्वेष बन गए मन मे,
जन मगल हित हे!
अब करो जीर्ण से सघर्षण,
फिर हरो धरा मन के बधन,
युग की जडता हो नव चेतन
गति दो नूतन को इच्छित हे,
जग जीवन रण मे!

तुम सहते सहते रोष बन गए मन मे,
जन मगल हित हे!
फिर मृत्यु भीत जन हो निर्भय,
मन प्राण ले सके नव निर्णय,
उर करे नही तुम पर सशय
तुम घट घट वासी परिचित हे,
चिर जन्म मरण मे!

फिर प्रेम, बनो तुम न्याय, क्षमा मन मन मे,
जन मगल हित हे!
मानव अतर हो भू विस्तृत
नव मानवता मे भव विकसित,
जन मन हो नव चेतना ग्रथित
जीवन शोभा हो कुसुमित हे
फिर दिशि क्षण मे!
तुम देव, बनो चिर दया, प्रेम जन जन मे,
जग मगल हित हे!

जीवन उत्सव

अरुणोदय नव, लोकोदय नव!
मगल ध्वनि हर्षित जन मदिर
गूँज रहा अबर मे मधुरव!
स्वर्णोदय नव, सर्वोदय नव!

रजत झाँझ-से बजते तरुदल
स्वर्णिम निर्झर झरते कल कल,
मुखर तुम्हारे पग पायल
यह भू जीवन शोभा का उत्सव!

स्वप्न ज्वाल धरणी का अचल,
अधकार उर रहा आज जल,
स्वर्ण द्रवित हो रही चेतना
विजय दीप्त अब विश्व पराभव!

हरित पीत छायाएँ सुदर
लोट रही धरती की रज पर,
स्वर्णारुण आभाएँ झर झर
लुटा रही अबर का वैभव।

ईंगुर रँग के खिलते पल्लव
उर मे भर स्वप्नो का मार्दव,
रक्तोज्वल यौवन प्ररोह मे
फूट रहा वसुधा का शैशव।

यह जीवन मगल का गायन,
युग सघर्षण निरत पुरातन
जन युग के कटु हाहारव मे
मानव युग का होता उद्भव।

काव्य चेतना

तुम रजत वाष्प के अबर से
बरसाती शुभ्र सुनहली झर,
शोभा की लपटो मे लिपटा
मेघो का माया कल्पित घर।

सुर प्रेरित ज्वालाएँ कँपती
फहरा आभाएँ आभा पर,
शत रोहितप्रभ छायाओ से
भर जाता तडित् चकित अतर।

सुषमा की पखुडियाँ खुलती
फैला रहस्य स्पर्शो के दल,
भावो के मोहित पुलिनो पर
छाया प्रकाश बहता प्रतिपल।

सतरगे शिखरो पर उठ गिर
उडता शशि सूरज सा उज्वल,
चेतना ज्वाल सी चद्र विभा
चू पडती प्राणो मे शीतल।

जलते तारो सी टूट रही
अब अमर प्रेरणाएँ भास्वर,
स्वप्नो की गुजित कलिकाएँ
खिल पडती मानस मे नि स्वर।

तुम रहस द्वार से मुझे कहाँ
गीते, ले जाती हो गोपन,
शोभा मे जाता डूब हृदय
पा स्पर्श तुम्हारा सुर-चेतन।

सम्मोहन

स्वप्नो की शोभा बरस रही
रिम झिम झिम अबर से गोपन,
शत धूप छाँह सुरधनु के रँग
जमते अतर पट पर प्रतिक्षण।
तुम स्वर्ग चाँदनी सी नीरव
चेतनामयी आती भू पर,
प्राणो का सागर चद्र ज्वलित
लहराता इच्छा मे नूतन।

जीवन की हरियाली हँसती,
कँपती छाया पर छायाएँ,
रँग रँग की आभाएँ बखेर
सजती आशा नव सम्मोहन।
सुख दुख मे भर नव स्वर सगति
कल्पना सृष्टि रचती अभिनव,
कवि उर स्वप्नो के वैभव से
करता जन भू का अभिवादन।

हृदय चेतना

तुम चद्र ज्वाल सी सुलग रही
जीवन की लहरो मे चचल,
स्वर्गिक स्पर्शो से अत स्मित
कँप कँप उठता चल मानस जल।

तुम स्वप्न द्वार पट हटा रहस,
लिपटाती शोभा मे दिशि पल,
निज स्वर्ण मास का वक्ष खोल
सुषमा के मुकुलो का कोमल।

तुम मौन शिखर से बरसाती
लावण्य प्रीति उल्लास नवल
मिट्टी के तद्रिल रोओं मे
प्राणो का पावक भर विह्वल।
अब मथित विश्व विरोधो मे
जन जीवन वारिधि क्षुब्ध विकल,
तुम चूम घृणा अधरो का विष
तम का मुख करती स्वर्णोज्वल।

निर्माण काल

लो, आज झरोखो से उड कर
फिर देवदूत आते भीतर,
सुरधनुओ के स्मित पख खोल
नव स्वप्न उतरते जन भू पर।

रँग रँग के छाया पखो सी
आभा पखडियाँ पडती झर,
फिर मनोलहरियो पर तिरती
बिम्बित सुर अप्सरियाँ नि स्वर।

यह रे भू का निर्माण काल
हँसता नव जीवन अरुणोदय,
ले रही जन्म नव मानवता
अब खर्व मनुजता होती क्षय।

धू धू कर जलता जीर्ण जगत
लिपटा ज्वाला मे जन अतर,
तम के पर्वत पर टूट रही
विद्युत् प्रपात सी ज्योति प्रखर।

सघर्षण पर कटु सघर्षण
यह दैविक भौतिक भू कपन,
उद्वेलित जन मन का समुद्र
युग रक्त जिह्व करता नर्तन।

ढह रहे अध विश्वास शृग,
युग बदल रहा, यह ब्रह्म अहन्!
फिर शिखर चिरतन रहे निखर
यह विश्व सचरण रे नूतन!

बज रहे घटियो - से तरुदल
छवि ज्वाल पल्लवित जग जीवन,
नव ज्योति चरण धर रहा सृजन
फिर पुष्प वृष्टि करते सुरगण!

अब स्वर्ण द्रवित रे अतर्नभ
झरते नीरव शोभा निर्झर,
अवतरित हो रही सूक्ष्म शक्ति
फिर मौन गुजरित उर अबर!

बँधता प्रकाश तम - बाहो मे
सुर मानव तन करते धारण,
फिर लोक चेतना रग भूमि
भू स्वर्ग कर रहे परिरभण!

अनुभूति

तुम आती हो,
नव अगो का
शाश्वत मधु विभव लुटाती हो!

बजते नि स्वर नूपुर छम छम,
साँसो मे थमता स्पदन क्रम,
तुम आती हो,
अंतस्तल मे
शोभा ज्वाला लिपटाती हो!

अपलक रह जाते मनोनयन,
कह पाते मर्म कथा न वयन,
तुम आती हो,
तद्रिल मन मे
स्वप्नो के मुकुल खिलाती हो!

अभिमान अश्रु बनता झर झर
अवसाद मुखर रस का निर्झर,
तुम आती हो,
आनद शिखर,
प्राणो मे ज्वार उठाती हो।

स्वर्णिम प्रकाश मे गलता तम,
स्वर्गिक प्रतीति मे ढलता भ्रम,
तुम आती हो,
जीवन पथ पर,
सौन्दर्य रहस बरसाती हो।

जगता छाया वन मे मर्मर,
कँप उठती रुद्ध स्पृहा थर थर,
तुम आती हो
उर तत्री मे
स्वर मधुर, व्यथा भर जाती हो।

आवाहन

तुम स्वर्ण चेतना पावक से
फिर गढो आज जग का जीवन,
मधु के फूलो की ज्वाला से
रँग धरणी के उर का यौवन।

आदर्शों का जलता प्रकाश
तुम दो उडेल भू ऑचल मे,
स्वप्नो की लपटो मे लिपटा
मन के अँधियाले को पल मे।

जलता तरु के तम मे पलाश
जीवन की इच्छा से लोहित,
जग की डाली कर दो शाश्वत
शोभा के शोणित से मुकुलित।

कामना वह्नि से दहक रहा
भूधर सा भू का वक्षस्थल,
तुम अमृत प्रीति निर्झर - से फिर
उतरो, हो ताप अखिल शीतल।

ममता विद्युत् सी मचल रही
छाया - वाष्पो का अतस्तल,
तुम शुभ्र किरण - से फूट, उसे
रँग दो स्वर्गिक स्मिति से सतजल।

युग युग के जितने तर्कवाद
मानव ममत्व से वे पीडित,
तुम आओ, सीमा हो विलीन
फिर मनुज अह हो प्रीति द्रवित।

स्वर्ग विभा

कैसी दी स्वर्ग विभा उडेल
तुमने भू मानस मे मोहन,
मै देख रहा, मिट्टी का तम
ज्वाला बन धधक् रहा प्रतिक्षण।

नव स्वप्नो की लपटे उठती
शोभा की आभाएँ बखेर,
शत रँग की छायाएँ कँपती
उपचेतन मन का गहन घेर।

ज्यो उषा प्रज्वलित सागर मे
डूबता अस्तमित शशि मडल
चेतना क्षितिज पर आभा स्मित
भूगोल उठ रहा स्वर्णोज्वल।

लिपटी फूलो मे रग ज्वाल,
गूँजते मधुप, गाती कोयल,
हरिताभ हर्ष से भरी धरा
लहरो के रश्मि ज्वलित अचल।

भौतिक द्रव्यो की घनता मे
चेतना भार लगता दुर्वह,
भू जीवन का आलोक ज्वार
युग मन के पुलिनो को दुसह।

चेतना पिड रे भू गोलक
युग युग के मानस से आवृत,
फिर तप्त स्वर्ण सा निखर रहा
वह मानवीय बन, सुर दीपित।

नव पावक

अब नव ऊषा के पावक का
पल्लवित हो रहा भू - जीवन,
शोभा की कलियो का वैभव
विस्मित करता मन के लोचन।

मै रे केवल उन्मन मधुकर
भरता शोभा स्वप्निल गुजन,
कल आएँगे उर तरुण भृग
स्वर्णिम मधुकण करने वितरण।

यह स्वर्ण चेतना की ज्वाला
मानव अत पुर की गोपन
जो कूद कूद नव सन्तति मे
बढती जाएगी नव चेतन।

वह पूर्ण मानवो का मानव,
जो जन मे धरता क्रमिक चरण,
वह मर्त्य भूमि को स्वर्ग बना
जन भू को कर लेगा धारण।

अब धरा हृदय - शोणित से रँग
नव युग प्रभात श्री मे मज्जित,
अब देव नरो की छाया मे
भू पर विचरेगे अत स्मित।

शोभा क्षण

फूलो से लद गए दिशा क्षण
भरता अबर गुजन,
पुलको मे हँस उठा सहज - मन
निर्जर करते गायन।

अवचेतन मे लीन पुरातन,
स्वप्न वृष्टि अब करता नूतन,
तन्मय हुआ अह युग युग का
बाँहो मे बँध चेतन।

यह क्या भावी का सवेदन
या देवो का मौन निमत्रण?
देह प्राण के पुलिन डुबाकर
बहता अतर यौवन!
धरा शिखर का रे यह मधुवन
भू मन अहरह करता क्रदन—
मृण्मय पलको पर फिर उतरे
यह शाश्वत शोभा क्षण!

आओ हे, यह निभृत प्रीति मग,
धरो ध्वनित पग-चिह्नो पर पग,
अश्रुत पद चापो से गुजित
आज धरणि का प्रागण!
रजत घटियाँ बजती छन छन,
स्वर्णिम पायल झकृत झन झन,
स्वप्न मास के इन चरणो पर
करो प्राण मन अर्पण!

पद गति से शोभा पड़ती झर,
पग छवि उठती भावो से भर,
सृजन नृत्य रत रे कवि अतर
सुन नूपुर ध्वनि गोपन!

युग दान

जीवन - बाँहो मे बाँध सकूँ
सौन्दर्य तुम्हारा नित नूतन,
जन मन मे मैं भर सकूँ अमर
सगीत तुम्हारा सुर मादन!

आनद तुम्हारा बरस सके
भव व्यथा क्लात उर के भीतर,
जग जीवन का बन सके अग
देवत्व तुम्हारा लोकोत्तर!
करुणा धारा से मानव का
भू निर्मम अतर हो उर्वर,
सयुक्त कर्म जग जीवन के
तुमको अर्पित हो उठ ऊपर!

अब मनुष्यत्व से मनोमुक्त
देवत्व रहा रे शनैं निखर,
भू मन का गोपन स्पृहा स्वर्ग
फिर विचरण करने को भू पर।

यह अधकार का घोर प्रहर
हो रहा हृदय चेतना द्रवित,
फिर मानवीय बन जाग रही
जड भूत शक्तियाँ अभिशापित।

तरुओ के सिर पर पुष्प मुकुट
ज्यो गध पवन उर मे मादन,
जीवन से मन से फूट रहे
तुम नव श्री शोभा मे चेतन।

जीवन कोपल

क्या एक रात ही मे सहसा
ये हरित शुभ्र कोपल फूटे?
क्या एक प्रात मे स्वप्न निद्र
जीवन तरु के बधन टूटे?
पत्रो की मर्मर मे झकृत
अब सुर वीणाओ के प्रिय स्वर,
शोभा की अरुण शिखाओ से
प्रज्वलित धरा के दिक् प्रातर।
यह विश्व क्राति मानव उर मे
सौन्दर्य ज्वार उठता नूतन,
मन प्राण देह की इच्छाएँ
करती शिखरो पर आरोहण।

तुम क्या रटते थे, जाति, धर्म,
हाँ, वर्ग युद्ध, जन आदोलन,
क्या जपते थे, आदर्श नीति—
वे तर्क वाद अब किसे स्मरण।
गोपन सा कुछ हो रहा आज
जन मन के भीतर परिवर्तन,
अतर्चेतन तारुण्य फूट
गढता अब नव जग का जीवन।

यह मानवीय रे सत्य अखिल
आधार चेतना, कला कुशल,
वह सृजन प्राण होती विकसित
जड से जीवन मन मे अविकल।
वह विस्मृत कडी जगत क्रम की
जिससे समृद्धि परिणति सभव,
फिर आने को ऐश्वर्य ज्वार
अब लोक चेतना मे अभिनव।

जीवन दान

मै मुट्ठी भर भर बाँट सकूँ
जीवन के स्वर्णिम पावक कण,
वह जीवन जिसमे ज्वाला हो
मासल आकाक्षा हो मादन।
वह जीवन जिसमे शोभा हो,—
शोभा सजीव, चचल, दीपित,
वह जीवन जिसको मर्म प्रीति
सुख दुख से रखती हो मुखरित।

जिसमे अतर का हो प्रकाश
जिसमे समवेत हृदय स्पदन,
मै उस जीवन को वाणी दूँ
जो नव आदर्शों का दर्पण।
जीवन रहस्यमय, भर देता
जो स्वप्नो से तारापथ मन,
जीवन रक्तोज्वल करता जो
नित रुधिर शिराओ मे गायन।

इसमे न तनिक सशय मुझको
यह जन - भू जीवन का प्रागण,
जिसमे प्रकाश की छायाएँ
विचरण करती क्षण-ध्वनित चरण।
मे स्वर्गिक शिखरो का वैभव
हूँ लुटा रहा जन धरणी पर
जिसमे जग जीवन के प्ररोह
नव मानवता मे उठे निखर।

देवो को पहना रहा पुन
मै स्वप्न मास के मर्त्य वसन,
मानव आनन से उठा रहा
अमरत्व ढँके जो अवगुठन।

संवेदन

छाया सीता सी आ चुपके
जाने, तुम क्या कहती नि स्वर,
सुन पडती परिचित चरण चाप
कँप उठता स्वप्न ध्वनित अतर।

खिल पडते उर मे ज्योति चिह्न
नीरव शोभा लाली से भर,
आनद मधुरिमा से गुजित
आभा पखडियो-से झर झर।

अतर पा प्रीति परस अदृश्य
खोजता तुम्हे बाहर विस्मित,
युग युग का उर का व्यथा भार
गा उठता शाश्वत-क्षण पुलकित।

स्मृतियो के स्वर्गिक सवेदन
लहराते मानस मे गोपन,
मै सुन सुन कर मोहित पग ध्वनि
बढता जाता निर्दिष्ट चरण।

तुम सूक्ष्म स्वप्न देही बन कर
आती अतर पथ से प्रतिक्षण
मै रहस निमत्रण पा तुमसे
अभिनव जग मे करता विचरण।

है ज्ञात मुझे, तुम भू घट से
फिर फूट रही करुणा धारा,
तुम मातृ मूर्ति, चिर मगलमयि,
शोभा चेतन हो पुन धरा।

वैदेही

स्वप्नो के मासल शिखरो मे
मैने निज छिपा लिया आनन,
यह शोभा का प्रिय वक्षस्थल
जिसका सगीत हृदय स्पदन।
चेतना स्वय ज्यो स्वर्ण गौर
कोमल उर-कलियो मे पुजित,
उल्लास अमर साँसो मे बह
रखता इनको आभा दोलित।
इनमे अतरतम सुषमा के
खिलते नित रत्न प्रभा पल्लव,
नव ऊषा का स्वर्गिक पावक
जलता इच्छाओ मे अभिनव।
यह रुद्ध बद्ध लालसा नही
जो नारी प्रतिमा मे मूर्तित,
यह देवो के उर मे बसती
श्रद्धा प्रतीति से अभिषेकित।
जन इसे कला मदिर मे नित
करते अतर्मन मे स्थापित,
शिव सुदर सत्य चयन कर चिर
प्रिय चरणो पर करते अर्पित।
शत इगित बनते मुखर नृत्य,
पलके रुक, छवि करती अकित,
जीवन के सुख दुख इसे देख
स्वर गीतो मे होते झकृत।

शरदागम

आज प्राण चिर चचल।
नवल शरद ऋतु, ओस धुला मुख,
धूप हँसी सी निश्छल।
गौर वक्ष शोभा सी उज्वल
दिन की कोमल आभा मासल,
स्वप्नो की स्मृतियाँ उकसाती
पुलकित कर अतस्तल।

खिले अधखिले फूलो के अँग,
मर्म स्पृहा-से खुले मुक्त रँग,
प्राणो को निज स्पर्श ज्वाल से
दीपित करते प्रतिपल।

खोल निसर्ग रहा निज अतर,
मधुर सतुलन मे खिल सुदर,
फैलाती कामना प्रकृति की
रँग रँग के चचल दल।

कँपता तरुओ का तम मर्मर,
कँपता मारुत लालस मथर,
कँपती स्रस्त वस्त्र सी छाया,
कँपता नव दूर्वादल।

जी करता शोभाऽतप मे मिल,
विचरूँ छाया वन मे झिलमिल,
जाने किस पथ से निसर्ग मे
खो, हो जाऊँ ओझल।

•

कौन भेजता मौन निमत्रण
मुझे निभृत देने हृदयासन,
स्वप्नो के पट मे लपेट उर,
तन मन करता शीतल।

आज मिलन को उर अति विह्वल
मानस मे स्वप्नो का बादल,
झर झर पडता, किन स्मृतियो मे
सुलगा चिर विरहानल।

तुम आओगी, कहता है मन
खिलता ही क्यो ऋतु का आँगन?
निखर मेघ से शरद रेख सी
बरसाओगी मगल!

शरद चेतना

तुम फिर स्वप्नो का पट बुनती
ले जीवन से छाया प्रकाश,
फिर गीत स्वरो का जाल गूँथ
उलझाती सुख दुख अश्रु हास।

अब बिखर गया पावस का घन,
ठडा निदाघ का खर अँगार,
अब हँसती उज्वल धुली धूप
उजियाली मे आया निखार!

ऋतु आर्द्र जलद के वस्त्र फेक
अलसाई अगो मे कोमल,
फिर गूढ प्रकृति का मौन स्पर्श
अतर को छू करता शीतल!

फूलो के रगो की ज्वाला,
तरु वन का छायातप कपित,
तुममे भू का कलरव कूजन
सौरभ गुजन मर्मर गुफित!

तुम स्वप्नो का नीरव पावक
सुलगाती प्राणो मे पुलकित,
तुममे रहस्यमय मौन भरा
तुम स्निग्ध शाति सी विरह द्रवित!

ज्यो बादल के अचल से छन
आभा रह जाती क्षण-छाया,
तुम मन के गुठन मे जगती
लिपटा इच्छा, ममता, माया!

तुम मुझे डुबा लो अपने मे
या मुझमे जाओ स्वय डूब,
तुम फूटो मेरा मोह चीर
ज्यो कढती भू को चीर दूब!

जगता, लो, तरुण प्ररोह एक
अब फाड धरित्री का अचल,
कँपता अगो मे हरित रुधिर,—
उडने को पख खोल विह्वल!

तुम खोल देह मन के बधन
चेतना बन गई फिर उज्वल,
उमगा प्राणो का मेघ, लिपट,
निखरी तुम,—अब बादल ओझल!

शरद श्री

सौम्य शरद श्री का यह आँगन
जीवन आतप लगता कोमल,
हरियाली के अचल मे बँध
धरती का तम जलता शीतल।
निखर उठा प्राणो का यौवन
फूल मास के खिले चपल अँग,
नीले पीले लाल पाटली
हँसते आकाक्षाओ के रँग।

मिट्टी की सौधी सुगध से
मिली सूक्ष्म सुमनो की सौरभ,
रूप स्पर्श रस शब्द गध की
हरित धरा पर झुका नील नभ।
क्या समीर ने लिपट, विटप को
किया पल्लवो मे रोमाचित?
अँगडाई ले, बॉह खोलना
सिखलाया डालो को कपित।

क्या किरणो ने चूम, खिलाए
रग भरे फूलो के आनन?
सृजन प्राण रे स्पर्श प्रेम का
सच है, जीवन करता धारण।
मूल भूत-कामना एक ज्यो
पत्रो मे कँप उठती मर्मर,
प्रिय निसर्ग ने अपने जग मे
खोल दिया फिर मेरा अतर।

एक शाति सी, पावनता सी
विचर रही धरती पर नि स्वर,
छायातप मे, तृण-अचल में,
ज्वाल वसन कुसुमो के तन पर।
रग प्राण रे प्रकृति लोक यह
यहॉ नही दुख दैन्य अमगल,
यहॉ खुला श्री शोभा का उर,
यहॉ कामना का मुख उज्वल।

ममता

अब शरद मेघ सा मेरा मन
हो गया अश्रु झर से निर्मल,
तुम कँपती चपला सी भीतर
शोभातप मे लुक छिप प्रतिपल!
विद्युत् दीपित करती घन को
वह नही ज्वाल मे उठता जल,
वह उसके अतर की आभा
तुम मेरी हृदय शिखा उज्वल!

यह प्रीति द्रवित हलका बादल
मेरे ममत्व की छाया-भर,
तुम तडिल्लता सी खिल पडती
जिसमे बन जीवन सत्य अमर!
इस विरल जलद पट से छन कर
तुम बरसाती ऐश्वर्य ज्वार,
छाया प्रकाश के पटल खोल
भावो की गहराई निखार!

तुम विद्युत् प्रभ कर पलक पात
करती नीरव मिथ सभाषण,
वाष्पो के आवृत मानस मे
अकित कर भेद रहस गोपन!
यह मौन मद्र गर्जन भरता
युग युग की प्रिय स्मृतियाँ जगती,
शोभा की, स्वप्नो की, रति की—
आशा अभिलाषाएँ कँपती!

चाँदनी चार दिन रहती है,
तुम क्षण भर मे होती ओझल,
तुम मुझे चाँदनी से प्रिय हो
चपले, मै ममता का बादल!

फूल ज्वाल

फूलो की ज्वालाएँ भरती
मेरे अतर मे उद्दीपन,

प्रेयसि की मुख छबि मेघ-मुक्त
शशि रेखा सी उगती मन मे,
नीरव नभ मे विद्युत् घन सी
एकाकी स्मृति जगती क्षण मे।
ज्योत्स्ना मे झझा से कपित
हलकी फुहार सी पडती झर
वह भीगी स्मृति, मानस तट पर
छाया लहरी सी बिखर बिखर।

सुख दुख की लपटो मे लिपटी
भू के अगारो पर पग धर,
वह बढती स्वप्नो के पथ पर
शत अग्नि परीक्षाएँ दे कर।

अब प्रेमी मन वह नही रहा
ध्रुव प्रेम रह गया है केवल,
प्रेयसि स्मृति भी वह नही रही
भावना रह गई विरहोज्वल।
बाहर जो कुछ भी हो बदला
मन का पट बदल गया भीतर,
विकसित होती चेतना, उधर
परिणत जग जीवन का सगर।

नमन

नमन तुम्हे करता मन।
हे जग के जीवन के जीवन,
प्रीति-मौन प्रति उर स्पन्दन मे
स्मरण तुम्हे करता मन।
अश्रु सजल अब मेरा आनन
तुहिन तरल वारिज के लोचन,
यह मानस स्थिति, स्मृति से पावन
करता तुम्हे समर्पण।

तुम अतर के पथ से आओ,
चिर श्रद्धा के रथ से आओ,
जीवन अरुणोदय सँग लाओ,
नव प्रभात, युग नूतन।

बहे रुधिर मे स्वर्गिक पावक,
स्वप्न पख लोचन हो अपलक,
रँग दे श्री शोभा का जावक,
जीवन के पग प्रतिक्षण!

आज व्यक्ति के उतरो भीतर,
निखिल विश्व मे विचरो बाहर,
कर्म वचन मन जन के उठ कर
बने युक्त आराधन!

असफल हो जब श्रात मनोबल
आवेशो से अतर विह्वल,
तुम करुणा, कर से छू उज्वल
जडता कर दो चेतन!

मानव ईश्वर

नव जीवन शोभा के ईश्वर
स्वर्गिक करुणा के वर,
स्वर्ण शुभ्र चेतना मुकुल तुम
खिलते उर मे सुदर!
शात अभय हो जाता अतर
ध्यान तुम्हारा स्नेह मौन धर,
श्रद्धा पावन हो उठता मन
हर्ष प्रणत चरणो पर!

सो जाता ममता का मर्मर
खुलता अतरतम का अबर,
दिव्य दूत-से पख खोल स्मित
स्वप्न उतरते नि स्वर!
अवचनीय आकाक्षा के स्वर
तन्मय करते मुझे निरतर,
ज्योति शक्ति के नीरव निर्झर
मानस मे पडते झर!
जगती मानव मे देवोत्तर
मिट्टी की प्रतिमाएँ नश्वर,
युग प्रभात छवि स्नात निखरते
भू जनपद पुर प्रातर!

अभिलाषा

एक कली यह मेरे पास।
तुम चाहो, इसको अपनालो,
कर दो इसका पूर्ण विकास।

तुम इसमे स्वर्गिक रँग भर दो,
निज सौरभ मे मज्जित कर दो,
उर को अक्षय मधु का वर दो,
अधरो पर धर शाश्वत हास।

तुम्ही मूल इसके बन जाओ,
मधुकर बन इसके ढिग गाओ,
प्राण वृत पर इसे झुलाओ,
स्वर्ग किरण बन, करो विलास।

देखे एक तुम्हारा यह मुख,
अपलक ऊपर को हो अभिमुख,
दुख मे भी माने असीम सुख
कॉटो मे बिखरा उल्लास।

मलयानिल दे भले निमत्रण,
पख खोल उडना चाहे मन,
तोडे यह न प्रणय का बधन,
करे हृदय डाली पर वास।

नयन रहे स्वप्नो से रजित,
विरह अश्रु हिम से पलके स्मित,
उर असीम शोभा से विस्मित
छोडे जब यह अतिम श्वास।

यह हँसते हँसते झर जाए
जग मे निज सौरभ भर जाए,
भू रज को उर्वर कर जाए
नव बीजो से, हो न विनाश।

एक कली जो मेरे पास
वह अभिलाष।

वसंत

फिर वसत की आत्मा आई,
मिटे प्रतीक्षा के दुर्वह क्षण,
अभिवादन करता भू का मन।

फूलो मे मृदु अँग लपेट कर,
किरणो के सौ रँग समेट कर,
कूजन गुजन से जग को भर
फिर वसत की आत्मा आई,
हरित शुभ्र स्वर मे भर मर्मर,
अरुण पीत लौ मे कँप कँप कर।

दीप्त दिशाओ के वातायन,
प्रीति साँस सा मलय समीरण,
चचल नील, नवल भू यौवन,
फिर वसत की आत्मा आई,
आम्र मौर मे गूँथ स्वर्ण कण,
किशुक को कर ज्वाल वसन तन।

सिहरी मासल वन श्री थर थर
अगो पर काँपा छायाबर,
सहसा पुष्प शिखर उठे उभर,
फिर वसत की आत्मा आई,
पल्लव क्षितिज बना परिरभण,
शोभा करती आत्म समर्पण।

देख चुका मन कितने पतझर,
ग्रीष्म शरद, हिम पावस सुदर,
ऋतुओ की ऋतु यह कुसुमाकर,
फिर वसत की आत्मा आई,
विरह मिलन के खुले प्रीति व्रण,
स्वप्नो से शोभा प्ररोह मन।

सब युग सब ऋतु थी आयोजन,
तुम आओगी वे थी साधन,
तुम्हे भूल कटते ही कब क्षण?
फिर वसत की आत्मा आई,
देव, हुआ फिर नवल युगागम,
स्वर्ग धरा का सफल समागम।

फूलों का देश

(नव वसत सूचक वाद्य सगीत)

पुरुष स्वर

यह फूलो का देश, ज्योति मानसँ का रूपक,
जहाँ विचरते अतर्द्रष्टा कलाकार कवि
निभृत कल्पना पथ से नित, भावोन्मेषित हो।
यहाँ प्रेरणाओ की स्मित अप्सरियाँ उडकर
बरसाती आभा पखडियाँ शत रगो की,
स्वप्नो से गुजरित यहाँ स्वर्णिम भृगो की
रजत घटियाँ बज उठती हर्षातिरेक से—
देवो का सगीत अमर वाहित कर भूपर।
यहाँ काँपती-छायाएँ, शोभा वसनो सी,
गोपन मर्मर ध्वनि भरती मानस श्रवणो मे,—
भावी की अश्रुत चापो सी आकृति धरती।

स्त्री स्वर

यहाँ प्राण पुलिनो को भावो से स्पदित कर
जीवन की आकाक्षा बहती कल कल ध्वनि मे,
प्रीति श्वास सी समुच्छ्वसित रहती मलयानिल
नाम हीन सौरभ से आकुल कर अतर को।
यह मोहित अभिसार भूमि है गधर्वों की,
जहाँ दूर वास्तविक जगत के कोलाहल से
स्वर्णिम द्वाभा मे रचती है सृजन कल्पना
सूक्ष्म विश्व मानव भावी का सतरँग कल्पित।
यहाँ गूँजता रहता है सगीत अहर्निशि,
भाव प्रवण मानस द्रव्यों से प्रवहमान हो।

(वाद्य सगीत : समवेत गान)

यह फूलो का देश।
यहाँ निरतर जीवन शोभा
सृजती नव नव वेश।

यहाँ लोटते इद्रचाप शत,
हँसते अपलक स्वप्न मनोरथ,
यहाँ झूलता रश्मि दोल मे
मानस का उन्मेष।
स्वर्णिम निर्झर झरते कल कल,
भरते प्राणो मे स्वर कोयल,
सुदरता को देती स्वर्गिक—
प्रीति, हर्ष - सदेश।
यहाँ गूँजते अहरह दिशिपल
बरसा करता जीवन मगल,
सृजन चेतना की यह स्वप्निल
लीला भूमि अशेष।

(तानपूरे के स्वर)

पुरुष स्वर

यहाँ विजन छाया वन मे रहता एकाकी
एक स्वप्न द्रष्टा कवि, तरुण अरुण सा सुदर,
लता प्रता से मडित कुसुमित पर्ण कुटी मे।
जीवन का सघर्ष, करुण क्रदन, चीत्कारे
उसके भाव जगत को छू कर मर्म गीत मे
परिणत हो जाती, युग जीवन के स्वप्नो की
शोभा से वेष्टित हो, नव सतुलन ग्रहण कर।
खोजा करता वह विनाश के महाध्वस मे
नवल सृजन की स्वर सगति, उडते मेघो के
त्रस्त जाल मे घिरती तिरती शशि रेखा सी।
भावोद्वेलित वक्ष, खडा तृण कक्ष द्वार पर
सोच रहा वह स्वगत, गध गुजित मधुकर सा—

(स्वप्न वाहक वाद्य संगीत)

कवि

यह छाया का देश, कल्पना का क्रीडा स्थल,
वस्तु जगत अपना घनत्व खोकर इस जग मे
सूक्ष्म रूप धारण कर लेता, भाव द्रवित हो।
जीवन के सघर्षों की प्रतिध्वनियाँ उठ कर
यहाँ बदलती रहती उर सगीत मे विकल।
इस मानस भू पर नि स्वर चलते नित सुरगण
स्वप्नों के धर चरण चिह्न आशाऽकाक्षा स्मित।

यहाँ बिछाती शत शत रगो की ज्वालाएँ
अपलक इद्रजाल शोभा का, जन मन मोहन
सुन पडती अप्सरियो की पद चाप रुपहली,
कँपती-छायाओ के पुलकित दूर्वाचल मे—
आँखमिचौनी खेला करती जो जीवन से!

बडी बडी चट्टान यहाँ धरती की आदिम
चुप्पी सी दम साधे नीरव चिन्तन करती!
अर्धरात्रि मे झिल्ली तरु कोटर मे झन झन
स्वर भर, सूनापन विदीर्ण करती वन भू का,—
घोर गुह्य आकाक्षा सी जग निश्चेतन की!
यहाँ भयानकता सुदरता प्रीति पाश मे
बँधकर क्षण उपहास नियति का करती निर्मम!

(गंभीर प्रसन्न वाद्य संगीत)

कवि

शात, सौम्य, सोई वन श्री अब जाग रही है
नव प्रभात के स्पर्शो से स्वर्णिम चेतन हो,
बरस रहा नीडो से कलरव सृष्टि गान सा,
सिहर रहे पत्ते थर् थर् सुख से विभोर हो!
गध पवन मे धरती भीनी सॅस ले रही,
जाग रही वन छायाएँ अँगडाई भरती!
तरुण मधुप षट्पद से हटा पँखुरियो के पट
अर्धस्मित कलियो के मृदु मुख करते चुबन!
यह प्रभात भी सस्कृति का आश्चर्य है महत्,
मौन प्रार्थना सा, पवित्र आशीर्वाद सा!—
विस्मित कर देता जो भू मानस पलको को,
दिव्य स्वप्न सा, अमर स्वर्ग सदेश सा उतर!
धरती का जीवन सहसा निज ज्योति केन्द्र से
पुन युक्त होकर, हो उठता पूर्ण काम है!
यह फूलो का देश आज फिर धन्य हो उठा
वाहित करता जो धरती की ओर निरतर
देवो का ऐश्वर्य अतुल,—शोभा सुदरता,
ज्योति प्रीति आनद अलौकिक स्वर्ग लोक का!
जाग रही है सुप्त प्रेरणाएँ मानस मे,
यह अतर्नभ का प्रभात है जन मगलकर!

तरु पत्रो के अतराल से छन नव किरणे
लोट रही भू रज पर, ज्योति प्ररोहो सी हँस।

(हर्ष वाद्य संगीत)

युग प्रभात यह एक वृत्त हो रहा समापन
धरा चेतना मे सस्कृति का आज पुरातन।

नव युग की प्राणो की आशा अभिलाषाएँ
मर्म मधुर सगीत लहरियो मे मुखरित हो
गूँज रही है, छाया वन के नव मुकुलो को
घेर चतुर्दिक्। सद्य स्फुट कुसुमो के मुख पर
विहँस रहे है स्वर्णिम ओसो के मुक्ता कण
स्वप्नो की पद चापो से कँप उठता भूतल।

देख रहा मै मनश्चक्षु से, ताल मे ध्वनित,
अगणित निर्भय चरण क्षितिज की ओर बढ रहे।

(वाद्य सगीत: दूर से आता हुआ नर नारियों का समवेत गान)

युग प्रभात,
रक्त स्नात, युग प्रभात।
अधकार गया हार
मानस का हटा भार,
मुक्त पथ, मुक्त द्वार,—
गई रात।

सागर मे बाँध सेतु
अबर मे उडा केतु
मानव की विजय हेतु
बढो तात, बढो भ्रात।

पर्वत के गिरे शिखर,
मरुथल हो नव उर्वर,
विघ्नो पर, रहो निडर
करो घात, करो घात।
करो घात।

(नर-नारियों का प्रवेश)

स्त्री स्वर

कौन कौन तुम, अरुण, वसत, मदन-से सुदर
पत्रो के प्रच्छाय नीड मे यहाँ छिपे हो
पक्षी-से एकाकी? नगरो से, वासो से

दूर, सभ्यता के केन्द्रो से विरत, विमुख हो
युग जीवन सघर्षण से, जन आकर्षण से?

कवि

अरुण वसत मदन सा। पक्षी सा एकाकी?
कलाकार हूँ मै, पर जीवन सघर्षण से
विरत नही हूँ। —देखो, मेरी स्वप्न निमीलित
आँखों मे भावी का स्वर्णिम बिम्ब पडा है।

पुरुष स्वर

(साश्चर्य) भावी का प्रतिबिम्ब?

कवि

स्वर्ग की वेणी से मै
इन्द्र धनुष को छीन, धरा के तिमिर पाश मे
उसे गूँथ जाऊँगा,—देवो की विभूति से
मनुष्यत्व का पद्म खिला जीवन कर्दम मे।
ताराओ के छायातप से रँग रँग कर मै
जन भू की उपचेतन रज की पखडियो को
अत सुरभित कर जाऊँगा, नदन वन के
फूलो की शाश्वत स्मिति भर मृण्मय अधरो मे,—
मै नव मानवता की प्रतिमा यहाँ गढ रहा
अतर्मन के सूक्ष्म द्रव्य से।

जनगण

हः हः हः ह!।

कवि

मै विराट् जीवन का प्रतिनिधि हूँ। मै वन के
मर्मर से, युग के जनरव से चिर परिचित हूँ।
भौरों का मधु गुजन, कोयल का कल कूजन
मेरे ही स्वर है। स्वर्णातप मेरी स्मिति है।
मेरे उर के स्वप्न तितलियो की फुहार-से
रँग रँग की शोभा बखेरते जन मानस मे।
ऊषा, ज्योत्स्ना, ओस और तारे मेरा ही
चिर सदेश वहन करते। पर्वत निर्झर - से
मेरे गायन फूट, दग्ध युग मन के मरु मे
प्राणों का कलरव, जीवन हरियाली भरते।

धरा स्वर्ग को स्वप्न सेतु मे बॉध सुनहले
मै सोपान बना जाऊँगा सुर नर मोहन!

प्रथम स्वर

खूब अहता का ऐश्वर्य मिला है तुमको!

द्वितीय स्वर

आत्म वचना का उन्माद पिए हो मादक!

प्रथम स्वर

कलाकार हो, तभी हवा मे महल बनाते!
रिक्त स्वर्ग मे रहते आत्म पलायन के हो!

कवि

तुम जो अस्त्रो शस्त्रों से सज्जित सेना ले,
विजय ध्वजा ऊँची कर, चलते सख्याओ मे,
तुम भी मेरा कार्य कर रहे,–धरा धूलि मे
जो जीवन तृष्णा, भुजग सी शत फन फैला
लोट रही है नीचे, मै ऊपर से उसकी
शोभा रेखाएँ अकित करता तटस्थ हो,
व्यापक युग पट मे सँवार कर उसकी घातक
विष की फुकारो को पीकर, मर्माहत हो,
हृदय दाह मे जलता प्रतिपल, मै उस पर हूँ
बरसाता चेतना अमृत निज, तिक्त घृणा को
मधुर प्रीति मे, कटु तमिस्र को उर प्रकाश मे
आत्म विद्रवित कर! केवल स्वर शब्दो की ही
रिक्त साधना मात्र नही होती युग कवि की,
उसे साम्य, सगति, सार्थकता भरनी होती
जीवन विश्रृखलता मे सौंदर्य खोज कर,
मानस कमल खिला कर्दम मे!

प्रथम स्वर

बहुत हुआ बस!
रहने दो यह वाक् चपलता! वह शोभा की
सीमा लाँघ चुकी है! मृगतृष्णा के पूजक,
तुम अपने को जीवन का प्रतिनिधि बतलाते?
और विधाता बन बैठे हो मनुज नियति के!

द्वितीय स्वर

हम है भावी के निर्माता, मानवता के
जीवन शिल्पी, भू के जनगण, जो युग युग की
लौह शृखला तोड, वज्र सगठित हुए हैं,
बधन मुक्त, नई जन मानवता के रक्षक।
हम वन पर्वत, सागर मरुथल मे मानव की
विजय ध्वजा फहराएँगे। इस वन प्रातर मे
जहाँ बनैले पशुओ की है गुहा, वहाँ हम
सेना शिविर बनाएँगे निज, जहाँ खगो के
नीड मात्र है, वहाँ जनो के धाम बनेगे।
हमको सामूहिक जीवन की आवश्यकता
समतल मनुज बनाने को है बाध्य कर रही।
तभी तुम्हारे-से आदिम जन, युग जीवन के
नव स्पर्शों से विकसित, सस्कृत हो पाएँगे।

कवि

नि सशय, आदिम हूँ मै।

कुछ स्वर

(दर्प से) हम चिर नवीन है।

स्त्री स्वर

नही, नही,—परिहास कर रहे हो तुम हम से।
तुम कवि हो, तुम कलाकार हो, तुम युग युग के
अभिशापित, शोषित जनगण के साथ रहोगे।
युग सकट मे उद्बोधन के गान छेड कर
तुम जनता को साहस दोगे, सबल दोगे।

कवि

अगर साथ रहने देगे जनगण के नायक।

स्त्री स्वर

देखो, तुम देखो इन हड्डी के ढाँचो को—

एक स्वर

वज्र बन चुके है दधीचियो के ये पजर।

स्त्री स्वर

देखो, नग्न क्षुधित मनुष्यता की छलना को
रक्त क्षीण निष्ठुर विषण्णता को जीवन की।

वर्तमान का भीषण उत्पीडन है इनको
निर्ममता से कुचल रहा। यदि एक बार तुम
आँख खोल कर इन्हे देख लोगे जो सचमुच,
करुणा से विगलित उर हो, मर्माहत हो तुम
सहम उठोगे, हे फूलो के जग के स्वामी।

एक स्वर

और क्रोध से पागल हो जाओगे शायद
आदर्शों के मूर्ति पूजको के इन कुत्सित
दुष्कर्मों को देख, घृणा से आँख फेर कर।
मृत प्रतिमाओ के पूजक जीवित जनता के
पूजक कभी नही हो सकते—जीवन-मृत जो।

कवि

देख रहा हूँ, मै लज्जा से गडा जा रहा।
कब से मेरे मन की आँखो के सम्मुख उठ
नाच रही है छायाएँ सक्राति काल की।
भूखो के ककाल खडे चीत्कार कर रहे,
अवचेतन के प्रेत भर रहे अट्टहास है।
क्रूर, ह्रास युग के लोभी असुरो से पीडित
मानवता कातर वन - रोदन छोड, एक हो
आज क्रुद्ध ललकार रही, हुकार भर रही।

(तुमुल वाद्य सगीत : समवेत गान)

भूत के ककाल है हम,
क्रुद्ध रुद्ध कराल है हम।
कठ से लिपटे त्रिशूली के
भयकर व्याल है हम।
मनुजता के प्रेत है हम
आज सब समवेत है हम,
बीज है हम, खेत है हम,
शक्ति अमिट विशाल है हम।
खड्ग है हम, ढाल है हम,
ज्वार से उत्ताल है हम,
रुद्र की दृग ज्वाल है हम
धरणि की जयमाल है हम।

कुछ स्वर

मिथ्या है, सब मिथ्या जग में आज चतुर्दिक्,
केवल सत्य मनुज के उर की घोर घृणा है।
मिथ्या नैतिकता, मिथ्या आदर्श हैं सकल,
जन पीडन शोषण के हित जो उद्भूत होते।
केवल सत्य विषमताएँ है, प्रतिहिसा है,
केवल सत्य अतृप्त पिपासा है, तृष्णा है।
उबल रहा है द्वेष गरल से जनगण का मन,
भभक रहा है क्रोध अग्नि से मानव अतर,
फटने को है आज विकट ज्वाला का पर्वत,
थूकेगा वह, उगलेगा दाहक लपटो को,
और जला देगा छल झूठ कपट के जग को,
मानव उर की निर्ममता को, नृशसता को,—
भस्मसात् कर देगा जग के दुस्वप्नो को।

(विवर्तन संगीत)

कुछ स्वर

छायाएँ है, छायाएँ आदर्श भयानक,
छायाओ को कुचलेगे हम, आभासो को
रौदेगे पाँवो के नीचे, युग युग के मृत
सस्कारो को खोद, मिटा देगे जन मन से।

(उत्तेजना द्योतक सगीत)

कवि

इसीलिए तुमने सम्मानित जीवन श्रम को
छोड, अहेरी जीवन फिर स्वीकार किया है।—
देख रहा हूँ, आज सगठित मन युग युग का
सामूहिक जन बर्बरता में बिखर रहा है।
आदर्शों के स्वर्ग विचुबी शिखर टूट कर
भू लुठित हो रहे विवर्तन की आँधी मे,
और नाश के घने अँधेरे के उतने ही
गहरे गर्तों मे गिर, धरती के अतर को
क्षत विक्षत कर रहे, चूर्ण हो।

जीवन की वे
पावन, मोहित, निभृत घाटियाँ, जो, चिर करुणा
ममता के स्वर्णिम प्रकाश से भरी हुई थी,
जहाँ सभ्यता का क्रदन न पहुँच पाया था,—

पद मर्दित हो रही आज वे अविश्वास के
प्रतिहिंसा के दैत्यो के निर्मम चरणो से।
मानव की निर्दयता उनके भीतर घुस कर
बोल रही तोपो के मुँह से विकट नाद कर।
भले बुरे, काले सफेद औ' सत्य झूठ के
सभी मान इस सतत बढ रही अँधियाली के
प्रलय ज्वार मे डूब रहे है किमाकार हो।

(विप्लव सूचक वाद्य संगीत)

एकाकार हुए जाते है पाप पुण्य सब,—
मानव के अतरव्यापी घन अधकार से
घृणा, द्वेष, अन्याय कपट, छल स्पर्धा हिसा
आज पुकार रहे चिल्लाकर—बाह्य सगठन
मात्र सत्य है। बाह्य सगठन चरम लक्ष्य है।
बाह्य आसुरी एका ही सब कुछ है जग मे,
अतर्जगत, हृदय का एका,—केवल भ्रम है।
अतर्मुख सगठन पलायन, बहलावा है।
सस्कृति? वर्गों के हित साधन की दासी है।
युग अपनी मुट्ठी मे अणु सहार लिए है।
विज्ञापन करता विनाश भीषण शब्दो मे।
हिल हिल उठते आज चेतना भुवन, मनुज की
भावी की आशका से। अह, आज मनुज का
आत्म प्रतारक द्वेष बन गया विश्व विनाशक।

कुछ स्वर

कायर हो तुम कायर। जो उपदेश दे रहे
नगे भूखे लोगो को अध्यात्मवाद का।
कलाकार तुम नही, तुम्हारे दुर्बल उर मे
वज्र घोष विद्रोह नही युग की प्रतिभा का।
खौल न उठता रक्त तुम्हारा घृणा क्रोध से
शोषित पीडित मानवता की नग्न व्यथा पर।
दया द्रवित भी नही दिखाई देते हो तुम।
जग जीवन से विरत, निरत फूलो के वन मे,
स्वप्न लोक मे रहते हो तुम आत्मतोष के।
साथ नही दोगे तुम जन का युग सकट मे,
रिक्त कला, सुदरता के थोथे आराधक।
धिक् तुमको। यह व्यक्ति अह जन पथ कटक है।

कवि

किन्तु हाय, यह सघ अह दुर्गम पर्वत है !!
भीतर भी है जनगण, भीतर ही जन का मन,
भीतर भी है सूक्ष्म परिस्थितियाँ जीवन की,
भीतर ही रे मानव, भीतर ही सच्चा जग,
जाति वर्ग श्रेणी मे नही विभाजित है जो,—
उसे नव्य सगठित, पूर्ण सक्रिय, चेतन कर
बहिर्जगत मे स्थापित करना है मानव को !

कुछ स्वर

चलो, बढो हे भूजन, असि धारा के पथ पर,
सागर को मथने, पर्वत का शीश झुकाने,—
विजय ध्वजा स्थापित करने देवो के सिर पर !
रौदेगे हम परियो की चापो से गुजित
इस वन फूलो की घाटी को ! बिखरा देगें
इसकी स्वप्न भरी पखडियाँ धरा धूल मे !
तोड मोड इसकी शोभा पल्लव शाखाएँ
लूटेगे रस के मटको - से भरे फलो को,
जो खगोल - से, चेतन भुवनो - से लटके है !
ध्वस भ्रश कर देगे हम इस आदर्शों की
माया मोहक पचवटी को, भटकाती जो
मानव मन को नित नव स्वर्ण मृगो के पीछे !
बहिर्जगत की लौह मुष्टि फिर अतर जग का
नव निर्माण करेगी जीवित आघातो से !—
नही रहेगा बॉस, बजेगी तब क्या वशी ?
हम युग विद्रोही है, आज हमारी इच्छा
सत्य न्याय की उद्घोषक है !—शेष झूठ है !

(प्रयाण संगीत)

चलो तात, बढो भ्रात !
गौरव के गिरे शिखर
जन भू हो नव उर्वर,
जडता पर, रहो निडर,
करो घात, करो घात,
करो घात !

(प्रस्थान)

(तानपूरे के स्वर)

कवि

धरती का निस्तल अवचेतन उमड रहा है
बर्बर युग के आवेशो से आदोलित हो,
जग जीवन की क्रूर विषमताओ मे फिर से
नव युग का मासल समत्व भरने जन वाछित,—
मानव उर की मोह दभ की वज्र शिला पर
शत निष्ठुर प्राकृत प्रहार कर प्रतिहिसा के।
विस्मित हूँ मै। आज उपेक्षित जन धरणी का
भू विस्तृत समतल जीवन जब विहँस चतुर्दिक्
प्रथम बार पल्लवित, लोक सगठित हो रहा
भौतिक स्तर पर, दैन्य दु ख से अखिल मुक्त हो
छूट रहा जब करुण पराभव सख्याओ का
विगत युगो की निठुर नियति से भाल पर लिखित,-
प्रथम बार जब युग युग का भू कल्मष कर्दम,
आज धुल रहा प्रणत रीढ जनगण के मुख से,
खडे हो रहे जो अगणित पैरो पर फिर से
दैन्य गर्त से निकल, असख्य भुजाएँ फैला,
अँगडाई - भरते - प्रचड - जीवन - लपटो - से,
अग्नि शस्य-से लहरा भू पर प्राण-प्ररोहित,—
ऐसे युग मे एक ऊर्ध्वदिक् दिव्य सचरण
जन्म ले रहा अतर नभ मे युग मानव के,
निज अपूर्व चेतना शिखा से आलोकित कर
जीवन मन की अतल गहनताओ का वैभव,
सूक्ष्म प्रसारो की अतुलित दिग् व्यापी शोभा,—
मानव मन को ज्योति चमत्कृत कर, जीवन का
स्वर्गिक रूपातर कर, स्वर्णिम ऊँचाई से।
देख रहा मै, स्वर्ग क्षितिज से उतर रही है
नव जीवन शोभा की प्रतिमा आभा देही,
नव सस्कृति की अत स्मित किरणो से मडित,
जो बहिरतर ऐक्य साम्य मानव जीवन मे
पुन प्रतिष्ठित कर देगी, ऊर्ध्वग भू व्यापक।
—किन्तु कौन तुम, मौन ज्योति विद्रवित जलद-से
चिन्तन की मुद्रा मे, यहाँ खडे हो कैसे?
छोड साथियो को अपने,—किस अभिप्राय से?

वैज्ञानिक

किस आशा से ? वैज्ञानिक हूँ मैं। इतना ही
मेरा परिचय। मैंने ही चचल विद्युत् को
वाष्प रश्मि को बाँध, बनाया युग मानव की
क्रीता दासी। मैंने अणु का गर्व चूर्ण कर
भूत प्रकृति की मूल शक्ति को किया निछावर
मानव के चरणो पर। आज मनुज स्वामी है
सिन्धु गगन का, देश काल का, निखिल प्रकृति का।
और अनेको चमत्कार मैंने इस युग मे
दिखलाए हैं यत्रो के बल से मनुष्य को,
जो पिछले युग के मत्रो तत्रो के छल से
कही सत्य, विस्मयकारी है,—उन्हे गिनाना
आत्म प्रशसा कहलाएगा, पातक है जो।

कवि

परिचित हूँ मै सुहृद, तुम्हारे अमर दान से,
व्याप्त तुम्हारी शुभ्र कीर्ति है दशो दिशा मे,
रूपातर कर दिया मनुज जीवन का तुमने
भूत परिस्थितियो मे उसकी महत् क्राति कर।
किन्तु पूछता हूँ मै तुमसे, आज मनुज क्या
स्वामी है या दास प्रकृति का ? वह विद्युत् पर
शासन करता है, या विद्युत् वाष्प यत्र ही
अधिकृत उसे किए है ?—हाय, मनुज का अतर
चूर्ण हो रहा आज दर्प से, बहिर्जगत की
अध बीथियो मे शत खोकर, लक्ष्य भ्रष्ट हो।
हृदय हीन कर दिया उसे जड भौतिकता ने।
आज प्रकृति की मूल शक्ति देकर, मानव को
महानाश के पथ पर तुमने छोड दिया है।

वैज्ञानिक

स्यात् बदल जाती जग की कटु अर्थ व्यवस्था,
वाह्य विषमताएँ पट जाती युग जीवन की
स्वार्थ लोभ के पैने पजो से मानव पशु
मानव का मुख नही नोचता रक्त सिक्त कर।—
लौह अस्थि पजर मे भीषण यान्त्रिक युग के—
मनुज हृदय की धडकन पुन सुनाई पडती।

क्रूर वाष्प विद्युत् के दानव मानवीय बन
शोषक से सेवक बन जाते जन समाज के।

कवि

यदि अत सगठित आज हो जाता युग मन,
मनुज हृदय का परिवर्तन सार्थक हो सकता,
तो आदिम सस्कार उभडते नही धरा के
युग जीवन का स्वर्णिम रूपातर हो उठता।
हिम फुहार सी बरस सुनहली शाति चतुर्दिक्
शुभ्र हास्य से अभिषेकित करती भू प्रागण,
जीवन मन के मूल्य निखिल अत परिणत हो
व्यापक, उर स्पर्शी बन जाते स्वर्ग क्षितिज छू।
अतर जीवन की ऊर्ध्वग महिमा से मडित
नव चेतन हो उठती जड धरणी सुर प्रहसित।

वैज्ञानिक

अगर मुक्त हो सकती रचना शक्ति जनो की,
समुचित वितरण हो पाता जीवनोपाय का,
सामाजिक सतुलन ग्रहण कर लेता भू श्रम,
बँट जाता यत्रो का बल आर्थिक समत्व मे,—
स्वार्थ लोभ, अन्याय द्वेष स्पर्धा उठ जाते,
भूव्यापी जन रक्तपात टल जाता युग का,
मानव के सयुक्त कर्म से स्वर्णिम चेतन
युग प्रभात हँस उठता भू तम को निरस्त कर।

कवि

और साथ ही अगर ऊर्ध्वचेता बन जाता
समदिक् मानव, अतिक्रम कर मन की सीमाएँ,
मिट जाते खडित भू जीवन के विरोध सब,
भौतिक नैतिक मान नियोजित होते युगपत्।
मानवीय सतुलन ग्रहण कर लेता जन युग
यत्रो की जलती साँसे ठडी पड जाती।
मनुज चेतना के पारसमणि स्निग्ध स्पर्श से
लोहे की निर्ममता स्वर्ण द्रवित हो उठती।
नई चेतना के प्रकाश मे केन्द्रित मानव
पुन सत्य का मुख विलोकता नए रूप से,
नई दृष्टि मिल जाती उसको जीवन के प्रति,
मिट जाती सब विगत युगो की घृणित क्षुद्रता।

बाह्य रुद्ध बौनेपन से निज ऊपर उठ कर
ऊर्ध्व मुक्त, अतश्चेतन बन जाता जन मन,
अत स्थित, अत स्मित हो, अत कृतार्थ हो।

वैज्ञानिक

यही सोचता हूँ मै भी अब। आज मुझे है
महत् प्रेरणा मिली मनुज अतर्जीवी है।
स्पष्ट देखता हूँ मै, अतर का विधान ही
मानव है। अत सयोजित, ऊर्ध्व समन्वित।
आज मनुज मर गया। पराजित हो भीतर से
दौड रहा है वह बाहर, व्यक्तित्व हीन हो।
व्यक्तिहीन सामाजिकता निर्जीव ढेर है।
ढेर हो गया मानव का मन, यात्रिकता से
चूर्ण हो गया मनुज हृदय। वह अब समूह है।
यत्रो से चालित इच्छाओ का समूह है,
घृणा, द्वेष,• स्पर्धा, तृष्णाओ का समूह है।
नारकीय कटुता निर्ममता का समूह है।
अवचेतन की अध वासना का समूह है।
महत् व्यक्ति चाहिए आज सामूहिक युग मे,—
दुर्निवार कामना किन्तु है मुक्त हो उठी,
रौद रही जो मानव के मिथ्याभिमान को।
आज निखिल विज्ञान शक्ति मानव हाथो मे
विश्व प्रलय कारिणी बन गई, लोक विनाशक।
कापालिक बन गया मनुज है, जीवन बलि प्रिय
मानव शव का पूजक, साधक भू श्मशान का।।

कवि

यद्यपि अब भी लहरो की रुपहली पायले
बजती छम छम, खेतो मे हँसमुख हरियाली
सोना उगला करती है, नव मुग्धाओ की
चल चितवन से स्वर्ग झाँकता, नव शिशुओ को
घेर स्वर्ग की परियाँ मँडराती लुकछिप कर,—
किन्तु चतुर्दिक् गरज रहे युग सघर्षण मे
ह्रिस सभ्यता की हुकारो मे, जीवन की
मोहकता सब बिखर गई है।—मानस सूना,
जग फीका लगता है मरुस्थल सा निरर्थ, मृत,—

जीवन इच्छा तुच्छ, रूप चल मृग तृष्णा सा,
आशा का इगित निष्प्रभ, भूतल मरघट सा।

(आशाप्रद वाद्य सगीत)

अमृत पुत्र है पर मानव,—है व्यर्थ निराशा।
मास पेशियाँ आज पर्वताकार खडी हो
भले रोकती हो अत केन्द्रित प्रकाश को,
फूट पडेगा वह स्वर्णिम निर्झर बन उर से।
पतझर आया है यह फूलो के प्रदेश मे,—
झरने दो मानस के मुरझाये वैभव को,
अरुण किसलयो से, कलियो के अवगुठन से
झॉक रहा फिर नवल रुपहला आशा का जग।
फिर से बहिरतर सयोजित होगा मानव,
पुन ज्ञान विज्ञान समन्वित होगा जीवन।
व्यक्ति समाज परस्पर अन्योन्याश्रित होकर
बढते जाएँगे विकास के स्वर्णिम पथ पर।
बहिर्जगत के शिखर ज्वार पर आरोहण कर
नव्य चेतना उतरेगी किरणो से मडित,
सत्य अहिसा होगे भावी के पथ दर्शक,
विचरेगी मानवता फूलो के प्रदेश मे
नव सस्कृति की श्री शोभा सौरभ से पोषित।

(हर्ष सूचक वाद्य सगीत)

वैज्ञानिक

स्वप्न नही है यह, नि सशय मूर्त सत्य है।
मनुज सदा अपने को अतिक्रम कर, अतर्मुख
आदर्शो के नित नूतन ऊर्ध्वग प्रकाश को
नवल वास्तविकता मे बॉधेगा जीवन की,—
मानवीय होगी निश्चय वास्तविकता वही।

कवि

तुमसे यह सुनकर कृतकार्य हुआ अब जीवन।
आओ, हम दोनो बहिरतर के प्रतिनिधि मिल
अमृत चेतना को इस फूलो के प्रदेश की
नव युग जीवन मे परिणत कर, सत्य बनाएँ।

(जन रव : रण वाद्य)

देखो, लौट रहे है जनगण श्रात क्लात मन,
शोणित पकिल तन,—धरणी को रक्त पूत कर।

आज प्रार्थना जन श्रम मिल कर ज्योति शक्ति-से
शाति धाम, जन मगल ग्राम बनाएँ भू को।

(समवेत गीत)

मगलमय पूर्ण काम,
जन मन का लो प्रणाम।
द्वेष रहित हो भू मन,
शोभा स्मित जन जीवन,
सृजन स्वप्न भरे नयन,
कर्म जनित हो विराम।
विश्व शाति बने ध्येय,
श्रेय ग्रथित रहे प्रेय,
लोक ऐक्य हो अजेय,
पावन जन वास, ग्राम।

शात नील विश्व गगन,
शात हरित सिन्धु गहन
शात नगर पर्वत वन
जन भू हो शाति धाम।

(रजत शिखर से)
सन् १९५१

शरद चेतना

(आकाश गीत)

शरद चेतना।
प्रीति द्रवित अमृत स्रवित
शुचि हिम हसना।

चद्र वदन, कुद दशन,
उडु स्मित सर उर चेतन,
स्वप्न पलक पद्म नयन,
नि स्वर चरणा।

सौम्य स्निग्ध वयस काति,
मूर्तिमती खडी शाति,
मिटी विश्व जनित क्लाति
भू तम अशना।

स्वर्ग स्नात भू रज तन,
कौश शुभ्र काँस वसन,
निखर उठा उर यौवन,
अतर्वचना!

धुले निखिल रूप रग,
धुले मधुर प्राण अग,
निर्मल जीवन तरग,
कल्मष शमना!

गध अनिल रजत श्वास,
तृण तरु पर मुक्त हास,
लहरो पर ज्योति लास,
सारस रसना!

(हेमत का गीत)

जीर्ण पलित पीत पात,
कपित हेमत गात!

हैम धवल पक्व केश,
क्षीण काय, सौम्य वेश,
मथर गति, मद काति!
नत दृग, मुख वारिजात!

रजत धूम भरे अग,
फूलो के उडे रग,
सरसि मे न अब तरग,
शीत भीत श्वास वात!

मौन स्वल्प दिवस मान,
रवि मे ज्यो चद्र भान,
मुक्त अब न विहग गान,
अश्रु सजल हिम प्रभात!

सिमटे मन देह प्राण,
अधरो का राग म्लान,
प्राणो के निकट प्राण,
दीर्घ स्वप्न भरी रात!

(शिशिर का गीत)

सन् सन् बहता समीर,
बेधते सहस्र तीर।
शिशिर सीत्कार भीत
कँपता रज का शरीर।

झरते मर शीर्ण पत्र,
गिरते कँप विटप छत्र,
विचर रहा दुर्निवार
क्राति दूत सा अधीर।

बो रहा प्रचड बीज
जडता पर खीझ खीझ,
जीवन के नव प्ररोह,
विहँसे भू गर्भ चीर।

सिहर रहे तृण तरु खग,
सिहर रहा धूसर जग,
सिहर उठे भूधर पग
सिहर रहा लहर नीर।

नग्न भग्न विश्व डाल
सृजन ध्वस रे कराल,
सुलगे स्वर्णिम प्रवाल
मिटे निखिल दैन्य पीर।

(वसत का गीत)

नव वसत आया।
कोयल ने उल्लसित कठ से
अभिवादन गाया।

रँगो से भर उर की डाली
अधर पल्लवो मे रच लाली,
पखडियो के पख खोल स्मित
गृह वन मे छाया।

सौरभ की चल अलके मादन,
फूल धूलि मे लिपटा मृदु तन,
नव किशोर वय, क्रीडा चचल,
अग जग को भाया।

मधुपो के सँग कर मधु गुजन
मजरियो मे पिरो स्वर्ण कण,
दिशि दिशि मे नव फूल वाण भर
मन्मथ मुसकाया।

धरा पुत्र यह, फूलो के अँग
प्राणो मे इच्छाओ के रँग,
जीवन के श्री सुख वैभव मे
ऋतुपति कहलाया।

(ग्रीष्म का गीत)

तरुण तापस वीर।
उग्र रूप, प्रचड त्रिनयन सा
निदाघ गभीर।

धूलि से धूसर जटा घन,
मौन वचन, मुँदे विलोचन,
रुद्ध श्वास, सुखद तृणासन,
वस्त्र विरत शरीर।
तप रहे क्या व्योम भूतल
वह्नि लगती दाह, शीतल,
तप्त काचन देह निश्चल
ध्यान मे रत धीर।

दोडता पागल प्रभजन,
अग्नि के बरसा ज्वलित कण,
म्लान फूलो का लता तन,
शेष तट अब नीर।
रुद्र चक्षु कराल अबर,
कृश सरित, पकिल सरोवर,
तडपते खग मृग, अगोचर
चुभ गया हो तीर।

(वर्षा का गीत)

नीलाजन नयना,
उन्मद सिन्धु सुता वर्षा यह
चातक प्रिय वयना।

नभ मे श्यामल कुतल छहरा
क्षिति मे चल हरिताचल फहरा,
लेटी क्षितिज तले, अर्धोत्थित
शैल माल जघना।

इच्छाएँ करती उर मथन,
चिर अतृप्ति भरती गुरु गर्जन,
मुक्त विहँसती मत्त यौवना
स्फुरित तडित् दशना।

रजत बिन्दु चल नूपुर झकृत
मंद्र मुरज रव नव घन घोषित,
मुग्ध नृत्य करती बर्ह स्मित
कल बलाक रसना।

बकुल मुकुल से कबरी गुफित
श्वास केतकी रज से सुरभित,
भू नभ को बॉहो मे बॉधे,
इद्रधनुष वसना।

शरद का गीत

अब शुभ्र गगन मे शुभ्र चद्र
नव कुद धवल तारावलि री,
अब शुभ्र अवनि मे शुभ्र सरसि,
सरसी मे श्वेत कमल दल री।

भू वासिनि ऋतुएँ अन्य सभी,
तुम नभ वासिनि चिर निर्मल री,
वे धरती की रज मे लिपटी
तुम स्वर्गगा सी उज्वल री।

अब कॉस हास से श्वेत धरा,
सरसिज से सित सरिता जल री,
चल हस पॉति से शुभ्र पवन,
शशि मुख से स्मित नभ मडल री।

बेला जूही के फूल धवल
हिम धवल कुद कलियाँ कल री,
तुम चद्र शिखा की स्नेह विभा
जो स्वर्ण शुभ्र चिर शीतल री।

आती जाती ऋतुएँ जग मे
कर जाती भू उर चचल री,
तुम शरद चेतना स्वर्गोज्वल
बरसाती नित जन मगल री!

वे जीवन रगो का मोहक
फैलाती छाया अचल री,
तुम प्रीति द्रवित स्वर्गाभा सी
पावन कर जाती भूतल री!

तुम पारदर्शिनी, ज्योतिर्मयि
अत शोभामयि निश्छल री,
अस्पृश्य अदृश्य विभा उर की,
वे रूपमयी रज मासल री!

(रजत शिखर से)
सन् १९५१

ध्वंस शेष

(अणु विनाश)

(अस्तव्यस्त वेश में सहसा भयभीत नागरिको का प्रवेश)

नागरिक

दौड रहे शत प्रलय धरा का वक्ष चीरते,
रौद रही लपटे पावक के भूधर पग धर,
टूट पडे शत नरक, बरसते रुड मुड हत,
छूट गए रौरव के भूत पिशाच प्रेत हो!
कड कड करले क्रुद्ध वज्र, फट फट पडते सिर,
रक्त मास मज्जा उडते क्षण धूम भाप बन,—
फूट गया पृथ्वी के भीषण पापो का घट!
लुज पुज मासल तन पल मे होते ओझल,
चटक अस्थि पजर क्षण मे मिटते भूरज में!
ततु जाल सी त्वचा सिहरती झुलस ताप से,
छिन्न पसलियाँ छितर टहनियो सी पतझर की,
चरमर जल उठती पल मे शत मोम शिखा सी!
चीत्कारे करती चीत्कारे छूट कठ से,
गूँज प्रतिध्वनियो सी, तत्क्षण देह मुक्त हो,
बाल वृद्ध स्त्री पुरुष युवक, अगणित निरीह जन
निर्मम वेदी पर चढते दारुण विनाश की!
महामृत्यु मुँह फाड भयानक नरक गुहा सा
निगल रही भू को, साँसो में खीच मशक सी,—
औधे मुँह गिर नगर लोटते धरा गर्भ मे,
गर्तों मे धँस, उछल स्फीत धूमिल शिखरो-से!
छायाओ-से कँपते उडते-दृश्य पुरो के
भस्म शेष प्रासाद दीखते खडे यथावत्—
घूम रहे भू प्रात, भँवर मे पडी नाव-से!
छाई घोर तुमुल विभीषिका जन धरणी पर
बरस रही पावक धाराएँ रक्त सूर्य से!

भय, विभीत हो रहा भयकरता से अपनी,
भगदड हो मच गई प्रकृति के तत्वो मे ज्यो—
भाग रहा जीवन अपनी ही छाया से डर,
निज अतिम चरणो पर लँगडाता, डगमग डग !

(तेजी से प्रस्थान)

(सैनिको तथा श्रमिकों के वेश मे कुछ लोगों का प्रवेश)

कुछ स्वर

जूझ रहे अणु के दानव से भू के जनगण,
जूझ रहे है महानाश से अपराजित जन,
अब निसर्ग के तत्वो ने अपना अदम्य बल
जन मन मे भर दिया, मनुज की मास पेशियाँ
पर्वत सी उठ, रोक रही दुर्धर्ष शत्रु को !
नाच रहा जन के शोणित मे जीवन पावक,
दौड रही उन्मत्त शिराओ मे शत विद्युत्,
बहते है उनचास पवन उनकी श्वासो मे !
भीत नही होगा मानव इस महानाश से,
विश्व ध्वस से लोक करेगे नव जग निर्मित,—
श्री समत्वमय मनुष्यत्व को नव्य जन्म दे !

कुछ स्वर

फिर से मानव शिशु खेलेगे भू श्मशान मे,
पुन. बहेगी जग के मरु मे जीवन धारा,
मरुत भर रहे प्रबल शक्ति जन के प्राणो मे,
विस्तृत करता वरुण तरुण वक्ष स्थल उनका,
भस्मसात् कर रही अग्नि जीवन का कर्दम,
मुक्त हो रहा इद्रासन फिर महाव्याल से,—
शेष ऊर्ध्व फन खोल उठाता भू को ऊपर
फहराते दिङ् नाग मनुज की विजय ध्वजा को !

ध्वंस शेष

(तृतीय दृश्य)

(काल यापन सूचक वाद्य सगीत दस वर्ष के बाद का दृश्य अग्नि का प्रकोप शात हो गया है, कुछ बलिष्ठ हाथ फावडे कुदाल आदि लेकर ध्वस के ढेर को खोदते हुए बीच बीच में गा रहे है।)

गीत

खोद, खोद रे, न हार!
शात हुई अग्नि वृष्टि
ध्वस शेष भग्न सृष्टि,
खोज रही नग्न दृष्टि
आर पार, आर पार!
रत्न गर्भ धरा धूल
मिट्टी मे छिपे मूल,
वही बीज, वही फूल,
छान बीन, कर विचार!

एक स्वर

बीत गए दस वर्ष आज उस अग्नि प्रलय को,
ठढी जीवन राख पडी, बुझ गए अँगारे,
कट छँट गए धुँए के बादल, नए क्षितिज की
धुँधली रेखाएँ सुदूर दिखती विषण्ण सी!
रिक्त ताम्र का व्योम जल रहा युग सध्या मे
झुलस रहे तन को झझा के तप्त भभूके,
ध्वस्त पडा भू भाग, सभ्यता का गत खँडहर,
तृण तरु जतु रहित मिट्टी के करुण दैन्य सा!
घोर निराशा का विषाद तम के कपाट सा
प्राणो को जकडे है, क्रूर प्रलय प्रहरी बन,
महा श्मशान बना धरणी का जीवन प्रागण,
जहाँ भयावहता विभीत निज भैरवता से!
मृत्यु शून्य काँपता निदारुण सूनेपन से,
निर्जनता प्रतिफलित निबिड निर्जनताओ मे!

दूसरा स्वर

इधर इधर हे, खूद खाद का ढेर हटाओ,
पूरे बल से खोदो, हाँ, कूडे कचरे को
बाहर फेको,—गड्ढे मे झुक कर तो देखो,
यही कही पाषाण खड से टकरा चट्चट्
उगल रहा चिनगारी क्रोध भरा कुदाल है!
कैसी है यह वज्र शिला, जो प्रलय अग्नि से
जल गल कर भी राख नही हो सकी जलमुँही!
निश्चय, यह पाषाण हृदय प्रतिमा है कोई!—

एक साथ वीरो, शाबाश!—इसे सब मिलकर
नरक योनि से बाहर ला कर सीधा रख दो!
झाड पोछ कर इसकी एक झलक तो देखे,—
छि छि छि, कैसा कुत्सित विकराल रूप है!
अह, यह क्या यमराज स्वय?—या कोई दानव
काल ध्वस से दब कर पथरा गया धरा मे?

तीसरा स्वर

अरे नही! यह वज्र प्राण इतिहास मूर्ति है!
रक्त पक है इसके अवयव, दारुण आकृति,
दु स्वप्नो से जडे पलक, दु स्मृति पीडित उर,—
यह नृशस आदिम बर्बरता का प्रतिनिधि है,
मानवता का निर्मम शिक्षक, चिर अन्यायी!
इसे दबा दो, पुन गाड दो,—इसे अँधेरे
अतल गर्त मे दफना दो! गत भू जीवन की
इस भीषण छाया को गहरे नरक कुड मे
दो धकेल—इस बलि को फिर पाताल भेज दो!

(मूर्ति को लुढ़काने का स्वर)

प्रस्तर युग से पूँजीवादी युग तक का यह
शोणित रजित सर्ग, मनुज की निर्ममता का,
नई पीढियाँ इसकी आकृति देख भयानक
आँख फेर कर, विरत न हो जाएँ जीवन से!—
एक वृत्त हो चुका समापन भू जीवन का,
बदल गया गत दृष्टिकोण जग जीवन के प्रति!
बदल रहा मानव मन, बदल गया भू आनन,
नया पृष्ठ खुल रहा चेतना का स्वर्णोज्वल,
गत दु स्मृति को निश्चेतन मे मज्जित कर दो!
नया वृत्त उठ रहा, मात्र इतिहास नही जो,
नई चेतना का प्रकाश, भू स्वर्ग विधायक!

गीत

खोद खोद, कर प्रहार!
दबी कही मिले आग,
चिनगी फिर उठे जाग,
आशा को तू न त्याग
सोने को ले निखार!

भू के उर मे विलीन
युग अनेक पुराचीन,
ध्वस यह नही नवीन,
सृजन प्रलय दुर्निवार।

एक स्वर

रक्त मास के सडे पक से उमड रही है
महाघोर दुर्गंध, रुद्ध हो उठती श्वासा,
तैर रहे गल अस्थि खड शत, रुड मुड हत,
कुत्सित कृमि सकुल कर्दम मे महानाश के।
दिग् व्यापी सहार असख्य निरीह जनो का
भूत सभ्यता का दारुण उपहार है घृणित।
अगणित मनुजो की देहो की मासल रज से
धरती की मिट्टी का नव निर्माण हो रहा,
कितने मन प्राणो हृदयो का भावुक स्पदन
कितने उर्वर मस्तिष्को का चेतन वैभव
धरा धूलि मे सोकर एकाकार हो गया।
क्या वह जाग सकेगा स्वप्न प्ररोहो मे नव?

दूसरा स्वर

थू, यह कौन कराह रहा इस नरक कुड मे
औंधे मुँह गिर कर, आहत मन, क्षत विक्षत तन।
कोई अबला है यह क्या? नागिन सी वेणी
लोट रही है पृष्ठ देश पर बल खाई सी।
इसे खीच बाहर कर दूँ इस पाप कुंड से।
महिमामयी किसी नारी की रम्य मूर्ति यह।
दर्प भरे दृग, रजित अधर, उरोज अधखुले,
अगो से लावण्य टपकता श्री ह्री कोमल।
कुचित भ्रू लतिका, इगित पर नचा जगत को,
शात भगिमा मे क्षण भर विश्राम कर रही।
मन मोहिनी रही होगी यह मुग्ध यौवना,
हाय, रुक गया सहसा क्यो इसका उर स्पदन।

तीसरा स्वर

देखूँ,—ओ, यह वर्ग सभ्यता की अनुकृति है,
शोभा सज्जा रूप मधुरिमा की प्रतिमा सी।
फूलो के मृदु अग, हृदय पाषाण शिला सा,
इसके स्वर मे जादू, अधरो मे थी ज्वाला

अधिकारो की मदिरा से आरक्त युग नयन,
जन धन से स्वर्णिम झकृत चचल प्रिय अवयव,
भ्रू विलास से महा समर छिडते थे जग मे,—
निखिल धरा के कटु शोषण पीडन से पोषित
निखरी थी इसके अगो की मासल शोभा।
स्वाभाविक ही अत हुआ इसका, युग भू पर
पके विषमता के फल सी गिर पडी स्वय यह।
ऐठ रहा है तन मर कर भी लोक घृणा से।।

गीत

खोद, खोद रे उबार।
विश्व ध्वस का श्मशान,
शेष अब न गीध श्वान,
विजन भीत शून्य प्राण
भरते कातर पुकार।
काल रात्रि का प्रसार
छाया घन अधकार,
निगल रहा निराकार,
रुद्ध स्वर्ग ज्योति द्वार।

एक स्वर

फैल रहा कटु अनाचार अह, धरा नरक मे,
चूर्ण हो गया विगत सगठन मानव मन का,
नैतिकता चीत्कार भर रही, सदाचार अब
दृष्टि हीन, घन अधकार मे राह टोहता।
बर्बर युग की ओर जा रहा फिर मानव पशु,
धर्म नीति आदर्श निखिल म्रियमाण पडे है,—
लूट पीट, हिसा नृशसता अट्टहास भर
खर ताडव कर, रौद रहे मानव आत्मा को।
मर्माहत हो उठी मनुज की मूक चेतना
लोक विघातक विश्व युद्ध की निर्ममता से—
गहरे व्रण पड गए धरित्री के जीवन मे
वज्र क्रूर, कटु अध नियति निकली मानव की।
अतल गर्त मे पडी, झीखती विश्व सभ्यता
उमड रही खल हिंस्र वृत्तियाँ अवचेतन की,—
मनुष्यत्व का रक्त चूस कर, कृमि सा मानव,
दानव बन कर रेग रहा दिग् भ्रष्ट रीढ पर।

अन्न वस्त्र, गृह, आवागमनो के अभाव से
पुन अहेरी जीवन बिता रहे नारी नर,
आधि व्याधि बहु रोग टूटते क्षुधित गीध-से,
काम क्रोध मद लोभ घूमते नग्न नृत्य कर।
राग द्वेष, स्पर्धा कुत्सा, कटु कलह परस्पर
नोच रहे मानव का मुख पैने पजो से।।

दूसरा स्वर

देखो हे, यह कैसी प्रतिमा यहाँ गडी है?
मूर्च्छित सी लगती विष वाष्पो के प्रभाव से।
इसे गर्त से बाहर ला, उपचार तो करो,
हिला डुला कर, सभव, यह प्रकृतिस्थ हो उठे।
हृष्ट पुष्ट है इसके पुट्ठे, लौह कलेवर,
जटिल शिरा तत्रो मे दौड रही शत विद्युत्,
टिक टिक करता हृदय पिड लघु काल यत्र सा
मद पड रहा धीरे जिसका यात्रिक स्पदन।
यह नवीनतम प्रतिकृति है कोई गत युग की,
किसी सर्व सपन्न व्यक्ति की कीर्ति चिह्न हो।
आओ, इसको खुली हवा मे रख दे क्षण भर
इसके मुरझाए मुख पर जल के छीटे दे।

तीसरा स्वर

आ, यह तो भौतिक युग की विज्ञान मूर्ति है।
दूर, दूर हट जाओ,—इसकी वज्र देह को
अणु विस्फूर्जित विद्युत् किरणे गला रही है।
श्लथ नथुनो से निकल रही विष की नि श्वासे,
वाम हस्त मे रुज् कृमियो से भरा पात्र है,
दक्षिण कर का सजीवन घट फूट गया है।
भस्मासुर सा, अणु बल का वरदान प्राप्त कर
यह अपने ही वरद हस्त से भस्म हो गया।

एक स्वर

नही, नही—यह अधिक समय तक भस्मावृत हो
नही रहेगा। यह अपने ही भस्म शेष से
नव्य जन्म ले, पुन जी उठेगा पृथ्वी पर।
इसके भीतर भूत सत्य का अमृत अश है,
इसको अपने ही विनाश से पाठ सीख कर
विध्वसक से निर्मायक बन कर जगने दो।

गीत

खोद, खोद रे सँवार !
जीवन तम हो अछोर,
मन से हो दूर भोर,
होगी फिर कृपा कोर
बीती को दे बिसार !
अतल उदधि मे अकूल
खिला एक नित्य फूल
बिना नाल, बिना मूल
गध अतुल मुक्त भार !

एक स्वर

इस मिट्टी की अध योनि मे जाने कैसे
कब जीवन का बीज गिर पडा अक्षय वट से,
जो प्राणो की हरियाली मे रोमाचित हो
अग जग मे छा गया असख्य प्ररोहो मे हँस,
सुनता हूँ, जो गहराई मे पैठ खोजते,
पाते वे नित गूढ रत्न, पर यह मानव मन
अतल अकूल गुहा है, जिसके रहस मर्म को
भेद नही पाई मानव सभ्यता अभी तक !

दूसरा स्वर

यहाँ कौन लेटा है यह कर्दम मे लिपटा
जीवन श्रात पथिक सा, जगती से विरक्त मन ?
काल स्थविर कोई ऋषि चिर निद्रा मे सोया
देख रहा है स्यात् स्वप्न वैकुठ लोक के !
उन्नत, निष्प्रभ सा ललाट, श्रुति दीर्घ-से नयन,
भरा झुर्रियो से आनन, चदन चर्चित तन,
स्फटिक माल स्मित वक्ष, यत्र बाँधे बाँहो मे
वृद्ध पुजारी सा लगता सूने मदिर का
दीपशिखा बुझ गई आरती करते जिसकी !

तीसरा स्वर

भाई, यह तो दारु मूर्ति है जीर्ण धर्म की
जिसके सम्मुख प्रणत रहे युग युग से भू जन,
तर्क जाल फैला जिसने आकाश बेलि-से,
पाप पुण्य मे, स्वर्ग नरक मे उलझाया मन !

रक्तपात बहु हुए धरा मे इसके कारण
जीवन से हो विमुख, बने जन निर्जन सेवी,
घोर अध विश्वासो के कुहरे मे लिपटा,
रूढि रीतियो मे जकडा इसने जीवन को।
राजनीति ने सिंहासन च्युत कर फिर इसको
भौतिक बल से वशीभूत कर, किया पराजित,
गत युग की बौद्धिकता ने, जीवन दर्शन ने
चीर फाड कर, इसके शव का किया परीक्षण।
घनन, घनन बज रही घटियाँ अतरिक्ष मे
घनन घनन हो रहा समापन एक महा युग।
स्वर्ग लोक हे, मिले पलित इस पुण्य मूर्ति को,
जनगण सेवक महाप्राण युग वृद्ध धर्म को।
रणन झनन मानव के अत स्मित शिखरो पर
नव आध्यात्मिकता विचरे नव जीवन चेतन,
खन खन खन बज रजत घटियाँ अतर्मन मे
नव्य चेतना का आवाहन करती भू पर।

गीत

खोद, खोद खोज सार।
चूर्ण चूर्ण मनुज मान,
खड खड बहिर्ज्ञान,
योग भ्रष्ट आत्मध्यान,
बहिरतर कर सुधार।
बाहर ही तू न दौड,
भीतर ही दृग न मोड,
दोनो के सूत्र जोड
दोनो को ले उबार।

एक स्वर

कितने ही दर्शन विज्ञान गढे मनुष्य ने,
रीति नीतियो की बाँधी शत मर्यादाएँ,
नगर तत्र से राजतत्र औ' प्रजातत्र बहु
परिचालित नित करते रहे मनुज समाज को।
पर मिट्टी की अध अहता को मानव मन
दीपित हाय, न कर पाया अत प्रकाश से,
उसकी जड निर्ममता को कर प्रीति विद्रवित,
सँजो नही पाया विस्तृत जीवन शोभा मे।

जाति वर्ण के, वर्ग श्रेणि के अधकार को
खड युगो की सस्कृतियो के सस्कारो को,
राष्ट्रो की स्पर्धाओ, भिन्न मतो वादो को
मनुष्यत्व मे ढाल न पाया वह भू व्यापक।
सस्कृति का मुखडा पहने, छल सभ्य वेश मे
प्रणत रीढ पशु मात्र रहा गत युग का मानव।

दूसरा स्वर

यह सिर के बल खडी मूर्ति है किस नर पशु की ?—
मानव के पूर्वज सा लगता भाव मूढ जो।
पुच्छ विषाण विहीन, भरा बहु रोओ से तन,
दृप्त मद्यपी के-से दृग, भौडी मुख आकृति,
मत्त वृषभ का सा मासल निचला तन इसका,
कौन पडा यह गड्ढे मे, कीचड मे डूबा ?

तीसरा स्वर

किसी मनोविश्लेषक की प्रतिमा लगती यह,—
सीढी सीढी उतर गहन वासना गर्त मे
अवचेतन के अधकार मे भटक गया जो।
ऊर्ध्व श्रेणियाँ छोड चेतना की, जो निम्नग
निश्चेतन मे विचरा पशु मानस के स्तर पर,
उलझ ग्रथियो मे असख्य इद्रिय भ्रम पीडित,—
खोज न पाया आत्मशुद्धि का पथ अतर्मुख,—
उभरे मोटे ओठो मे लालसा दबाए,
कुठाओ की रेखाओ से जर्जर आनन।

एक स्वर

और अनेको खडित चिह्न यहाँ गत युग के
पडे धूल मे,—अकित जिनमे धुंधली स्मृतियाँ
प्राण वनस्पति जग के जीवन वैचित्र्यो की।
यह डार्विन है क्या ? जिसने जीवन विकास की
विस्तृत कडियाँ गुफित की निज जीवशास्त्र मे,
वर्ग चयन, परिवेश, परिस्थिति को महत्व दे
जल थल नभचर के विकास का क्रम सुलझा कर
सिद्ध किया मानव को वशज शाखा मृग का,—
निष्क्रिय, परवश मात्र मान जीवनी शक्ति को।

दूसरा स्वर

यह सभवत कार्लमार्क्स। समदिक् जीवन का
विश्लेषण सश्लेषण कर जिसने दिग् व्यापक
नव द्वन्द्वात्मक भूतवाद का युग दर्शन दे
आदोलित कर दिया लोक जीवन समुद्र को,—
अर्थशास्त्र का नव सजीवन पिला जनो को।
वर्ग क्राति का दूत, साम्य जन तत्र विधायक।

तीसरा स्वर

देखो हे, यह जुडवो सी म्रियमाण पडी है
युगल मूर्तियाँ लुज पुज हो यहाँ घिनौनी,
बर्बर गर्हित आकृति इनकी, बौना सा कद,
वक्र भृकुटि, दर्पोन्नत शिर, पद मद स्फारित दृग,
रक्त सिक्त पृथु हस्त, क्रोध से फूले नथुने,
भारी भद्दे पैर रौदते हो ज्यो भू को।।

दूसरा स्वर

राजनीति औ' अर्थनीति की प्रतिमाएँ ये,—
सँग सँग जो नित रही स्वार्थ की गलबाँही दे,
दुरभिसधि करती, कुचक्र रचती जन भू पर,
आदोलन सग्राम छेडती रही निरतर
जन सगठनो के मिस नव अधिकार भोगती।
आकृति मे ठिगनी, क्षमता मे महाकाय ये
महाध्वस लाईं भू पर अणुबल सग्रह कर।
चूर्ण चूर्ण कर दो इनका स्मृति शेष रूप हे,
मिट्टी मे मिलने दो मिट्टी के दैत्यो को,
बहिर्जगत के अध तमस मे रहे भटकते
यमज प्रेत ये निर्मम, जग जीवन के घातक।

गीत

खोज, खोज, उर उदार।
तमस मे छिपा प्रकाश,
प्रलय मे सृजन विकास,
मृत्यु अमर का विलास
जगत रे नही असार।

समाधिस्थ सी यहाँ पडी यह आत्मलीन हो,—
इसे देख कर नव जीवित हो उठी हृदय मे
नव जीवन, नव ज्योति प्रीति, श्री सुख की आशा!
जय हो नव मानवता की, जय नव सस्कृति की,—
जिसके पावन अमृत स्पर्श से, ध्वस शेष से
धरा स्वर्ग नव निखर रहा जन मन क्षितिज मे!

(आशा आनद उत्साह द्योतक वाद्य सगीत)

(शिल्पी से)
सन् १९५२

(अतिम अश)

स्वर्दूती

पौ फट चुकी । सुनहला क्षण युग की द्वाभा का
मोहित करता चित्त, रुपहली झकारो की
स्वर-सगति मे सूक्ष्म चेतनातप सा गुफित ।
मौन लालिमा लोक रक्त शतदल सा प्रहसित
खोल रहा दल पर दल,—निखिल दिगत पल्लवित ।
ज्वलित प्रवालो के पर्वत-से खडे हिम शिखर ।
रक्त पीत सित नील कमल जग स्वप्न वृत पर
सस्मित पलके खोल रहे निज अर्ध निमीलित ।
जाग रहे फूलो के वक्षोजो पर सोए
प्रेम मुग्ध बदी मधुकर, उन्मन गुजन भर ।
पारिजात मदार लताएँ लगी सिहरने
मुग्धाओ सी हरि चदन तरुओ से लिपटी,—
खिलने लगे अशोक पदाघातो की स्मृति से,
देवदारु के शिखर हो उठे, लो, स्वर्णप्रभ ।
निश्चय, देवो के सँग रहता स्वर्ग निरतर
तपोभूमि को सृजन भूमि मे बदल अलौकिक !
सुनो, जागरण गीत गा रहे वैतालिक सुर
कमलो की अजलि भर, जो प्रतिमान सृष्टि के ।

(प्रभात वादित्र सगीत तथा सहगान)

रक्त कमल, श्वेत कमल,
खुले ज्योति पलक नवल ।

रक्त कमल जीवन स्मित,
श्वेत कमल शाति जनित,
खोल रहे रश्मि स्फुरित
मानस मे ज्वाला दल ।

नील कमल श्रद्धा नत,
स्वर्ण कमल भक्ति प्रणत,
कर्दम मे खिले सतत,
प्रीति मधुर अतस्तल !

अमित सुरभि रही निखर,
गूंज उठे लोक निकर,
जाग उठा जीवन सर
स्वर्णिम लहरे उच्छल !

नई चेतना हिलोर,
शोभा छाई अछोर,
होने को नया भोर,
गाओ सुर, जन मगल !

स्वर्दूत

देखो, कौन खडा हिम अचल मे वह तापस
आरोहण करता मन के दुर्गम शिखरो पर,
जीवन की मधुभूमि छोड कर कैसे मानव
यहॉ पहुँच पाया ?-देवो के हित जो रक्षित !
वह क्या कोई प्रेमी, पागल अथवा साधक,
या वह जीवन द्रष्टा कोई उर्ध्वारोही ?
अन्न प्राण मन के प्रिय भुवनो को अतिक्रम कर
अधिमन के शिखरो पर जो अटका त्रिशकु सा,
हाय, असभव इच्छाओ की बलि का अज बन !

स्वर्दूत

ओ, वह कोई क्रात दृष्टि कवि लगता निश्चय,
लोक प्रेम के महत् ध्येय से प्रेरित हो जो
सूर्य मनस् मे देख रहा मानव भविष्य को,
स्वर्ण मुकुर सा ज्योति स्फुरित जो मनोगगन मे!
अपलक अतर्दृष्टि महत् स्वप्नो से विस्मित
पार कर रही रहस भविष्यत् का स्वर्णिम नभ,
कुचित अलको पर उलझी सौन्दर्य रश्मियॉ,
सौम्य कात मुख, भाव प्रतनु, कल्पना विहग वह
सप्रति भू जीवन मन से सूक्ष्मग, अति चेतन !
सृजन प्राण वह, निखिल असभव सभव उसको !
सुनो, ध्यान से सुनो, स्वगत भाषण करता वह
अर्धस्वरो मे,—आत्म व्यथित, स्वप्नो से पीड़ित !

(भावोद्वेलन सूचक वादित्र सगीत)

ज्ञात द्रष्टा

व्यक्ति समाज, समाज व्यक्ति,—कैसी विडबना !
साध्य प्रथम या साधन,—कैसा तर्क वृत्त है !
अनेकता मे एक, एकता मे अनेकता,—
बाहर भीतर,—शब्द जाल सब, केवल वाग्छल !
यात्रिक बौद्धिक तत्व, रिक्त दर्शन के क्षेपक,
भ्रात बुद्धि की प्रेत समस्याएँ मानव कृत,
जो अरण्य रोदन करती युग के मानस मे,
निर्जन खँडहर मे झिल्ली सी झीख झीख कर !

सत्य एक है,—व्यक्ति समाज, अनेक एक, जड
चेतन, बाहर भीतर सब जिस पर अवलबित !
आवर्तन गति से विरोध जग के अनुप्राणित,
विश्व सचरण जीवन का वैषम्य सतुलित !

स्वर्दूत

मानस मथन चलता युग मानव के भीतर !

ज्ञात द्रष्टा

देख रहा मै, बरफ बन गया, बरफ बन गया,
बरफ बन गया पथरा कर, जम कर, युग युग का
मानव का चैतन्य शिखर,—नीरव, एकाकी,
निष्क्रिय, नीरस, जीवन-मृत,—सब बरफ बन गया !
राख मात्र, जड, शीतल,—ताप प्रकाश नही कुछ,
ठडे, बुझे हुए अगारो मे प्राणो का
ताप नही, मन का जीवत प्रकाश नही अब !

चट्टानो पर चट्टाने सोई शतियो की,
जमे फलक पर फलक शवो - से श्वेत रक्त के,
अट्टहास भरते जो नि स्वर खीस काढ कर
महाकाय ककालो के अवशेष पुरातन !
चमक चमक चिल्ला उठती किरणे प्रकाश की
सतरगे छायाभासो की चकाचौध मे,
प्रतिध्वनित हो मन शिलाओ पर चिर निद्रित !

स्वर्दूती

आत्म विघातक देन रिक्त थोथे दर्शन की !

क्रात द्रष्टा

राग विरत, निर्वाण शून्य का मूर्त रूप यह,
निरासक्त, निश्चेष्ट, शाति का स्तूप सा खडा,
जीवन प्रत्याख्यानो के ऋण अस्थि सौध सा,
नेति नेति का, आत्म निषेधो का दुर्गम गढ।
सूख गए प्रेरणा स्रोत बाहर भीतर के
शीतल, हिम शीतल जीवन की जड समाधि यह।
स्पद शून्य भैरव नीरवता महाशून्य की
घेरे इसको महामृत्यु के बृहत् पख सी।
रिक्त ज्योति बन हाय, जल गया जन धरणी का
रूप रग रस स्पर्श मुखर जीवन उर्वर मन,—
प्राणो के सौरभ पखो मे मर्म गुजरित।।

स्वर्दूत

मध्य युगो के जड़ निषेध, जीवन वर्जन ने
कुठित कर दी मुक्त प्रगति मानव विकास की।।

क्रात द्रष्टा

बिखर शिखर पर जाती जीवन स्वर्णिम किरणे,
मरु की सूनी कँपती निर्जल छायाओ सी,
हँसती वहाँ न प्राणो की मर्मर हरियाली
लोट रुपहली लहरो मे धरती की रज पर।
प्रणय गीत गाती न मधुकरी, मधु अधरो से
मुकुलो का मुख चूम, झूम गुजित पखो मे,
कूक न पाती पिकी मजरित डालो पर उड
सृजन प्रेरणा शून्य, अमूर्त विदेह लोक मे।

स्वर्दूती

विद्या और अविद्या मे सतुलन खो गया।
(भावोद्दीपक वादित्र सगीत)

क्रात द्रष्टा

आह, इसे प्राणो का स्पदित ताप चाहिए,
जीने को जन-मन का भावोच्छ्वास चाहिए,
हरित-प्राण-उल्लास से रहित इस युग-युग के
पतझारो के निर्जन, करुण, कराल ठूँठ को
गध गुजरित, रस कुसुमित मधुमास चाहिए।

गला सके जो इसके भस्मावृत तुषार को,
मिटा सके भीषण विराग, भारी विषाद को,
आलोकित कर सके घोर नैराश्य तिमिर को,
जकडे है जो इसे श्वेत ककाल हास्य से ।
हाय, सो गया शून्य अतद्रा मे जाग्रत् मन,
भटक गए बीहड मरुपथ मे बुद्धि के चरण,
देशकाल से परे, नास्ति मे, मन के लोचन
स्वप्नहीन तद्रा मे कब खुल गए निर्निमिष,—
ध्यानावस्थित, स्थिर, निष्कप, अरूप प्रताडित ।
आत्म नग्न नर, रिक्त देह मन के वैभव से,
अम्ल धौत पट-सा,—धुल गए प्रकृति के सब रँग ।

(निर्जन विषादपूर्ण वादित्र सगीत)

स्वर्दूत

बौद्धिक मरु मे लुप्त हो गया उत्स भाव का ।

क्रात द्रष्टा

इसे इद्रियो के स्वर्णिम पट मे लिपटाओ
रूप गध रस से झकृत भूषण पहनाओ,—
इसे खुले द्वारो से, भाव पगो से गुजित,
जन मन के विस्तृत पथ पर चलना सिखलाओ ।
इसे ऊर्ध्व नभ के प्रकाश को आत्मसात् कर
जन भू जीवन मे मूर्तित करना बतलाओ।—
जिससे फिर चल सके अचल, स्वर्णिम स्रोतो मे
झर झर कर बह सके वेग से, नव गति पाकर,
शोभा मे हो द्रवित मूक प्राणो की जडिमा,
लोट लिपट भू - रज मे हो नव भाव प्ररोहित ।

(जीवनोल्लास सूचक वादित्र संगीत)

स्वर्दूती

महत् समन्वय आज चाहिए युग मानव को
देव मनुज पशु जिसमे हो अत सयोजित ।

क्रात द्रष्टा

देख रहा मै खडा धरा चेतना शिखर पर
युग प्रभात नव जन्म ले रहा विश्व क्षितिज मे,
स्वर्ण शुभ्र धर रश्मि मुकुट भू-स्वर्ग भाल पर।—
युग युग से स्तभित, निरुद्ध, आत्मस्थ, स्वार्थरत
मानव के अध्यात्म जाड्य को ज्योति मुग्ध कर ।

द्रवित हो रहा शतियो का चैतन्य सनातन
विरह मूढ जो रहा वियुक्त धरा से होकर,
जीवन से ऊपर उठ मन के अह शूल पर!—
फूट रहे शत स्रोत विकल प्राणो मे मुखरित
धरती को निज प्रीति स्रवित बाँहो मे भरने!
शात हो रहे मानव के अभिशाप युगो के,
पुन मिल रहे बिछुडे जड चेतन, जीवन मन,
मानव की आत्मा मे नव प्राणो से स्पदित!

एक विश्व - जन - जीवन निश्चय,—वसुधरा ही
मनुज सत्य की अमर मूर्ति, जीवित प्रतीक है—
अमित चराचरमयि जो, शाश्वत जीवनमयि जो!
एक छोर चैतन्य चिरतन, रश्मि पख स्मित,
भावो का सतरँग प्रकाश बरसाता अविरत,
गुह्य दूसरा छोर, अकूल अतल जड तम है,
धारण करता जो अपने अविकार गर्भ मे
जन्म मरण, भव जीवन क्रम, सुख-दुखके स्पदन!

देख रहा मै, मूक धरा के अतल गर्भ से
अग्नि स्तभ उठ रहा तप्त हेमाभ शैल सा,—
महा आगमन का सूचक यह ज्योति पख क्षण!

(युगांतर सूचक मधुर भीषण वादित्र संगीत)

स्वर्दूत

निश्चय, यह मानव भविष्य द्रष्टा नव युग कवि,
भूत भविष्यत् के पुलिनो पर बाँध रहा जो
स्वप्न पग ध्वनित भाव सेतु, शत इद्रधनुष स्मित,—
गरज रहा नीचे उद्वेलित जन युग सागर!

(तीव्रतर वादित्र संगीत)

स्वर्दूती

वह देखो, वह झझा रथ पर चढ कर आता
नव युग का मानव, प्रदीप्त जीवन पर्वत सा,
धरा पक को दग्ध, मनोनभ को दीपित कर!
युग - युग के पतझर झर पडते उसके भय से
धूल धुध पखो से बिखरा अग्नि बीज नव,
क्रुद्ध बवडर, अधड उसके साथ खेलते
मत्त तुरगो - से उड, दिक् कपित कर भूतल—
रथ चक्रो के दारुण रव से बधिर कर गगन!

नव मधु के फूलो की ज्वाला मे वह वेष्टित,
रूप रग शोभा सौरभ के अग गुजरित,—
दीपित उससे सूक्ष्म भुवन, युग-स्वप्न-मजरित!
जाग उठे, लो, सुरगण महाऽगमन की ध्वनि सुन,
ध्यान मौन निज स्वप्न कक्ष मे चौक अचानक,
आदोलित हो उठे सूक्ष्म भावो के आसन,
दीप्त प्रेरणाओ से स्पदित अर्पित अतर,—
गलित रश्मियो सी बहती जो उर के भीतर!
देखो, मणि आवास छोड, समवेत देवगण,
चकित दृष्टि से देख चतुर्दिक् आत्म मूढ हो,
गुप्त मत्रणा करते मिलकर—कौन पुरुष वह?
विस्फारित दृग सोच रहे सब,—कौन पुरुष वह?
भय विस्मय मे डूब पूछते,—कौन पुरुष वह?

(दूर आँधी तूफान के उठने का शब्द)

एक देव

कौन आ रहा वह भीषण सुदर, भुवनो को
अपनी दुर्धर पद चापो से कपित करता?
झझा सा, जन मन मे भैरव मर्मर रव भर
भू समुद्र को हिल्लोलित, भय मथित करता!
क्या यह महा प्रलय, कि प्रभजन महानाश का?
जन धरणी को वरने आया महाकाल या?
दौड रहे उनचास पवन, कँपते मनो भुवन,
निश्चय, यह नव कल्पातर, यह महा युगातर!
नया सृजन आ रहा सूर्य के स्वर्णिम रथ पर
अग्नि पुरुष यह, प्राण पुरुष यह, लोक पुरुष यह!

कुछ देव

आओ हे, आओ, अभिवादन, शत अभिवादन!

स्वर्दूत

शात हो गया क्रुद्ध वेग स्वागत नत होते!

(रथ चक्रों के आगमन का रव)

देवी

कौन, कौन तुम तप्त स्वर्ण-से दारुण सुदर,
धरा गर्भ के गुह्य तमस से प्रकट सूर्य-से?
मरुतो के तुरगो पर चढ, मर्मर हर हर भर,
जन मन को करते आदोलित, सिन्धु उच्छ्वसित!

जीवन क्रदन मे बज उठता नया गान अब,
मन की मूर्च्छा मे जग पडती नई चेतना।
प्राणो के अवचेतन तम मे धँसी ज्योति नव,
क्षुब्ध स्नायुओ के दीपन मे रजत शाति सी।
शून्य निराशा मे आशा, सशय मे आस्था,
अविनय मे श्रद्धा, सम्मान उपेक्षा पट मे,
सघर्षो मे जय, सकल्प अहता मे अब
छिपा प्रलय मे सृजन, घोर तम मे प्रकाश नव।
हाय, कौन तुम विद्रोही जन के ईश्वर - से?
उलट पुलट कर दिया निखिल जीवन क्रम तुमने।

सौवर्ण

(आत्म विश्वास भरा सौम्य स्वर)

मै हूँ वह सौवर्ण, लोक जीवन का प्रतिनिधि।
नव मानव मै, नव जीवन गरिमा मे मडित,
युग मानस का पद्म, खिला जो धरा पक मे,
जड चेतन जिसमे सजीव सौन्दर्य सतुलित।—
प्रथम एक, अविभक्त सत्य मै, फिर जड चेतन।
मै ही मूर्त प्रकाश, सूक्ष्म औ' स्थूल जगत के
सतरँग छायातप मे विकसित। मर्त्य अमर मै,
जिसके अतर मे भविष्य के शत स्वर्णिम युग
नव जीवन की शोभा मे सागर-से स्पदित,
विश्व चेतना से प्रेरी अहरह अनुप्राणित।
मै हूँ श्रद्धा का भविष्य, जो व्यक्त जगत के
काल ग्रसित, खडित मानो के भूत भविष्यत्
वर्तमान को अतिक्रम कर, उनमे प्रविष्ट हो,
विकसित करता अग जग को नव सीमाओ मे।
मै ही वह निरपेक्ष, विश्व सापेक्षो मे जो
अभिव्यक्त हो, जग जीवन मन के मूल्यो मे,—
उनके सक्रमणो मे,—उदय, विकास, ह्रास मे,
उनके भीतर स्थित, निरपेक्ष बना रहता हूँ।
क्या आश्चर्य कि तुम्हे कल्पनावत् लगता हूँ।

स्वर्दूती

कला सृष्टि यह,—महत् कल्पना जन भविष्य की।

सौवर्ण

ऊपर मै रत्नाभा सा छहरा देवो मे,
सृजन चेतना के प्रतीक जो सूक्ष्म अगोचर,
नीचे मानव जग मे मूर्तित, प्रिय जो मुझको,
देवो को कर आत्मसात् विकसित होता जो।
तुम दीपक से भिन्न समझते दीप शिखा को?
विस्मय करते कैसे आँधी तूफानो मे
जीवित रहती है वह? मै तूफानो ही मे
जलने वाली अमर ज्योति हूँ। मै रहस्य हूँ।
भगुर मिट्टी के प्रदीप ही मे पलता हूँ।
झझा के पखो पर चढ जीवन ज्वाला सा
सँग सँग फिरता मै अबर, सागर, कानन मे।
भूत भविष्यत् वर्तमान मुझमे ही जीवित,
विश्व समन्वय से मै महत्-समष्टि प्रेरणा,
सृजन प्रेरणा,-मूर्तिमान जीवन स्पदन मे।

स्वर्दूती

लोक काव्य यह, जिसमे सूक्ष्म मूर्त हो उठता।

सौवर्ण

ध्यान मौन तुम, शून्य अतीन्द्रिय नभ मे खोए,
मुझे खोजते जीवन से निष्क्रिय निरीह हो?
वहाँ नही मै-अतिवादो से दूर निरतर
जग जीवन ही में निविष्ट, अति से अतितम हूँ।
आत्म ज्योति औ' भूत तमस से अध, उभय ही
एक समान मुझे है,-ज्योति-तमस से पर मै
स्वय सत्य हूँ।-ज्योति-तमसमय, जड-चेतनमय,
मन - जीवनमय, मुझमे जो वागर्थ - से जुडे।

स्वर्दूत

देव काव्य यह, जिसमे तत्व निहित रहता नित।

सौवर्ण

ओ प्रकाश के पागल प्रेमी, दग्ध पंख
शिशु-शलभ, करोगे क्या प्रकाश, छूँछे प्रकाश से?
क्या प्रकाश करता जो होती नही मातृ-भू?
किरणो मे हँसने को सतरँग फूल न होते,
उन्हे चूमने को न मचलती चपल लहरियाँ,
और साँस लेती न कही होती हरीतिमा?

होता तप्ताकाश शून्य, जलता जीवन मरु—
होता एकाकी प्रकाश, कुछ और न होता।
मैं प्रकाश का हूँ प्रकाश, मै अधकार का
अधकार हूँ।—मै, जो जन भू जीवनमय हूँ।
मेरे लिए प्रकाश - तमस है, - मैं ही जीवित
सार्थकता हूँ सत्ता के निष्क्रिय छोरो की।
मै ही शाश्वत रस समुद्र, अमृतत्व तत्व हूँ,
जीवन सत्य अमर,—जड चेतन उपादान भर।
ओ ईश्वर के विरही, मै सयुक्त सभी से,
कैसा कल्पित विरह तुम्हारा तुहिन अश्रुमय?
चिर साध्वी जन प्रकृति, विरहिणी हो सकती वह?—
नित नव नव रूपो मे जो आलिगित मुझसे।
तुमको ईश्वर पर विश्वास नही? जो नित नव
सत्यो मे विकसित होता जग जीवन क्रम मे।
तुम केवल विधिवत् सत्कर्म किए जाते हो?—
जो अकर्म औ' असत्कर्म बन गए युगो से।।

स्वर्दूती

अमर काव्य यह, परपरा को करता विकसित।

सौवर्ण

प्राण हरित जीवन पादप मै,—मूल सत्य मे,
सुदृढ स्कध सयम, सकल्प महत् शाखाएँ,
मानस विकसित सुमन, सूक्ष्म स्मित भाव रग दल,
सुरभि चेतना, सुख विकास, मधु प्रेम मर्म धन,—
आशाऽकाक्षा के मधुपो से शाश्वत गुजित।
नव युग में मै जन मानवता का प्रतीक हूँ,
ज्योति प्रीति, आनद मधुरिमा मे नव स्पदित।
नव सस्कृति का सारथि, नव आध्यात्मिकता मै,
नव विकसित इद्रिय, मन प्राणो से अतिचेतन।
तत्व रूप मे नही समझ पाते जो मुझको,
वे मूर्तित देखे मुझको नव जन जीवन में।
युग युग के जीवन का पर्वत सुलग उठा अब
नव शोभा लपटो मे,—जाग्रत् जन समूह जो।
मै भावी चैतन्य, मूर्त कल्पना गात्र मे,
मै धन मानव,—सर्व श्रेष्ठ, जन श्रेयस्कर जो
उसे बाँधने आया भू जीवन अचल मे,
शोषण, दुख, अन्याय, दैन्य का भूमि भार हर।

शतियो के पतझारो मे भरने आया मै
नव मधु की गुजरित मधुरिमा ज्वाल पल्लवित।
सप्त चेतना भुवनो के अक्षय वैभव को
लोक चेतना मे करने आया हूँ मूर्तित।
एक धरा जीवन मे जन के मन प्राणो के
रुचि स्वभाव वैचित्र्यो को कर नव सयोजित,
युग युग के मानस सचय का समीकरण कर
नव मानवता मे करने आया हूँ वितरित।
स्वप्न गवाक्षो-से दीपित अब मुक्त काल क्षण,
धरा वक्ष मे देश खड हो रहे समन्वित,
युग युग से विच्छिन्न चेतना के प्रकाश को
मैं जीवन सूत्रो मे करने आया गुम्फित।

स्वर्दूत

अजर काव्य यह, इसमे जन भावी अतर्हित।

सौवर्ण

आज धरा जीवन अचल मे बँधी प्रेरणा,
आज जनो के साथ प्राणप्रद सृजन शक्ति नव,
अब न कला के स्वप्न निकुजो मे पल सकते,
अगणित वक्षो मे अब स्पदित नई चेतना।
नव जीवन सौन्दर्य उग रहा जन धरणी मे,
मनुष्यत्व की फसल उगलती हँसती भू रज,
नव मूल्यो की स्वर्णिम मजरियो से भूषित।

(झझा रथ में प्रस्थान : नव वसंतागम का वादित्र सगीत)

स्वर्दूती

विस्मय - स्तभित - से लगते निष्प्रभ हो सुरगण,
नवोन्मेष उद्वेलित, गोपन सभाषण रत।

एक देव

धरा गर्भ से प्रकट, धरा मे समा गया, लो,
वह तेजोमय स्वर्ण पुरुष फिर, शत सूर्योज्वल,
स्वर्णिम पावक से दीपित कर देवो का मन।
बरस रहे शत नि स्वर निर्झर अधिमानस से
उज्वल तप्त हिरण्य द्रवित, नव युग प्रभात मे, —
उतर रही हो स्वर्गंगा आलोक वारि स्मित,
स्वर्ण नूपुरो से मुखरित सुर बालाओ के,—
जीवन शोभा से उर्वर करने जन भू को।

देवी

चलो, चले हम धरा स्वर्ग मे, जन मानव बन,
छोड त्रिदिव की मानस रति प्रिय भोग भूमि को,
प्रगति विमुख जो, चिर निष्क्रिय, वचित विकास से।
मर्त्य लोक ही निश्चय भावी का नदन वन।

(देवों का अवतरण सूचक वादित्र सगीत)

स्वर्दूती

स्वर्ण पृष्ठ खुल रहा लोक जीवन का भू पर,
जन मानवता प्राण प्रेरणा से हिल्लोलित।
नव जन ग्रामो, नव जन नगरो मे सुख मुखरित
नव युग अरुणोदय हँसता नव आशा दीपित।
स्वर्ण घटियाँ सी बज उठती रजत अनिल मे,
मुग्ध क्षितिज वातायन लगते स्वप्न मजरित,
स्वर्ग दूत सा उतर रहा नव युग प्रभात अब
शुभ्र लालिमा भरा रश्मियो के निर्झर सा,
श्वेत कपोतो से अबर पथ मे अभिनदित।
हर्ष मुखर खग मिथुन जग रहे ज्योति नीड मे,
रत्न मर्मरित-से लगते तरुओ के पल्लव।
द्रवित हो उठी शून्य नीलिमा अपलक नभ की
देख धरा मुख, शत रत्नच्छायाओ मे कँप!
निखिल विश्व आनद छद सा प्राण तरगित
अगणित स्वर लय सगतियो मे जीवन मुखरित।

स्वर्दूत

दैन्य दुख मिट गए, छँट गए धूमिल पर्वत,
घृणा द्वेष स्पर्धा के, भय सशय पीडन के,
जन शोषण, अन्याय, अनय से मुक्त धरा पर
एक छत्र अब शाति, साम्य, स्वातत्र्य प्रतिष्ठित।
शुभ्र शाति, जो सर्व श्रेष्ठ गति मानव मन की,
जिसके स्वर्णिम पखो मे जन भू का जीवन
सृजन हर्ष से स्पदित, सतरँग श्री शोभा मे
विचरण करता बाधा बधन हीन, विश्व मे।
नव युग उत्सव मना रहे, उल्लसित धरा जन
प्रीति सूत्र मे गुँथे, मजरित तन मन लोचन,
नव वसत मे नव जीवन मधु सचय करने।

समवेत गीत

युग प्रभात नव, युग वसत नव
जन भू का अभिनदन गाएँ।

कितने हृदयो के मृदु स्पदन
कितनो के मधु हास, अश्रुकण
कब से मधु सुमनो मे सचित
आओ इनके हार बनाएँ।

आकुल उच्छ्वासो की सौरभ,
उत्सुक अपलक नयनो के नभ,
इन नीरव मुकुलो मे मूर्तित,
स्मृतियो की माला पहनाएँ।

युग युग की वह मौन प्रतीक्षा,
मर्म गुजरित जीवन दीक्षा,
सफल आज, जन भू मे अर्जित,
इन्हे 'स्नेह से हृदय ल

ये प्रतीक जन हृदय मिलन के,
जन पूजन, जन आराधन के,
भाव युगो के इनमे विकसित,
इन फूलो को शीश च

(सौवर्ण से)
सन् १९५४

गीतों का दर्पण

यदि मरणोन्मुख वर्तमान से
ऊब गया हो कटु मन,
उठते हो न निराश लौह पग,
रुद्ध श्वास हो जीवन।
रिक्त बालुका यत्र,—खिसक हो
चुके सुनहले सब क्षण,
तर्कों वादो मे बदी हो
सिसक रहा उर स्पदन।

तो मेरे गीतो मे देखो
नव भविष्य की झाँकी,
नि स्वर शिखरो पर उडता
गाता सोने का पाँखी।
चीर कुहासो के क्षितिजो को
भर उडान दिग् भास्वर,
वह प्रभात नभ मे फैलाता
स्वर्णिम लपटो के पर।

दुबिधा के ये क्षितिज,—
मौन वे श्रद्धा शुभ्र दिगतर,
सत्यो के स्मित शिखर,
अमित उल्लास भरे वे अबर।
नीलम के रे अतरिक्ष,
विद्रुम प्रसार दिग् दीपित,
स्वप्नो के स्वर्गिक दूतो की
पद चापो से कपित।

प्राणो का पावक पछी यह,
मुक्त चेतना की गति,
प्रीति मधुरिमा सुषमा के स्वर,
अतर की स्वर सगति।

उज्वल गैरिक पख, चचु
मणि लोहित, गीत तरगित,
नील पीठ, मुक्ताभ वक्ष,
चल पुच्छ हरित दिग्लबित!

दृढ सयम ही पीठ, शाति ही
वक्ष, पक्ष मन चेतन,
पुच्छ प्रगति क्रम, सुरुचि चचु,
लुठित छाया भू जीवन!
हीरक चितवन, मनसिज शर-से
स्वर्ण पख निर्मम स्वर,
मर्म तमस को बेध, प्रीति व्रण
करते उर मे नि स्वर!

दिव्य गरुत रे यह, उड़ता
सत रज प्रसार कर अतिक्रम,
पैने पजो मे दबोच, नत
काल सर्प सा भू तम!
वह श्रद्धा का रे भविष्य,—
जो देश काल युग से पर,
स्वप्नो की सतरँग शोभा से
रँग लो हे निज अतर!

मन से प्राणो मे, प्राणो से
जीवन मे कर मूर्तित,
शोभा आकृति मे जन भू का
स्वर्ग करो नव निर्मित!
उस भविष्य ही की छाया
इस वर्तमान के मुख पर,
सदा रेंगता रहा रहस छवि-
इगित पर जो खिचकर!

यह भावी का वर्तमान रे
युग प्रभात सा प्रहसित,
कढ अतीत के धूमो से जो
नव क्षितिजो मे विकसित!
यदि भू के प्राणो का जीवन
करना हो सयोजित,
तो अतरतम मे प्रवेश कर
करो बाह्य पट विस्तृत!

वर्तमान से छिन्न तुम्हे जो
लगता रिक्त भविष्यत्—
वह नव मानव का मुख,
अकित काल पटी पर अक्षत!
नही भविष्यत् रे वह,
मानवता की आत्मा विकसित,
जड भू जीवन मे, जन मन मे
करना जिसे प्रतिष्ठित!

यदि यथार्थ की चकाचौध से
मूढ दृष्टि अब निष्फल,—
डूबो गीतो मे, जिनका
चेतना द्रवित अतस्तल!
लहराता आनद अमृत रे
इनमे शाश्वत उज्ज्वल,
ये रेती की चमक न,
प्यासा रखता जिसका मृग जल!

यदि ह्रासोन्मुख वर्तमान से
ऊब गया हो अब मन,
गीतो के दर्पण मे देखो,
अपना श्री-नव आनन!

जिज्ञासा

कौन स्रोत ये!
ये किन आकाशो मे खोए
किन अवाक् शिखरो से झरते?
किस प्रशात समतल प्रदेश मे
रजत फेन मुक्ता रव भरते!
ये किन स्वच्छ अतलताओ की
मौन नीलिमाओ मे बहते?
किस सुख के स्पर्शों से, स्वर्णिम
हिलकोरो मे कँपते रहते!

कौन स्रोत ये !
किरणो के वृतो पर खिलते,
भावो के सतरँग स्वप्नोत्पल,
मनोलहरियो पर बिम्बित कर
रक्त पीत सित नील ज्योति दल !
नामहीन सौरभ मे मज्जित
हो उठता उच्छ्वसित दिगचल,
रहस गुजरण मे लय होता
शब्दहीन तन्मय अतस्तल !

कौन स्रोत ये !
श्रद्धा औ' विश्वास – रुपहले
राज मरालो के - से जोडे
तिरते सात्विक उर सरसी मे
शुभ्र सुनहली ग्रीवा मोडे !
शोभा की स्वर्गिक उडान से
भर जाता सहसा अपलक मन,
बजते नव छदो के नूपुर
अलिखित गीतो के प्रिय पद बन !

बह जाते सीमाओ के तट
हर्षो के ज्वारो मे अविगत,
लहरा उठता अतल नील से
नाम रूप के ऊपर शाश्वत !
कौन स्रोत ये !

जन्म दिवस

(२० मई १९००)

आ, चौवन निदाघ अब बीते,
जीवन के कलशो - से रीते ?
चौवन मधु निदाघ अब बीते !
गत युग के ऐश्वर्य चिह्न - से, मधु के अतिम
ताम्र हरित कुछ पल्लव, कुछ कलि कोरक स्वर्णिम
जाडे से ठिठुरे, डालो पर बिलमाए थे,
रजत कुहासे पट मे लिपटे अलसाए थे,–
धरती पर जब शिशु ने पहिले आँखे खोली !
(आँगन के तरु पर तब क्या गिरि कोयल बोली ?)

विजन पहाडी प्रात, हिमालय का था अचल,
स्नेह क्रोड शैशव का, गिरि परियो का प्रिय स्थल,
धूपछाँह का स्वप्न नीड, श्यामल, स्मृति-कोमल,
वन फूलो का गध दोल, ऋतु मारुत चचल।
नव प्रभात बेला थी, नव जीवन अरुणोदय,
विगत शती थी भुक्तप्राय, युग सधि का समय।
ओस हरी ही थी, तृण तरु की पलको पर जल,
मातृ चेतना शिशु को दे प्राणो का सबल
अतर्हित जब हुई,—भाग्य छल कहिए विधि बल।
जन्म मरण आए थे सँग-सँग बन हमजोली,
मृत्यु अक मे जीवन ने जब आँखे खोली।

आ, समदृष्टि प्रकृति। विषण्ण आँगन मे स्वर्गिक स्मिति भर
फूल उठे थे आडू, ललछौहे मुकुलो मे सुदर।
सेबो की कलियाँ प्रभूत, रक्तिम छीटो से शोभित,
खिली मँझोले रजत फलो मे करती थी मन मोहित।
पइयो[१] की प्रमुदित पखडियाँ उडती थी पिछवारे,
महक रहे थे नीबू, कुसुमो मे रज गध सँवारे।
नारगी, अखरोट, नाक के फूल, मजरी, कलियाँ
बढा रही थी ऋतु शोभा, केले की फूली फलियाँ।
काफल[२] थे रँग रहे, फूल मे थी फल लिए खुबानी,
लाल बुरूसो[३] के मधु छत्तो से थी भरी वनानी।
हँसती थी घाटियाँ, हिसालू[४] खिले सुनहले क्षण मे,
बेडू[५] थे बैगनी, लसलसे, पके अधपके वन मे।
लदे अमौए गुच्छो मे थे जँगली मूँगी दाने,
टूट रहे थे तोते खटमिट्ठे वन-मेवे खाने।
देवदारु कुकुम का स्वर्णिम टँगा सहन मे था नभ,
साँसे पीती थी चीडो की मर्मर, नीरुज सौरभ।
मूक नवागत का करती थी शैल प्रकृति अभिनदन,—
वर्षों बाद किशोर हुआ इन दृश्यो के प्रति चेतन।
सोता था क्या भूँक रात भर झबरा कालू पाजी?
मस्त भोटिया शेर, बाघ से ली थी जिसने बाजी?
सी सी सीटी बजा, आ रहा होगा भाजी देने
मगल बाबर्ची का नटखट लडका पैसे लेने।

---

१. पहाड़ी चेरी। २. छोटा लाल पहाडी फल। ३. रोडोडड्रम के फूल। ४. पीले पहाड़ी फल। ५. पहाडी अंजीर।

उमड चीटियो-से, किलबिल कर, माली धर निज डलियाँ
चुनते होगे हरी चाय की बटी सुनहरी कलियाँ।

हाथ जोड कर, बकता होगा खडा मसखरा बिस्ना,
'अब हजूर, पेसन मिल जाए, और नही कुछ तिस्ना।
धौली के सीघो-से कँपते हाथ पैर कर लकलक,
पानी के बहँगे लाने मे साँस फूल जाती थक।
जाडे से हड्डी बजती,—सरकार, हुआ बूढा तन,
मौना[1] के छत्ते करते फूटे कानो मे भनभन।
अब मोती पर जीन कसेगी? देखे आप किसी छिन,
कान खडे कर, टाप उठाए, करता दिन भर हिनहिन।
आगे के सब दाँत निगल वह चुका साथ चारे के,
पीठ झुक गई, पेसन के दिन अब उस बेचारे के।'
ही ही हँस, जुट गया काम मे होगा तुरत लगन से,
भृत्य पुरातन, शुभ दिन की कर मौन कामना मन से।

निश्चय ही, कटती होगी तब जौ गेहूँ की बाली,
कटि मे खोस दराती, सिर पर धर सोने की डाली,
जाती होगी खेतो मे प्रात मखमल की चोली,
मार छीट लँहगे मे फेटा,—बहू गाँव की भोली।
ढोरो के सँग निकल छोकरे खुले हरे गोचर मे
रोल मचाते होगे, खेल कबड्डी हो-हो स्वर मे।
उचक चौक खरहे झाडी मे छिपते होगे डर से,
हिरन चौकडी मार, भागते होगे चकित उधर से।
कधे से टाँगी उतार कर, हाथ कनपटी पर धर,
गाता होगा गँवई छैला खडा किसी चोटी पर।
घास छीलती होगी हरी तलैटी मे नथवाली
देख सुवा[2] को छाई होगी आँखो मे हरियाली।
छेडी होगी मस्त तान स्वर मिला मुखर मर्मर से,
मधुर प्रतिध्वनि आई होगी घाटी के भीतर से।

'बिजली बसती घन मे,
आग लगा दी खिल बुरूस ने वन मे, तूने तन मे।
मेहदी पिसती सिल मे,
तू न देख पाए, तेरी ही रगत टूटे दिल मे।

---

१. मधुमक्खी २. तोता, प्रेमिका।

मन उडता पाँखो मे,
सुवा घूमता वन-वन, तू घूमा करती आँखो मे!
साँझ हुई आँगन मे,
तुझे देख कैसे बतलाऊँ क्या हो जाता मन मे!
बदली छाई दिन मे,
नई उमर की बाढ नवेली उतर जायगी छिन मे!'

मीठे स्वर मे देती होगी प्यार भरी धनि गाली,—
'क्या खाकर भुखमरे, करेगा तू मेरी रखवाली!
सास सिहिनी सी है मेरी, ससुर एक मे सौ-से,
जेठ बैल-से है मतवाले, देवर मेरे गौ-से!
सैया मेरे कामधेनु-से, मे जाऊँ बलिहारी,
वे चदन मै गध-छाँह, वे चदा मै उजियारी!
वे हिरना मै हिरनी, पीते मिल झरने का पानी,
तू प्यासा तो खोज कही जलधार, मूढ, बकध्यानी!
ननदी मेरी काली नागिन, जी हो उसे खिझा तू,
वीर मरद जो, बीन बजा कर पहिले उसे रिझा तू,—
और नही तो, क्या चुल्लू भर पानी तुझे नही है?'
'बहती गगा छोड कहाँ जाऊँ धनि, क्या न सही है?'
गूँज रही होगी, गिरि वन अबर मे दुहरी ताने,
और पास खिच आए होगे, दो जन इसी बहाने!

हाँ, तब ऊषा स्वर्ग क्षितिज पर स्वर्णिम मगल घट भर
उतरी थी युग उदय शिखर पर माणिक सूर्य मुकुट धर!
पहिले से जग कर खग, ऊँचे गिरि वासो के कारण,
गाते थे नव स्वर लय गति में नवल जागरण चारण!
नील, प्रतीक्षा था नीरव,—अनुराग द्रवित थे लोचन,
गध तुहिन से ग्रथित रेशमी पट सा मसृण समीरण!
रँग रँग के वन फूलो से गुफित मखमल के शाद्वल
तल्प सँजोए थे स्मित, शैशव के हित, क्रीडा कोमल!

देख रहा था खडा निकट ही हिमवत् नव जन्मोत्सव,
गौरव से उन्नत कर मस्तक, बरसा आशीर्वैभव!
अमरो का अधिवास, पुण्य शिखरो से अक्षय कल्पित,
सात्विक आत्मोल्लास, चेतना मे एकांत समाधित!
स्वर्गिक गरिमा मे उठकर, नैसर्गिक सुषमा मे स्थित
स्फटिक शृग निर्वाक् नीलिमा मे थे स्वर्ण निमज्जित!
उतर रहा था हेम गौर चूडो पर मौन अतद्रित
ज्योति काय चैतन्य लोक सा नव प्रभात दिक् प्रहसित!

फहराते थे आरोहो पर नीहारो के केतन,
शुभ्रारुण छायातप कपित, रश्मि ज्वलित नव चेतन।
अतल गहनताओ से जग उत्कर्षों मे नभ चुबित
आध्यात्मिक परिवेश शात, लगता था विस्मय स्तभित।
तभी अगोचर अतरिक्ष मे, अतर्जग के भीतर
नए शिखर थे निखर रहे शत सूक्ष्म विभव के भास्वर।
जिन पर नूतन युग प्रभात था उदय हो रहा गोपन,
रजत नील स्वर्णारुण श्रृगो पर भर स्वर्गिक प्लावन।
नयी शती थी जन्म ले रही काल दष्ट्र मे जीवित,
स्नेह मूर्ति सी विगत शती थी कृच्छ्र वेदना मूर्छित।
नव चेतन था अभिनव, मानस शव सा पुण्य पुरातन,
नाल मुकुल।—पर इनका स्मृति पावन सबध सनातन।
शिशु निमित्त था, नव युग था अवतरित हो रहा निश्चय,
बहिरतर का धूम चीर हँसता था नव स्वर्णोदय।

इसीलिए, सभव, हिमाद्रि का स्वर्गोन्मुख आरोहण
युग सनाभि शिशु के मन के हित रहा महत् आकर्षण।
इद्रचाप के ज्योति सेतु पर नव स्वप्नो के पग धर
विचरा वह मोहित श्रृगो पर शोभा तन्मय अतर।
महिमान्वित कर मन क्षितिज को, दृष्टि सरणि को विस्तृत,
दीपित करते थे शैशव पथ सौम्य शिखर दिक् शोभित।
मुग्ध प्रकृति छबि नव किशोर मानस मे तिरती थी नित
स्वर्ग अप्सरी सी तुषार सरसी सुषमा मे बिम्बित।

काँव काँव कर आँगन मे कौए गाते थे स्वागत,
गुह्य शक्तियाँ तब अलक्ष्य मे निश्चय होगी जाग्रत्।
अवचेतन निश्चेतन हो होना था युग के मथित,
मानस को उन्नीत, देह के जड अणुओ को ज्योतित।
चिर विभक्त को युक्त, रुद्ध को मुक्त, खड को पूरित,
धरा विरोधो को होना था विश्व-ऐक्य सयोजित।
कुत्सित को सुदर, सुदर को बनना था सुदरतर,
शिव को शिवतर, लोक सत्य को मानव सत्य महत्तर।
दूर कही घिरते थे, सभव, धीरे, क्राति बलाहक,
रक्तिम लपटो के पर्वत, भू के नव जीवन वाहक।
घुमड रही थी क्रुद्ध धरा उर मे हुकारे भयानक,
ज्वालामुखी उगलने को था रुद्ध उदर का पावक।

झझा का था जन्म दोल वह, ऋतु कुसुमो से गुजित,
प्रलय सृजन थे साथ खेलते,—प्रभु की दया अपरिमित!
नही जानता, कब कृतार्थ होगा भू पर नव चेतन,
तम पर अमर प्रकाश, मृत्यु पर विजयी शाश्वत जीवन!
हिमवत् का विश्वास अटल ले, नव प्रभात की आशा,
नील मौन मे खोए शृगो की अनत जिज्ञासा,—
प्रलय क्रोड मे खीच प्रौढ शिशु अमृत प्राणप्रद श्वासा,
घृणा द्वेष मे लिए हृदय मे महत् प्रेम अभिलाषा!—
खोज रहा वह युग विनाश मे नव जीवन परिभाषा,
विश्व ह्रास मे—नवल चेतना, सृजन प्रेरणा, भाषा!

हॉ, चौवन निदाघ अब बीते,
रिक्त अमृत - विष के मटको - से मीठे तीते,—
चौवन मधु निदाघ अब बीते!

आवाहन

ओ जन युग की नव ऊषाओ,
आओ, नव क्षितिजो पर आओ!
स्वर्गिक शिखरो के प्रकाश मे
भू के शिखरो को नहलाओ!

आत्म मुक्त स्वर्णिम उडान भर,
शून्य नील के कूल पार कर,
शिखरो से समतल पर उतरो,
आगे के अरुणोदय लाओ!

महत् स्फुरण का यह नीरव क्षण,
पौ फटने के पहले का तम,
दीपित कर निशिएँ अतीत की
नव ज्वालाओ मे लिपटाओ!

गीत अधजगे तरु नीडो मे,
स्वप्न अधमुँदे उर पलको मे,
मौन प्रतीक्षा का अनत यह,
वातायन से मुख दिखलाओ!

ओ नव युग की नव ऊषाओ,
जन मानस क्षितिजो पर आओ!

उच्च नभस्वत पथ की वासिनि,
तुहिन पक्ति रजतोज्वल हासिनि,
धूल धूसरित भू के मग मे
विचरो, कचन घट ढलकाओ!

ज्योतिर्मय नभ शतदल मे जग,
शुभ्र पीत पखडियो मे हँस,
अमृत कोष भुवनो की सौरभ
जन की साँसो मे भर जाओ!

शाश्वत ऊषाओ के क्रम मे
नव चेतन केतन फहरा कर
तृण तरु पर, गिरि सरि सागर पर
रश्मि पख शोभा बरसाओ!

अध गुहाओ मे प्रवेश कर
कुठित सत्यो के सोए स्तर
प्रीति शिखाओ मे प्रोज्वल कर
मनोभूमि पर उन्हे जगाओ!

ओ जन युग की नव ऊषाओ,
नव विकास क्षितिजो पर आओ!

सप्त वर्ण स्मित अश्वो पर चढ,
मरुतो के पथ पर सवेग बढ,
ज्योति रश्मियाँ निज कर मे धर
भू का रथ निर्बाध चलाओ!

वस्तु तमस को दिक् प्रहसित कर,
रुद्ध दिशाओ को विस्तृत कर,
आने वाले सूर्योदय के
मुख से तेज पटल हटाओ!

विगत नवागत ऊषाओ मे
अत स्मित नव स्वर सगति भर,
ओ प्राचीन प्रभातो की श्री,
नए प्रभातो मे मुसकाओ!

निज असीम आभा प्रसरित कर
भावी ऊषाओ के नभ मे,
विगत अनागत के छोरो पर
रश्मि सेतु बन, उन्हे मिलाओ!

ओ नवयुग की नव ऊषाओ
नव प्रकाश क्षितिजो पर आओ!
स्वर्गिक शिखरो के प्रवाह मे
भू के शिखरो को नहलाओ!

स्वर्ण मरदो से अयि विरचित,
सूक्ष्म रजत क्षौमो मे भूषित,
शत सुरधनुओ से हो वेष्टित
जन युग का अभिवादन पाओ!

ओ नव युग की नव ऊषाओ,
युग प्रभात क्षितिजो पर आओ!

स्मृति

वन फूलो की तरु डाली मे
गाती अह, निर्दय गिरि कोयल,
काले कौओ के बीच पली,
मुँहजली, प्राण करती विह्वल!
कोकिल का ज्वाला का गायन,
गायन मे मर्म व्यथा मादन,
उस मूक व्यथा मे लिपटी स्मृति,
स्मृति पट मे प्रीति कथा पावन!

वह प्रीति-तुम्हारी ही प्रिय निधि,
निधि, चिर शोभा की! (जो अनत
कलि कुसुमो के अगो मे खिल
बनती रहती जीवन वसत!)
उस शोभा का स्वप्नो का तन,
(जिन स्वप्नो से विस्मित लोचन!—
जो स्वप्न मूर्त हो सके नही,
भरते उर मे स्वर्णिम गुजन!)

उस तन की भाव द्रवित आकृति,—
(जो धूपछाँह पट पर अकित!)
आकृति की खोई सी रेखा
लहरो मे बेला सी मज्जित!

यौवन बेला वह, स्वप्न लिखी
छबि रेखाएँ जिसमे ओझल,
तुम अतर्मुख शोभा धारा
बहती अब प्राणो मे शीतल!
प्राणो की फूलो की डाली
स्मृति की छाया मधु की कोयल,
यह गीति व्यथा, अतर्मुख स्वर,
वह प्रीति कथा, धारा निश्छल!

आत्म बोध

आड़ू नीबू की डालो सी—
स्वर्ण शुभ्र कलियो मे पुलकित,—
तुम्हे अक भरने को मेरी
बाँहे युग युग से लालायित!
ओ नित नयी क्षितिज की शोभे,
पत्र हीन मै पतझर का वन,—
शून्य नील की नीरवता को
प्राणो मे बाँधे हूँ उन्मन!

मुझमें भी बहता वन शोणित
हरा भरा,—मरकत सा विगलित,—
मूक वनस्पति जीवन मेरा
मलय स्पर्श पा होता मुकुलित!
वन का आदिम प्राणी तरु मै
जिसने केवल बढना जाना,—
यह सयोग कि खिले कुसुम कलि,
नीडो ने बरसाया गाना?

माना, इन डालो मे काँटे,
गहरे चिन्तन के जिनके व्रण,—
मर्म गूँज के बिना मधुप क्या
होता सुखी, चूम मधु के कण?
अकथित थी इच्छा,—सुमनो मे
हँस, उड गई अमित सुगध बन,
मूल रहे मिट्टी से लिपटे
आए बहु हेमंत, ग्रीष्म, घन!

अब फिर मे मधुऋतु आने को,—
पर, मै जान गया हूँ, निश्चित
मै ही स्वर्ग शिखाओ मे जल
नए क्षितिज करता हूँ निर्मित।
यह मेरी ही अमृत चेतना,—
रिक्त पात्र बन जिसका पतझर
नयी प्राप्ति के नव वसंत मे
नव श्री शोभा से जाता भर।

शांति और क्रांति

शाति चाहिए शाति। रजत अवकाश चाहिए
मानव को, मानस वह. महत् प्रकाश चाहिए,
आत्मा वह हाँ, अन्न, वस्त्र, आवास चाहिए,
देही भी वह —आज मुख्यत देही वह, क्षण—
मनोविलासी,—आत्मा बनना है कल उसको।

हाय, अभागा, बुरी तरह से उलझ गया वह
बाहर के अग-जग मैं, बाहर के जीवन मे,—
जहाँ भयानक अधकार छाया युगात का!
मानव के भीतर का जग, भीतर का जीवन
आज खोखला, सूना, जीवन-मृत, छाया सा—
गूढ़ सस्कारो से चालित, प्रेतो से पीडित।
खाई खदक मे, खोहो मे, बीहड मग मे
भटक गए जन के पग सकट की रेती मे।
दल दल मे फँस गया मत्त भौतिक युग, गज सा,
अपनी ही गरिमा के दुसह बोझ से दबा।
जीवन तृष्णा, चक्की के पाटो सी, उसके
घायल पैरो से है लिपट गई, बेडी बन।
धृष्ट, निरकुश, उच्छृखल नर, आज, शील के
स्वर्णाकुश के प्रति असहिष्णु, अहता शासित।

सोच रहा मैं,—नही स्पष्टत देख रहा मै,
महत् युगातर आज उपस्थित मनुज द्वार पर।—
बदल रहे मानव के भौतिक, कायिक, प्राणिक,
सूक्ष्म मानसिक स्तर, आध्यात्मिक भुवन अगोचर।

बदल रहा, नि सशय, मानव ईश्वर भी अब,—
युग युग से जो परिचालित करता आया नित
मानव जग को, लोक नियति को, जीवन मन को।
जैवी स्थिति से उच्च भागवत स्थिति तक, सप्रति,
घूम रहा युग परिवर्तन का चक्र अकुठित।
आज घोर जन कोलाहल के भीतर भी मैं
सुनता हूँ स्वर शब्द हीन सगीत अतद्रित,—
मन के श्रवणो मे जो गूँजा करता अविरत।
इस अणु उद्जन के विनाश के दारुण युग मे
सृजन निरत है सूक्ष्म सूक्ष्मतर अमर शक्तियाँ
मानव के अतरतम मे,—जिनका स्वप्नो का
अक्षय वैभव, अतिक्रम कर युग के यथार्थ को,
अकथित शोभा भुवनो मे पल्लवित हो रहा
मानस की अपलक आँखो के सम्मुख प्रतिक्षण।
सूक्ष्म सृजन चल रहा नाश के स्थूल चरण धर।

कवि कपोल कल्पना नही,—अनुभूत सत्य यह,—
घोर भ्रातियो के युग का निभ्रात सत्य यह,
आरोहण कर रही मनुज चेतना निरतर
शिखरो से नव शिखरो पर अब, उठती गिरती
सघर्षण करती, कराहती,—चिर अपराजित।
इसीलिए, मै शाति क्राति,—सहार सृजन को,
विजय पराजय, प्रेम घृणा, उत्थान पतन को,
आशा कुठा को, युग के सुदर कुरूप को
बाँहो मे हूँ आज समेटे,—उन्हे परस्पर
पूरक, एक, अभिन्न मान कर,—युग विवर्त के
क्रदन किलकारो मे ध्यानावस्थित रह कर।
विस्मय क्या, यदि बदल रहा आर्थिक, सामाजिक
धार्मिक, वैयक्तिक मानव ? यदि मनुज चेतना
अब सामूहिक, वर्ग हीन बन रही बाह्यत,
बिखर रहे यदि विगत युगो के मन सगठन। —
क्या आश्चर्य, बदलता यदि आमूल मनुज जग।
स्वय, युगों का मानव ईश्वर बदल रहा अब,
निश्चेतन, उपचेतन, अतश्चेतन के जग
परिवर्तित हो रहे, नए मूल्यो मे विकसित।
उन पर आश्रित निखिल सास्कृतिक सबधों का
रूपातर हो रहा आज,—आवर्त शिखर मे

घूम, पुन जो सयोजित हो रहे धरा पर।
विगत निषेधो, रूढि, वर्जनाओ को सहसा
छिन्न भिन्न कर अपने प्रलयकर प्रवेग मे–
विस्तृत कर जीवन पथ, नि सृत प्राणो का रथ।
नैतिक आध्यात्मिक अतीत सक्रमण कर रहा,–
निखर रहे आदर्श लोक, सौन्दर्य तत्व नव।
आज नया मानव ईश्वर अवतरित हो रहा
स्वर्ण रश्मियो से स्मित ऊषाओं के रथ पर,
तडित् स्फुरित लतिकाओ मे लिपटे पर्वत सा,
अगणित सुर वीणाओ के झकृत निर्झर सा,
उन्मद भृगो से गुजित नव कुसुमाकर सा।

भरते शत सीत्कार आज बाहर गत पतझर
सुलग रहा भीतर नव मधु का स्वर्गिक पावक।
आत्मा के गोपनतम अतर मे प्रवेश कर
मानव मन, हो अधिक पूर्ण, खुल रहा बहिर्मुख।
आज नाश के कर गढ रहे नवल मानव को
नव इद्रिय वह, विकसित इद्रिय, अति इद्रिय अब।
बदल रहा अब मानव ईश्वर – बदल रहा अब
मानव अतर, मानवता का रूपातर कर।

सोनजुही

सोनजुही की बेल नवेली,
एक वनस्पति वर्ष, हर्ष से खेली, फूली, फैली,–
सोनजुही की बेल नवेली।

ऑगन के बाडे पर चढ कर
दारु खभ को गलबॉही भर,
कुहनी टेक कँगूरे पर
वह मुसकाती अलबेली।
सोनजुही की बेल छबीली।
दुबली पतली देह लतर, लोनी लबाई,
–प्रेम डोर सी सहज सुहाई।
फूलो के गुच्छो-से उभरे अगो की गोलाई,
–निखरे रगो की गोराई–

शोभा की सारी सुघराई
जाने कब भुजगी ने पाई।
सौरभ के पलने मे झूली
मौन मधुरिमा मे निज भूली,
यह ममता की मधुर लता
मन के आँगन मे छाई।
सोनजुही की बेल लजीली
पहिले अब मुसकाई।

एक टाँग पर उचक खडी हो
मुग्धा वय से अधिक वडी हो,
पैर उठा, कृश पिडुली पर धर,
घुटना मोड, चित्र बन सुदर,
पल्लव देही से मृदु मासल,
खिसका धूपछाँह का आँचल,—
पख सीप के खोल पवन मे
वन की हरी परी आँगन मे
उठ अगूठे के बल ऊपर
उडने को अव छूने अबर।
सोनजुही की बेल हठीली
लटकी सधी अधर पर।

झालरदार गरारा पहने
स्वर्णिम कलियो के सज गहने
बूँटे कढी चूनरी फहरा
शोभा की लहरी सी लहरा,—
तारो की सी छाँह साँवली,
सीधे पग धरती न बाँवली,
कोमलता के भार से मरी
अग भगिमा भरी, छरहरी।
उद्भिद जग की सी निर्झरिणी
हरित नीर, बहती सी टहनी।
सोनजुही की बेल,
चौकडी भरती चचल हिरनी।
आकाक्षा सी उर से लिपटी,
प्राणो के रज तम् से चिपटी,

भू यौवन की सी अँगड़ाई,
मधु स्वप्नो की सी परछाँई,—
रीढ स्तभ का ले अवलबन
धरा चेतना करती रोहण—
आ, विकास पथ पर भू जीवन!
सोनजुही की बेल,
गध बन उडी, भरा नभ का मन!

मूल स्थूल धरती के भीतर
खीच अचेतन का तम बाहर,
वह अपने अतर का प्रिय धन
शाति ध्वजा सा शुभ्र मणि सुमन
कपित मृदुल हथेली पर धर,
उठा क्षीण भुजवृत उच्चतर,—
अर्पित करती, लो, प्रकाश को
निज अधरो के अमृत हास को,
प्राणो के स्वर्णिम हुलास को!
सोनजुही की बेल
समर्पित करती अतर्मुख विकास को,
उर सुवास को!

मानव मन कर रहा प्रतीक्षा
सोनजुही से ले नव दीक्षा,
उसके उर के अध राग से
प्राणो की हरिताभ आग से
फूटे चेतन शुभ्र शिखा,
जो सके दिखा
मानवता का पथ!
जीवन का रथ
— बढे !

प्रेम हो जग का इति अथ,
त्याग जन सारथि अभिमत!
सोनजुही दृष्टात,—
मनुज सघर्षों से श्लथ
रीढ कर्दम मे लथपथ!!

यह धरती कितना देती है !

मैंने छुटपन मे छिपकर पैसे बोए थे,
सोचा था, पैसो के प्यारे पेड उगेगे,
रुपयो की कलदार मधुर फसले खनकेगी,
और, फूल फल कर, मै मोटा सेठ बनूँगा।
पर बजर धरती मे एक न अकुर फूटा,
बध्या मिट्टी ने न एक भी पैसा उगला।—
सपने जाने कहाँ मिटे, कब धूल हो गए।
मै हताश हो, बाट जोहता रहा दिनो तक
बाल कल्पना के अपलक पाँवडे बिछा कर।
मै अबोध था, मैंने गलत बीज बोए थे,
ममता को रोपा था, तृष्णा को सीचा था।

अर्धशती हहराती निकल गई है तब से।
कितने ही मधु पतझर बीत गए अनजाने,
ग्रीष्म तपे, वर्षा झूली, शरदे मुसकाई,
सी सी कर हेमत कँपे, तरु झरे, खिले वन।
औ' जब फिर से गाढी ऊदी लालसा लिए
गहरे कजरारे बादल बरसे धरती पर,
मैंने, कौतूहल वश, आँगन के कोने की
गीली तह को यो ही उँगली से सहलाकर
बीज सेम के दबा दिए मिट्टी के नीचे।—
भू के अचल मे मणि माणिक बाँध दिए हो।
मै फिर भूल गया इस छोटी सी घटना को,
और बात भी क्या थी, याद जिसे रखता मन।
किन्तु, एक दिन जब मै सध्या को आँगन मे
टहल रहा था — तब सहसा मैंने जो देखा
उससे हर्ष विमूढ हो उठा मै विस्मय से।

देखा, आँगन मे कोने मे कई नवागत,
छोटी छोटी छाता ताने खड़े हुए है।
छाता कहूँ कि विजय पताकाएँ जीवन की,
या हथेलियाँ खोले थे वे नन्ही, प्यारी—
जो भी हो, वे हरे हरे उल्लास से भरे
पख मार कर उडने को उत्सुक लगते थे,—
डिम्ब तोड कर निकले चिडियो के बच्चो से।

निर्निमेष, क्षण भर, मै उनको रहा, देखता–
सहसा मुझे स्मरण हो आया,–कुछ दिन पहिले,
बीज सेम के रोपे थे मैंने आँगन मे,
और उन्ही से बौने पौधो की यह पलटन
मेरी आँखो के सम्मुख अब खडी गर्व से,
नन्हे नाटे पैर पटक, बढती जाती है।

तब से उनको देखता रहा–धीरे धीरे
अनगिनती पत्तो से लद, भर गई झाडियाँ,
हरे भरे टँग गए कई मखमली चँदोवे।
बेले फैल गई बल खा, आँगन मे लहरा,–
और सहारा लेकर बाडे की टट्टी का
हरे हरे सौ झरने फूट पडे ऊपर को,–
मैं अवाक् रह गया वश कैसे बढता है।
छोटे, तारो-से छितरे, फूलो के छीटे
झागो-से लिपटे लहरी श्यामल लतरो पर
सुदर लगते थे, मावस के हँसमुख नभ-से,
चोटी के मोती-से, आँचल के बूँटो-से।

ओह, समय पर उनमे कितनी फलियाँ टूटी।
कितनी सारी फलियाँ, कितनी प्यारी फलियाँ,–
पतली चौडी फलियाँ। उफ, उनकी क्या गिनती।
लबी लबी अगुलियो सी, नन्ही नन्ही
तलवारो सी, पन्ने के प्यारे हारो सी,
झूठ न समझे, चद्र कलाओ सी नित बढती,
सच्चे मोती की लडियो सी, ढेर ढेर खिल,
झुड झुड झिलमिल कर कचपचिया तारो सी।
आ, इतनी फलियाँ टूटी, जाडो भर खाई,
सुबह शाम वे घर घर पकी, पडोस पास के
जाने अनजाने सब लोगो मे बँटवाई,
बधु बाधवो, मित्रो, अभ्यागत, मँगतो ने
जी भर भर दिन रात मुहल्ले भर ने खाई।–
कितनी सारी फलियाँ, कितनी प्यारी फलियाँ।

यह धरती कितना देती है। धरती माता
कितना देती है अपने प्यारे पुत्रो को।
नही समझ पाया था मै उसके महत्व को,–
बचपन मे, छि, स्वार्थ लोभ वश पैसे बोकर।
रत्न प्रसविनी है वसुधा, अब समझ सका हूँ!

इसमे सच्ची समता के दाने बोने है,
इसमे जन की क्षमता के दाने बोने है,
इसमे मानव ममता के दाने बोने है,–
जिससे उगल सके फिर धूल सुनहली फसले
मानवता की,–जीवन श्रम से हँसे दिशाएँ!–
हम जैसा बोएँगे वैसा ही पाएँगे!

कौए, बतखे, मेढक

कहाँ मढा लाए सोने से अपनी चोचे
सारे कौए, प्यारे कौए,
कहाँ मढा लाए सोने से अपनी चोचे!

कौन सँदेसा लाए घर घर,
कौन सगुन स्वर, कौन अतिथि वर,
काले पखो के झुटपुट से
मन के रीते आँगन को भर!

कहाँ मढा लाए सोने से अपनी चोचे,
प्यारे कौए, न्यारे कौए,
कहाँ मढा लाए सोने से अपनी चोचे!
पौ फट गई! सुनहला युग-क्षण,–आओ, सोचे!

कहाँ जडा लाई हीरो से अपनी पाँखे
गोरी बतखे, भूरी बतखे,
कहाँ जडा लाई हीरो से अपनी पाँखे!

कौन झील, कैसा चेतन जल
जहाँ खिला वह स्वर्ण कमल दल,
पाप पक मे रहने वाली
कहाँ पा गई पुण्य तेज बल!

कहाँ जडा लाई हीरो से अपनी पाँखे
गोरी भोरी, भूरी बतखे,
कहाँ जडा लाई हीरो से अपनी पाँखे!
नई दृष्टि यह! पाप पुण्य फल? खोलो आँखे!

कहाँ गढा लाए कठो मे वीणा के स्वर
ये पीले, मटमैले मेढक,
कहाँ गढा लाए कठो मे वीणा के स्वर!

भू का उपचेतन आवाहन
उत्कठित करता रह रह मन,
कौन साध, किन श्रवणो के हित
करती क्या गोपन सभाषण ?
कहाँ गढा लाए कठो मे वीणा के स्वर
पीले, हरे, मटैले मेढक,
कहाँ गढा लाए कठो मे वीणा के स्वर—
प्रेम तत्व यह ! सृजनातुर अग जग का अतर !

ध्यान भूमि

आओ हे, सब ध्यान मौन, एकाग्र प्राण मन,
जीवन का अतरतम सत्य करे उद्घाटन !
पलक मूँद, अत स्थित, खोले मन के लोचन,
घटवासी को करे पूर्ण हम आत्म समर्पण !
लो, सुन पडता सूक्ष्म स्वर्ण भृगो का गुजन,
मन, धीरे, श्रद्धा पथ से करता आरोहण !
देखो, छँटता घने कुहासे का छाया घन
पलता जिसमे हास अश्रु स्मित जग का जीवन,—
जिसकी चपल भृकुटि पर इद्रधनुष सा प्रतिक्षण
हँसता मानव आशाऽकाक्षा का सम्मोहन !
ओझल होता अब वह बादल रश्मि विद्रवित
गर्जन सघर्षण मय, तृष्णा तडित् प्रकपित !
नए रुपहले क्षितिज निखरते मन के भीतर
आभा के रस स्रोत फूटते, पुलकित अतर !
जग के तम के साथ हुआ मैं का भ्रम भी लय,
लो, अवाक् आरोहो पर उडता मन निर्भय !
जहाँ शुभ्र सच्चिदानद के शिखर अतद्रित
निज असीम शाश्वत शोभा मे नि स्वर मज्जित !
मानव मन की अतिम गति, आत्मा की परिणति,
दिव्य स्पर्श पा निर्मल हो उठती पकिल मति !
आ, वह ऊपर छाया स्वर्णिम ज्वाला का घन
दीप्त प्रेरणा तडितो मे लिपटा अति चेतन !
बरस रहे शत सृजन प्रलय, शत देश काल क्षण,
श्री शोभा आनद मधुरिमा का भर प्लावन !

अमृत बिन्दुओ - से झरते स्मित ज्योति प्रीति कण
अमरो के सुख वैभव मे उर करता मज्जन।
भार हीन अक्षय प्रकाश से पीडित अतर
रहस भावना के स्वर्गों मे उठता ऊपर।
अतर्मन का शात व्योम रे यह नि:सशय
ऊर्ध्व प्रसारो मे खो जाए चित्त न तन्मय।
आओ, इस स्वर्गिक वाडव मे अवगाहन कर
लौट चले पावक पराग मधु का नव तन धर।
नव प्रकाश के बीज करे जन भू पर रोपण
शोभा महिमा से कृतार्थ हो मानव जीवन।

गिरि प्रांतर

उन नीलम ढालो पर लिपटे
रेशम के सुरधनु फहराते।
मरकत की घाटी मे सुलगे
वन फूलो के झरने गाते।
आरोहो पर मधु मर्मर पी
नि स्वर रजत समीर विचरती,
दूध धुली, ऊनी भापो की
किरणो की भेडे हिम चरती।

उन क्षितिजो की ज्योत्स्नाओ मे
परियॉ अभिसारो को आती,
धूपछाँह बीथी मे लुक छिप
हेम गौर शशि कला सुहाती।
घन नीहार ढली पीठो पर
साँझो की पग चाप बिछलती,
दिन मे, धरती की सलवट सी
मसृण घनो की छाया चलती।

भुजगो सी कधो पर लटकी
रज की रश्मि रज्जु बल खाती,
मत्र मुग्ध पटबीजन झमका
जादू की कदरा लुभाती।

चीलो - से मँडरा वन अधड
गूँगी खोहो मे खो जाते,
शिशुओ-से हिम ग्रीष्म मचल शत
निर्जन पलनो मे सो जाते।
पौ फटते, सीपिया नील से
गलित मोतिया काति निखरती,
उन शृगो पर जगे मौन मे
सृजन कल्पना देही धरती।
झॉक झरोखे से स्वप्नो के
सलज उषा नखशिख रँग जाती,
द्वाभाएँ हँस गिरि प्रातर मे
दिक् प्रभूत वैभव बरसाती।

स्फटिक वन

यह स्मृतियो का दग्ध स्फटिक वन।
शीत स्फटिक की शाखाओ पर
हिम जल धुले सीप के तरुदल
मन ही मन मधु मर्मर भरते,—
मन्त्रो का जिनमे अमोघ बल।
गलित मोतियो की फुहार सी
फूलो की पखडियाँ झर झर
शून्य मग्न करती अतर को
गध हीन सौरभ उँसास भर।
खग पजर बैठे पिंजर मे
भरते अबर मे उडान स्मित,
नि स्वर कल कूजन स्तवनो से
माया कानन को रख मुखरित।
श्वेत अस्थि के हिरन, चौकडी
भरते, नभ मे टँग कर निश्चल,
हरित नील हिलकोरो मे हिल
बहता पुष्करिणी का स्थिर जल।
अश्रु धूम का रजत कुहासा
ओढे रहता शापित प्रातर,
छाया सी ऊषा सध्याएँ
फिरती उन्मन चरण चाप धर।

यह काँटो से बोया आँगन
तुम धरो फूल के घायल पग,
मत कुम्हलाओ भू ज्वाला में
विचरो, विहँसे उपचेतन जग।
श्रद्धा सूई की नोक, उसी पर
तुम्हे खडे होकर अविचल
सकट के पर्वत झेल, ठेल
वितरित करना जीवन मगल।

लो, अब अपने को अतिक्रम कर
पीओ जन मन का घृणा गरल,
यह प्रीति सुधा, जो भू घट मे
वासना क्षुधा बन, रही मचल।
शत भू - कपो मे दौड रही
मानव प्राणो की रुद्ध साध,
ज्वालामुखियो के वमनो मे
बह, उबल रही तृष्णा अबाध।

ओ ज्योति तमस के अमृत पुरुष,
यह जन समुद्र का आवाहन,
तुम कूदो अतल धरा तम में,
पार्थिव युग सेतु बनो नूतन।
ओ भीषण सुदर, मेघ मौन
युग के विद्रोह भरे आनन,
गरजो, बरसो हे, मानस मरु
हो जीवन उर्वर, नव चेतन।

संदेश

मैं खोया खोया सा, उचाट मन, जाने कब
सो गया, तखत पर लुढ़क, अलस दोहपरी में,
दु स्वप्नो की छाया से पीडित, देर तलक
उपचेतन की गहरी निद्रा मे रहा मग्न।
जब सहसा आँख खुली तो मेरी छाती पर
था असतोष आ भारी रीता बोझ जमा।
मन को कचोटती थी उधेडबुन जाने क्या
अज्ञात हृदय मथन सा चलता था भीतर,—
अवसाद घुमडता था उर मे कडुवा, फीका।

सब अस्तव्यस्त विश्रृंखल लगता था जीवन,—
मेरा कमरा हो परिचित कमरा नही रहा,
जी ऊब ऊब उठता था, मन बैठा जाता।
मै सोच रहा था, जाने क्या हो गया मुझे,
मन किन अनजानी डगरो मे है भटक गया,—
कितने अँधियारे कोने है मानव मन के।
कुछ किए नही बनता, दिन यो ही बीत रहे,
पानी सी बहती आयु कभी क्या लौटेगी ?
इस निरुद्देश्य जीवन से किसको लाभ भला ?
भू भार बने रहने से तो मरना अच्छा।

इतने में मेरी दृष्टि फर्श पर जा अटकी,
जिस पर जाडे की चिट्टी, ढलती, नरम धूप
खिडकी की चौखट को कुछ लबी तिरछी कर
थी चमक रही टूटे दर्पण के टुकडे सी,—
पिघली चाँदी के थक्के सी छलकी चौडी।
जाजिम पर थी बन गई तलैया मोती की
जिसमे स्वप्नो की ज्वालाएँ लहराती थी,—
दूधिया भावना मे उफान उठ आया हो।
मै क्षण भर को मन के विषाद को भूल गया
वह धूप स्निग्ध चेतना स्पर्श सी लगी मुझे,—
ज्यो राजहस उतरा हो खिडकी के पथ से।
मेरा मन दुबिधा मुक्त हो गया, दुख भूल,
घन के घेरे से निकल चाँद हँस उठता ज्यो।

वह मौन नीलिमा निलयो मे बसने वाली
रुपहली घनो की अलके सहलाने वाली,—
वह सूर्यमुखी किरणो की परियो से वाहित
सकुमार सरोरुह - से स्तनवाली सलज धूप।
वह रजत प्रसारो मे स्वर्णिम अँगडाई भर
ऊषा की स्वप्निल पलको पर जगने वाली,
वह हेम हस पखो पर नित उडने वाली
गोरी ग्रीवा बाँहो वाली चपई धूप।
वह तुहिन वाष्प के धूपछाँह बल्कल पहनी
सौरभ मरद तन वाली, मलयज सनी धूप,
वह फूलो के मृदु, मुखडो पर हँसने वाली
नीले ढालो पर सोने वाली सुघर धूप।

वह हरी दूब के पॉवड पर चलने वाली
रेशमी लहरियो बीच बिछल जाने वाली,
वह मुक्ता स्मित सीपी के सतरँग पख खोल
शत इद्रधनुष फहराने वाली सजल धूप,—
वह चाँदी की शफरी-सी उछल अतल जल से
चमकीला वक्ष दिखा अकूल के पावक का,
मेरे कमरे के तुच्छ पटल पर, धूल भरे
मखमली गलीचे पर, चुपके सहमी बैठी
मेरे कठोर उर को कृतज्ञता कोमल कर
सुख द्रवित कर गई, प्रीति मौन सवेदन दे!

मै उसे देख, श्रद्धा सभ्रम से उठ बैठा,
वह मुझे देख स्नेहार्द्र दृष्टि, मुसकुरा उठी!
वह विश्व प्रकृति की दूती बन कर आई थी,
मै स्मृति विभोर, स्वप्नस्थ हो उठा कुछ क्षण को,
वह मेरे ही भीतर से मुझसे यो बोली —
'क्या हुआ तुम्हे, ओ जीवन शोभा के गायक,
तुम ज्योति प्रीति आशा के स्वर बरसाते थे,—
उल्लास मधुरिमा, श्री सुषमा के छद गूँथ
तुम अमरो को कर स्वप्न मूर्त धर लाते थे!
क्यो आज तुम्हारी वीणा वह नि स्पद पडी,
क्यो अब पावक के तार न मधु वर्षण करते?
कल्पना भोर के पछी सी उठ लपटो मे
क्यो नही स्वप्न पखी उडान भरती नभ मे?
'क्या सोच रहे हो? उठो, क्षुब्ध मन शात करो,
तुम भी क्या जग की चिन्ता के कर्दम मे सन
सदेह दग्ध, उद्भ्रात चित्त हो खोज रहे—
क्या है जीवन का ध्येय, प्रयोजन ससृति का,
सुख दुख क्यो है, मानव क्यो है, या तुम क्यो हो?

'तुम भी वादो के वेष्टन मे मन को लपेट
मानव जीवन के अमित सत्य का विकृत रूप
गढने को आतुर हो?—सस्ता सस्करण एक
निर्मित कर उसका, थोथे तर्कों के बल पर?—
चिर सृजन चेतना को, विकास क्रम को अनत
अजलि पुट मे बदी करने साहस कर!

'या भौतिक मूल्यो की वेदी पर बलि देकर
मानव मूल्यो की, तुम धरती पर नया स्वर्ग
रचने को व्याकुल हो, यत्रो के चक्रो मे
मानव का हृदय कुचल, लोहे की टापो से?
अथवा तुम हिसक स्वार्थों के पजे फैला
नोचना चाहते जीवन के सुदर मुख को?
तुम भूल गए क्या मातृ प्रकृति को, तुम जिसके
आँगन मे खेले कूदे, जिसके आँचल मे
सोए जागे, रोए गाए, हँस, बडे हुए।
जो बाल सहचरी रही तुम्हारी, स्वप्न प्रिया,
जो कला मुकुर बन गई तुम्हारे हाथो मे,—
तुम स्वप्न धनी हो जिसके, बने अमर शिल्पी।

'जिसने कोयल बन सिखलाया तुमको गाना,
मृदु गुजन भर बतलाया मधु सचय करना,—
फूलो की कोमल बाँहो के आलिगन भर।
जिसके रगो की भावुक तूली से तुमने
शोभा के पदतल रँगे, मनुज का मुख आँका,
जिससे लेकर मधु स्पर्श शब्द रस गध दृष्टि
तुमने स्वर निर्झर बरसाए सुख से मुखरित।
'अब जन नगरो की अधी गलियो मे खोए,
ऊँचे भवनो की काराओ मे बदी हो,
तुम अपनी ही चिन्ता मे घुलते जाते हो?
क्या लोक मान मर्यादा की पा स्थूल दृष्टि
निज सूक्ष्म स्वप्नदर्शी दृग तुमने मूँद लिए?

'लो, मै असीम का लाई हूँ सदेश तुम्हे।
आओ, फिर खुली प्रकृति की गोदी मे बैठो,
फिर दिक् प्रसन्न जीवन के आँगन मे खेलो,—
उद्देश्य हीन भी रहना जहाँ मधुर लगता।
फिर स्वप्न चरण धर विचरो शाश्वत के पथ मे,
कल्पना सेतु बाँधो भावी के क्षितिजो मे।
'मन को विराट् की आत्मा से कर सर्वयुक्त
तुम प्यार करो, सुदरता से रहना सीखो,—
जो अपने ही में पूर्ण स्वय है, लक्ष्य 'स्वय'।—
कवि, यही महत्तर ध्येय मनुज के जीवन का।'

मैं मन की कुठित कूप वृत्ति से बाहर हो
चिन्ताओ के दुर्बोध भँवर से निकल शीघ्र
पाहुन प्रकाश के निरवधि क्षण मे डूब गया,—
सुनहली धूप के करतल के शाश्वत में लय।
मन से ऊपर उठ, तन की सीमाओ से कढ,
फिर स्वस्थ समग्र, प्रफुल्ल पूर्ण बन, मोह मुक्त,
मैं विश्व प्रकृति की महदात्मा मे समा गया।
मुझको प्रसन्न मन देख, धूप सकुचा-कुम्हला—
बोली, 'अब बिदा। मुझे जाना है।—वह देखो,
किरणे अस्ताचल पर कचन पालकी लिए
मुझको ठहरी है, क्षितिज रेख का सेतु बाँध।

'युग सध्या यह अस्तमित एक इतिहास वृत्त,
ढलने को ब्रह्म अहन्, बुझने को कल्प सूर्य,
मुँदने को मानस पद्म,—उदित ज्योतिर्मय कवि,
घूमता विवर्तन चक्र, आज सक्राति काल।
यदि अधकार का घोर क्रूहर टूटे तुम पर,
तो मुझे स्मरण रखना, यह ज्योति धरोहर लो,—
जब होगी मानस ग्लानि, घिरेगी मोह निशा
मे नव प्रकाश सदेशवाह बन आऊँगी,
सध्या पलनो मे झुला सुनहले युग प्रभात!'
यह कह, वह अतर्धान हो गई पल भर में,
सिमटा अपने आभा के अगो को उर में।

कूर्माचल के प्रति

जन्मभूमि, प्रिय मातृभूमि की शीर्षरत्न, शत स्वागत।—
हिम सौन्दर्य किरीटित जिसका शारद भाल समुन्नत
उषा रश्मि स्मित, स्फटिक शुभ्र, स्वर्णिम शिखरो मे उठ कर
पुण्य धरा के स्वर्गोन्मुख सोपान पथ सा विस्तृत
निज आवाक् गरिमा से करता नर अमरो को मोहित,
निखिल विश्व को दिग् विराट् भौगोलिक विस्मय से भर।

बाल प्रवासी शिशु घर लौटा, वह भी क्या अभ्यागत?
स्नेह उच्छ्वसित, हेमज पुलकित अचल का शरणागत।
तेरी नैसर्गिक सुषमा मे जननि, सदा से लालित,—

हँसमुख छायातप से गुफित श्याम गौर जिसका तन,
श्री शोभा स्वप्नो से निर्मित गीत भृग गुजित मन,
रजत अनिल सौरभ पलने मे दोलित शैशव मुकुलित।
क्या न खगो ने मृदु कलरव भर प्रथम लोरियाँ गाई,
पखो से, बरसा कर सतरँग किरणो की परछाई?
स्मरण नही क्या तुझको? तू रहती थी सतत उपस्थित,
चित्र लिखी सी उडती तितली के सँग सँग उड मन मे
कैसे बडा हुआ मै, घुटनो के बल चल आँगन मे,—
माँ से बढ कर रही धात्रि, तू बचपन मे मेरे हित।
धात्रि कथा रूपक भर तूने किया जनक बन पोषण
मातृहीन बालक के सिर पर वरद हस्त धर गोपन!—
मातृभूमि मे मा का मुख शिशु ने पीछे पहचाना।
कूर्माचल, प्रिय तात, पुत्र मै रहा कूर्मवत् दृढ व्रत,
खीच अध इद्रिय मुख भीतर, ऊर्ध्व पीठ पर अविरत
युग मन भार वहन करना जिसने स्वधर्म नित माना।
छुटपन से विचरा हूँ मै इन धूपछाँह शिखरो पर,
दूर, क्षितिज पर हिल्लोलित सी दृश्य पटी पर निस्वर
हलकी गहरी छायाओ के रेखाकित-से पर्वत
नील, बैंगनी, कपिश, पीत, हरिताभ वर्ण श्री छहरा
मोहित अतर मे भर देते आदिम विस्मय गहरा,
अतरिक्ष विस्फारित नयनो को अपलक रख तद्वत्।
ऊपर, सीपी के रँग का नभ, नव मुक्तातप से भर,
रजत नीलिमा गलित, सहज हँसता सा लगता सुदर।
ऊँचे उडने वाले, निर्जल, कौश-मसृण, रोमिल घन.
चूर्ण रुपहली अलको मे उलझा रवि किरणे उज्वल
मौन इद्रधनुषी छाया का स्वप्न नीड रच, चचल
उडती चितवन के खग को बदी कर लेते कुछ क्षण।
विजन घाटियो पर चढ कर शिशु मेषो-से दुग्धोज्वल
चित्रग्रीव हिम के घन पल मे होते नभ मे ओझल।
पावस मे जब मिहिका मे लिपटा रहता गिरि प्रातर,
शैल गुहाओ मे दहाडते सिहों-से जग क्षण मे
दुहरी तिहरी तडित् शृखला तडकाते घन तन मे,
बरसा कर आग्नेय सानुओ से स्फुलिग के निर्झर।
षड् ऋतुएँ सुरबालाओ सी करती सजधज नर्तन,
वासती किसलय कितने ही रँग करते परिवर्तन,
रजत ताम्र, पाटल ईंगुरी, हरित पीत, मृदु कपित।

सलज मौन मुकुलो मे बरसा अर्ध निमीलित चितवन
फूलो के अगो की अप्सरि सी रग प्रिय यौवन
उडती पर्वत घाटी सौरभ पखो मे रोमाचित।
उच्च प्रसारो मे लेटा, छाया मर्मर परिवीजित,
श्रात पाथ सा ग्रीष्म ऊँघता भरी दुपहरी मे नित!
पागुर करते दृढ निर्द्वन्द्व ककुद्मत् शैल वृषभवत्,
काले पडते तिग्म धूप से कुरँग तलैटी मे रँग
कूटो पर लिपटा रहता नीलातप मेघो के सँग,
चारवायु हिम जलद पख का चँवर डुलाती अविरत।

मसृण तुहिन सूत्रो मे गुफित रजत वाष्प रज के कण
मोती के रँग के धूमो से स्फटिक शिला के घन बन,
प्रावृट् मे कर शख नाद, घिरते नीलाजन श्यामल,
सुरधुनओ के दुहरे तिहरे फहरा छाया केतन,–
गिरि शृगो पर तडित् स्खलित, भरते प्रचड गुरु गर्जन,
नील पीत सित लोहित विद्युल्लतिका कपित प्रतिपल।
मरकत हरित प्रसारो मे हँस, दिक् प्रसन्न, तृण पुलकित,
फेनो के हीरक झरनो, मुक्ता स्रोतो मे मुखरित
जब वर्षा के बाद निखरता हेम खड स्निग्धोत्तर
इद्रलोक सा रजतारुण स्वर्णिम छायाओ से स्मित,
सद्य धुले नव नीहारो का अर्ध नील कर विरचित,–
तब मन कहता, क्या न स्वर्ग सुख से निसर्ग मुख सुदर?

गहरे सूर्यास्तो को रँग सित वाष्पो की पीठो पर
नृत्य मुग्ध, उडता मयूर पखी मेघो मे अबर।
ज्योत्स्ना मे लगते दिगत जब स्वप्न ज्वार हिल्लोलित,
निखिल प्रदेश मनाता शोभा निर्निमेष शरदोत्सव,
जिस अकथित सुम्मोहन का करता अवाक् मन अनुभव,
मुक्त नील तारा स्मित लगता मौन रहस्य निनादित।
राजहस सा तिरता शशि मुक्ताभ नीलिमा जल मे,
सीपी के पखो की छहरा रत्न छटा जल थल मे।
धुली वाष्प पखडियों मे रँग भरते कला सुघर कर,
सुरधनु खडो मे किरणो की द्रवित काति कर वितरित,
रग गध के लता गुल्म से गिरि द्रोणी अतिरजित
देवदारु रज पीत सुहाती ग्राम वधू सी सुदर।

हिम प्रदेश के यमजों - से हेमत शिशिर कपित तन
रजत हिमानी से जड देते गरि कानन, गृह प्रागण
हिम परियो की नि स्वर पद चापो से कर दिशि मुखरित,

निशि के श्यामल मुख पर उज्वल तुहिन दशन रेखा भर,
मथित करती शीत वात शाखाओ के वन पजर,
मुरझाता रवि आतप, दिशि मुख दिखते धूसर, कुठित ।
स्वर्ग हास हिम पात ।—शुभ्रता में अनिमेष दिगतर
उडता राजमराल गौर हर्षातिरेक मे निःस्वर ।
दिव्य रूप धरती निसर्ग श्री दुग्ध धौत भूतल मे,
स्वप्न मौन ज्योत्स्ना सी निर्मल स्फटिक शाति मे मूर्तित ।
उडते रगो के नृप, लोमश हिम खग, रवि कर चित्रित,
स्वर्गिक पावनता करती अभिसार मुग्ध दिशि पल में ।

कौन तुम्हारी शोभा शब्दों मे कर सकता कल्पित,
तुम निसर्ग सम्राट्, रूप गरिमा प्रतिपल परिवर्तित ।
निभृत कक्ष मे रग प्रकृति नित सज शृंगार मनोहर
सुरधनु पट स्मित, तडित् चकित, करती शिखरो पर नर्तन ।
तलहटियो मे रँग रँग के वन-फूलो से मुकलित तन
नव पल्लव अचल मे लिपटी वन श्री मन लेती हर ।
मखमल के तल्पो-से श्यामल तरल खेत लहराए,
रोमाचित-से गिरि वन चीडो की सूची से छाए,
देवदारु वन देवो के हर्म्यों के स्तम्भो-से स्थित ।
घनी बाँझ की बनी मोहती हरित शुभ्र मर्मर भर,
शृगो के दृढ आयामो की पृष्ठभूमि मे अबर,
लगता शाश्वत नील शाति सा नीरव, ध्यानावस्थित ।

विहगो के स्वर उर मे अलिखित गीतो के पद बनते,
तरु वन की अस्फुट मर्मर मे, भाव अचेतन छनते,
क्षिप्र मुखर स्रोतो मे रहते अगणित छद तरगित ।–
मूर्त प्रेरणा सी लहराती नभ मे शतधा विद्युत्
साँझ प्रात के काचन तोरण किसे न लगते अद्भुत,
रजत मुकुर सरसी में हँसता मुख अनत का बिम्बित ।
तैल चित्र सी उभरी गहरी शैल श्रेणि छायाकित
उडते मेघो के घन तद्रिल धूपछाँह से गुफित,
स्वर्गिक कोणो, वर्तुल शोभा क्षितिजो मे छहराई,–
रश्मि वाष्प की सृष्टि–सहस्रो रगो से भर जाती,–
ताम्र हरित, नीलारुण, स्वर्णिम शिखरो पर मँडराती
धुली साँझ की भाव लीन हलकी कोमल परछाँई ।

शिखरो पर उन्मुक्त साँस ले, स्निग्ध रेशमी मारुत
सहज लिपट जाता तन मन से, गध मधुर, मथर, द्रुत,
वाष्प मसृण, नीहार नील, हिम शीतल, किसलय कपित ।

रजत तुषार सरो में थर थर कँपता निर्मल अबर,
आदि सृष्टि सगीत सतत बहता श्रृगो से झर झर
स्वच्छ चेतना के स्रोतो मे, गिरि गह्नो मे मुखरित।
तृण कोमल पुलिनों पर क्षण भर लेट उच्च समतल मे
नाम हीन गधों से तद्रिल तरु छाया अचल में,
गा उठता मन मुक्त स्वरो के पख खोल निर्जन मे।
कुदक निकट ही शशक कुतरते नव गुल्मो की कोपल,
शाखा श्रृगो वाले वन मृग पीते झरनो का जल,
मँडराती, निश्चल, आतप प्रिय चील सुदूर गगन मे।

मृदु कलरव भर रँग रँग के खग वन-परियों के कुसुमित
क्रीडा कुजो को रखते सुर वीणाओ से झकृत,—
गीत वृष्टि कर तरु के नभ से मोहित वन अटनो पर।
सद्य स्वर्णिम नवल प्रवालो का रँग, हिम से पोषित,
प्रथम उषा के अगराग सा लगता शाश्वत लोहित,—
मधु मर्मर मे कँपते वन के अगणित वर्णों के स्वर।
उदयाचल पर, कनक चक्र सा, रश्मि स्फुरित रवि उठ कर
दिग् भास्वैर ऊषाओ से आरोहो को देता भर,
सध्या के नत मस्तक पर रक्तोज्वल मणि सा विजडित।
दिव्य छत्र सा रजत व्योम किरणो से विरचित ऊपर
रत्न पीठ सा सानु सुहाता नीचे श्यामल सुदर,—
इद्रनील गोलार्ध जडित मरकत मदिर सा शोभित।

आदि महत्ता पशु जग की अब भी वन करते घोषित
सिह, ऋक्ष, वृक गिरि खोहो को रखते भीम निनादित,—
चकित, चौकडी भीत मृगों पर झपट टूटते नाहर।
श्वेत नील काले उपलो से कठ वृषो के भूषित
भेडो की घटी से रहती गिरि डगरे कल गुजित,
उच्च शाद्वलो से छनते चरवाहो के मुरली स्वर।
सुघर कृषक वधुएँ नित खेतो मे सोना उपजाती
कठ मिला जन के सँग कृषि के गीत हुडुक पर गाती,
त्योहारो मे नाच गान रगो के रच बहु उत्सव।
नीलारुण किरणों मे पलते स्वस्थ सौम्य नारी नर
गौर कपोलो मे ऊषा की लाली लिए मनोहर,
लज्जारुण लगती जिससे अज्ञात यौवनाएँ नव।

उग्र कराल शिलाएँ भरती मन में विस्मय सभ्रम,
घोर अँधेरी गहरी दरियो मे बसता आदिम तम,
स्फीत नाद भर बहते ढहते - जल - स्तभों - से निर्झर।

निबिड गहन मे सहसा जगमग जल उठते पट बीजन
हिस्र व्याघ्र के विस्फारित हरिताभ भयावह लोचन,—
सँकरी घाटी मे सर्पों-से स्रोत सरकते सर मर!
झीने कंपित नील कुहासो से परिवृत हो सत्वर
बृहत् गरुत् सा धँसता नभ मे पख मार गिरि प्रातर,
अर्ध दृश्य गधर्व लोक सा, छाया पथ मे शोभित!
भ्रू विलास करती चपलाएँ, मद हास कर प्रतिक्षण,
मुग्ध बलाको के सँग उडता नभ मे इच्छाकुल मन—
चीर वाष्प पट कढता शशि सा रवि, किरणों से विरहित!

हिम के कचन प्रात, साँझ पावस पखो पर चित्रित,
स्वच्छ शरद चद्रिका, दिवस मधु के—क्षितिजो पर मुकुलित,
मर्मर ग्रीष्म समीर लुभाती सौरभ-मथर, शीतल!
अप्सरियो की पद चापो से कँपते झिलमिल सरि सर,
नृत्य चपल वनश्री के हित नित बिछते कलि किसलय झर,
रग गध मधु रज से रहता भू लुठित छायाचल!
अमरो के मणि मुकुट श्रेणि-से लगते हेम शिखर स्मित
रजत नील नभ-नीहारो से रहते जो चिर वेष्टित,—
इद्रधनुष छायाशुक का प्रिय उत्तरीय छहराकर!
कल किंकिणि सी विद्युल्लेखा दिपती कटि पर कपित,
मद्र स्तनित भर मुरज बजाते घन गंधर्वों-से नित,
स्वत दीप्त ओषधियों से नीराजन करते किन्नर!

यह भौतिक ऐश्वर्य शुभ्र गरिमा से मन को छूकर
नीरव आध्यात्मिक विस्मय से अतर को देता भर,—
एक महत् गुण अन्य गुणो को करता नित आकर्षित!
जग जीवन का क्रंदन शोषण हो जाता तुममे लय,
जगता प्राणो मे अनत भावों का वैभव अक्षय,
ऊर्ध्वारोही मौन शाति मे भू मन को कर मज्जित!
अब मै समझ सका महत्व इन शिखरो का स्वर्गोन्नत
नील मुक्ति मे समाधिस्थ जो अतर्नभ मे जाग्रत्,—
पृथ्वी के शाश्वत प्रहरी-से अतरिक्ष मे शोभित!
जहाँ शुभ्र सोपानों पर चैतन्य विचरता पावन,
स्वर्णिम आकाशो मे उडता अपलक शोभा मे मन,
उच्च नभस्वत में रहता सगीत अनश्वर गुजित!

मुखरित तलहटियों को, नि स्वर क्षितिजो को अतिक्रम कर
सात्विक शिखरो मे जग, मानस मे श्रद्धा सभ्रम भर,
स्वर्ग धरा के मध्य शुभ्र दिग् विशद समन्वय-से स्थित,

भू से रूप विधान, व्योम से सार भाव ले निर्मल,
श्यामल, प्राणोज्वल रखते तुम जग का उर्वर अचल,
आरोहो के वैभव से अवरोहो को कर कुसुमित।
अप्रकेत तम सागर से उठ, भेद अचेतन के स्तर,
जल थल की अगणित, उपचेतन जीव योनियो को तर,
जीवन हरित प्रसार पार कर, रजत देश बहु समतल,
ऊर्ध्वंग उच्छ्रायो के निर्मल नीहारो मे नीरव
सत् रज के सतरँग आभासो का कर मन मे अनुभव,
शाश्वत शिखरो मे निखरे तुम लगते शात समुज्वल।
रुके मूक भू मानस गह्वर, रुके स्तब्ध गिरि कदर
(शतियो के पुजित तमिस्र से पीडित जिनका अंतर।)
बिछे प्रतीक्षा मे प्रसार होने को तुमसे दीपित।
धूमिल क्षितिज, गरजता अबर, उद्वेलित जन सागर,
जड चेतन की दृष्टि निर्निमिष लगी ज्योति शिखरो पर,—
मानवता का दिक् प्रशस्त उन्नयन तुम्ही पर आश्रित।
निश्चय, भूमा की आकृति मे यह मृण्मय भू निर्मित,
अन्न प्राण मन जीवन के अक्षय वैभव से झकृत,—
हरित प्रसारो, नीलोच्छ्रायो, स्वर्ण गहनताओमय।
यशश्चूड तुम इस वसुधा के शाश्वत रश्मि मकुट भृत,
दिक् शय्या पर चिदानद-से कालोपरि सत् पर स्थित,
ध्यानावस्थित ऊर्ध्व भाल पर नव लेखा शशि स्मित, जय।

आत्मिका
(संस्मरण और जीवन दर्शन)

[एक]

महाकाल के नील हर्म्य मे
मौन दिग् ध्वनित
बजती प्रिय पद चाप तुम्हारी
मेघ मद्र नित!
सुनता आया हूँ शैशव से
विस्मय पुलकित,
अश्रुत स्वर्णिम पग ध्वनियाँ
अतर मे कपित!

(२)

तितली उडती
रँग रँग का मधुरव भर मन मे,
जुगनूँ हरे स्वरो मे
लिपपुत जाते वँन मे!
तरु मर्मर की मोती की झर
सीप फेन सी
उफनाती क्षण क्षण मे!

चुक् चुक्
पूँछ हिला खग गाते,
पखो पर सौ रँग बल खाते!
फूल परी आती मुसकाती
आँगन मे सौरभ भर जाती!
भौंरे गुन गुन पढते पाती,—
मुझे स्मरण उनकी प्रिय बाते,
चुक् चुक्
चोच मिला खग गाते!

(३)

कौन देव कन्याएँ जाने
स्वप्नो मे आ मुझे रिझाती,
स्वर्गिक सुख, आशा की मधु स्मिति,
अधरो पर चित्रित कर जाती!

वह परियो का प्रिय जग निरुपम
भू जीवन का था लघु उपक्रम
चाँद मोह लेता चुपके मन,
मधुर चतुर्दिक् था आकर्षण!
ज्ञात न था तब, सँग सँग उठ-गिर,
तुम पथ करते थे निर्देशन!

[दो]

मुग्ध, स्वप्नचारी शैशव की पग ध्वनि
बनी गीत - कैशोर - चपल,—
नव वय मणि!

(२)

हिमगिरि प्रातर था दिग् हर्षित,
प्रकृति क्रोड ऋतु शोभा कल्पित,—
गध गुँथी रेशमी वायु थी,
मुक्त नील गिरि पखो पर स्थित!
हरित जलधि-से थे निर्जन वन
जिनमे घुसने मे लगता भय,
भाव मौन, गहरी छायाएँ
कँप कँप उर मे भरती विस्मय!

नीरवता की मूर्ति शिलाएँ
गुह्य बोझ सा अतर में धर
स्तभित कर देती चचल पग,
नव वय को मत्राभिभूत कर!
श्रृग नाद कर झरते निर्झर
भारी कौतूहल भर मन मे,
दूध फेन के स्रोत उफनते
गिरि के गीत मुखर आँगन मे!

विजन वीथि मे मिलती परियाँ
इद्रधनुष अचल फहराए,
धूपछाँह रँग सारी पहने
स्वर्ण गध-कुतल छहराए!

लिपटा रहता गिरि पजर से
मासल कलि कुसुमो का मार्दव,
फूल माल सी उड विहगावलि
रग पख बरसाती कलरव।

देवदारु के हरित शिखर उठ
भू की जिज्ञासा - से ऊपर
तारो से हँस बाते करते
नभ का नील रहस्य चीर कर।
भू की परिक्रमा कर ऋतुएँ
वहाँ वास करती प्रति वत्सर,
वह कुसुमित शृगार कक्ष था
गध वर्ण ध्वनि ग्रथित मनोहर।

(३)

कब विचरा मै नव किशोर बन
अनगढ पग धर अविदित भू पर,—
परिवर्तन पथ भू विकास का
चलता काल अदृश्य चरण धर।
मध्य वित्त गृह सुख मे जन्मा,
धर्मप्राण पा पिता महा मन,
शिखर अपर वात्सल्य स्नेह के
गौर, शख मदिर सा प्रिय तन।

मातृहीन, मन से एकाकी
सलज बाल्य था स्थिति से अवगत,
स्नेहाचल से रहित, आत्म स्थित,
धात्री पोषित, नम्र, भाव रत।
फूफी के सूने नभ का मै
चदा, बरसाता स्नेहामृत,
सन्यासी बन गए दयित थे,
छोड नवोढा को सतापित।

नयनो के नीरव जल मे थी
तिरती गत मधु स्मृतियाँ विस्मृत,
भावी की दारुण भय छाया
चितवन को रखती विस्फारित।
प्रकृति क्रोड़ में छिप, क्रीडा प्रिय
तृण तरु की बातें सुनता मन,
विहगो के पखो पर करता,
पार नीलिमा के छाया वन!

रगो के छीटो से नवदल
गिरि क्षितिजो को रखते चित्रित,
नव मधु की फूलो की देही
मुझे गोद भरती सुख विस्मृत।
कोयल आ गाती, मेरा मन,
जाने कब उड जाता वन मे,
षड् ऋतुओ की सुषमा,अपलक
तिरती रहती उर दर्पण मे।

(४)

पुण्य तीर्थ प्राचीन हिमालय
पावन तपोवनो से शोभित,
जहाँ साधु जन आते, आत्मिक
शाति खोजने, तत्व लाभ हित।
चचल रग प्रकृति की शोभा
हृदय स्पर्श करती दिङ् मुकुलित,
ध्यानावस्थित मूर्ति योग की
उर को विस्मय सभ्रम मोहित।

पग पग पर ग्रामीण सरल मन
नव वय का करते अभिनदन
शिखरो का वैभव, समतल का
दैन्य चित्त मे चुभता अनुक्षण।
नही भूलता सहज मनुज मन
प्रिय किशोर वय के स्मृति दशन,
मनोग्रथि निर्माण काल वह
रजित जिससे जीवन दर्शन।

(५)

आरोही हिमगिरि चरणो पर
रहा ग्राम वह,—मरकत मणि कण,
श्रद्धानत,—आरोहण के प्रति
मुग्ध प्रकृति का आत्म समर्पण।
साँझ प्रात, स्वर्णिम शिखरो से
द्वाभाएँ बरसाती वैभव,
ध्यान मग्न नि स्वर निसर्ग निज
दिव्य रूप का करता अनुभव।

कौश हरित, तृण श्वसित तल्प पर
सातप वन श्री लगती सुदर,
नील झुका सा रहता ऊपर
अमित हर्ष मे उसे अक भर।
वह अधित्यका थी भू मन की
आरोहो से जहाँ उतर कर
स्वर्ग दूत विचरण करते नित
रजत चाप स्मित स्वप्न चरण धर।

धरती उसे उठा कर ऊपर
अबर को करती थी अर्पित,
अपनी अनुपम सुदरता मे
अपर स्वर्ग था वह स्थल निश्चित।
शुभ्र हरित परिवेश घिरा वह
स्फटिक मुकुर लघु जनपद प्रागण
हिम सित शाति हृदय मे भरता
वन मर्मर प्राणों मे मादन।

(६)

भेद नील को, मौन शृग उठ
जाने क्या कहते अतर मे,
निर्निमेष नयनो से पीता
सुन अनत के नीरव स्वर मे।
दृग शोभा तन्मय रहते नित
देख क्षीर शिखरो का सागर,
उर असीम बन जाता, अत
स्पर्श शुभ्र सत्ता का पाकर।

अमरो के सँग अतरिक्ष मे
मन शृगो पर करता विचरण,
निर्मल था कौमार, भावना
स्वप्न पख करती आरोहण।
उस पवित्र प्रातर की आत्मा
हुई निविष्ट हृदय मे अविदित,
प्राणि मात्र मे व्याप्त प्रकृति की
गोपन सत्ता रहती निश्चित।

प्रकृति मातृ शिशु क्षितिज अक मे
खेल कूद हँस पला अलक्षित,
नैसर्गिक शोभा से परिवृत
गुह्य अदृश्य शक्ति से रक्षित।

शोभा चपल हुए किशोर पग
गरिमा विनत बना गभीर मन,
रग भूमि थी प्रकृति मनोरम
पृष्ठ भूमि हिमवत् की पावन।

(७)

अनजाने सुदर निसर्ग ने
किया हृदय स्पर्शों से सस्कृत,
उज्वल स्वर्णिम उच्छ्रायों मे
अतर्मुख मन को कर केन्द्रित।
ऋषियों की एकाग्र भूमि मे
मैं किशोर रह सका न चचल,
उच्च प्रेरणाओ से अविरत
आदोलित रहता अतस्तल।

निज प्रकाश इगित से कोई
आकर्षित करता उत्सुक मन,
कब डूबा मैं ज्योति जलधि मे
अवचनीय था वह गोपन क्षण।
वय सन्धि की ओट खडा था
सघर्षो का पर्वत यौवन,—
मधु रँग रस फूलो मे लिपटा
पावक का दीपित ग्रह नूतन।

[तीन]

नयी वयस का था भावुक रण
वह जिज्ञासा मथित मन से,
नव इच्छाओ का संघर्षण
स्थितियों से, जग से, जीवन से।
रहता चित्त अधीर क्षुब्ध नित
आवेगो से आत्म पराजित,
एक अतृप्त विषाद हृदय को
करता रह रह गोपन प्रेरित।

स्वर्गिक शृगो पर मँडरा मन
दु ख गर्त मे गिरता जाकर,
अधः ऊर्ध्व गतियों से कुठित
आत्म विमुख रहता हत अतर।

हिम शिखरो की शुचिता का वह
जन भू मे करता अन्वेषण,
लगता सूर्य प्रकाश उसे तब
भू रज मे लिपटा विषण्ण मन।

हेम शिखा से दग्ध शलभ शिशु
जन भू मन से हो सस्पर्शित,
अधकार से घिर जाता फिर
राग द्वेष भय स्पर्धा पीडित।
वस्तु स्पर्श से कुम्हला जाता
क्यो सात्विक ऐश्वर्य भाव-गत ?—
भाव वस्तु मे विपर्यास क्यों,—
सोचा करता तब मन सतत।

(२)

रामकृष्ण औ' रामतीर्थ के
वचनामृत से थी भू प्लावित,
पुनर्जागरण का युग था वह
भारतीय दर्शन का जग हित।
खोल मध्य युग के अवगुठन
पौराणिक सस्कृति के बधन,
गरज रहे थे अतर उर्वर
दीप्त विवेकानद वचन घन।

कर्म - त्याग, वैराग्य ध्येय हो
हृदय न तब करता था स्वीकृत,
भू जीवन से पृथक् भागवत
जीवन मुझे न भाता किंचित्।
कनक कामिनी के वर्जन मे
मध्य युगो की भीरु प्रतिध्वनि
मिलती, चिर निष्काम भक्ति ही
मन को लगती स्वय प्रभा मणि!

जीवन इच्छा के अहिफन पर
धर प्रकाश मणि अतर्भास्वर
सोचा करता प्राय.,—क्या हो
मानव जीवन लक्ष्य धरा पर ?

उपनिषदो के। मत्र श्रवण कर
अतर होता रहता झकृत,
ब्रह्म, सत्य, शाश्वत, ईश्वर क्या,—
जिज्ञासा पूछा करती नित।

(३)

इन्ही दिनो तब विश्व युद्ध की
दिग् ध्वनि प्रथम पडी कानो मे,
निर्मम विस्मय कौतूहल बन
रही घुमडती जो प्राणो मे।
'पराधीन यह भारत माता
हमे काटने दुख के बधन,
नव युवको को देश भक्ति हित
अर्पित करने उभते जीवन।'—
जागृति का सदेश लिए नव
मचो से नित होते भाषण,—
जनपद से मैं नगर वास मे
करता विद्याध्ययन छात्र बन।

देश भक्ति के साथ मोहिनी
मत्र मातृ भाषा का पाकर
प्रकृति प्रेम मधुरस मे डूबा
गूँज उठा प्राणो का मधुकर।
गूढ विधान प्रकृति का निश्चित,
नियत पथ जग मे सबके हित?
सचित कर्म उदय हो उठते
भव जीवन स्थितियो से प्रेरित?

फूलो की ढेरी मे मुझको
मिला ढँका अमरो का पावक,
युग पिक बनना भाया मन को
जीवन चिन्तक, जन भू भावक!
नैसर्गिक सौन्दर्य, पुष्प सा,
खुला दृष्टि मे निर्निमेष दल,
प्रथम छद उर लगा गूँथने
फूल हार, मधु रँग ध्वनि कोमल।

प्राणो को था स्पर्श मिल चुका
कवि गुरु रस मानस का मादन,
मेघदूत के छद हृदय मे
प्रेम मद्र भरते गुरु गर्जन।
नव युग के सौन्दर्य बोध से
भारत आत्मा को कर भूषित,
कवि रवीन्द्र के स्वर्ण पख स्वर
श्रवणो मे रहते मधु गुजित।

(४)

प्रथम चरण था नव यौवन का
शोभा स्वप्नों से दृग अपलक,--
देही धर लाई हो कविता
रूप शिखा सी नख से शिख तक।
केश नील घन, इद्रधनुष की
सद्य शोभा मे लिपटा तन,
तड़ित् लता, शशि लेखा सी वह
चकित कर गई दृष्टि, मुग्ध मन।

भाव पख मधु प्रेम विहग उड,
लगा कूजने हृदय डाल पर,
सुख के तृण, दुख के खर से चुन
स्वप्न नीड आशा का सुदर।
धरती से अबर तक छाई
छबि की ज्योत्स्ना-ताराचल स्मित
सीमा को निसीम कर गई
वह असीम को निज मे सीमित।
बाहर भीतर केवल वह थी
फूल, हिलोर, किरण मे प्रतिक्षण,
शत भावो स्वप्नो मे स्पदित
उर की उर, जीवन की जीवन।

(५)

कल्मष - लाछन के कॉटो मे
खिला प्रेम का फूल धरा पर,
उसको छूना मोह द्रोह के
भू कर्दम मे गिरना दुस्तर।

प्राण कामना का पंकिल मुख
जन भू मन को धोना निश्चित,
मनुष्यत्व के सँग ही वह भी
होगा विकसित, पूर्ण प्रस्फुटित।

हो न सका चरितार्थ प्रेम का
धरा स्वर्ग नारी उर मे स्थित,
हृदय नही विकसित शोभा के,
देह भाव से मन अवगुठित।
गुजित उर की करुण प्रतिध्वनि
मधुर 'ग्रथि' मे, ध्वनि लय गुफित,
प्रणय सरोवर मे नव यौवन
प्रथम हुआ जब पावक मज्जित।

हृदय-पुष्प रस का प्रेमी मन,
हृदय उसे न मिला जन भू पर,
बिना हृदय के देह प्राण मन
दारुण वन पशु कानन दुष्कर।
रुको अभी—तब कहा मर्म ने,
मोड लिया मैने निर्मम मन,
मानव भावी के स्वप्नो हित
किया मुग्ध कवि हृदय समर्पण।

प्राणो की सौन्दर्य स्पृहा वह
मधु गीतो मे हुई गुञ्जरित,
उधर छिडा स्वातत्र्य युद्ध तब
नव यौवन को कर आदोलित।
नई चेतना की हिल्लोले
जनगण मन को करती प्लावित,
सुनता मै गभीर प्रतिध्वनि
युग चरणो की भू पर कपित।

(६)

राष्ट्र भावना से प्रेरित मन
जग जीवन मे हुआ समाहित,
विश्व सभ्यता सस्कृति का मुख
मनोदृगो मे हुआ अनावृत।

दिखा पूर्व, सामंत युगो का
जर्जर खँडहर, मानस पजर,
पश्चिम, शतियो से जीवन का
मन का जीवित मच धरा पर।

बदल रहा था वृद्ध विश्व द्रुत
यान्त्रिक युग का कर दिग् घोषण,
जड विज्ञान प्रकृति जग के नित
नए सत्य करता अन्वेषण।
नव सक्रिय भौतिक स्थितियो से
परिवर्तित गत निष्क्रिय चिन्तन,
युग सस्कृति, सौन्दर्य बोध मे
भू जीवन प्रति था आकर्षण!

जाग रहा था सोया भारत
नव युग स्पर्शों से स्थिति चेतन,
महा ह्रास से निखर रहा था
भावी का नव भुवन, दीप्त मन!
सधि काल मे, वह युग युग से
जीवन विरत, दरिद्र, आत्महन्
लगता, छाया ग्रह दष्ट्रा से
कृच्छ्र उबरता पाडुर पूषण!

(७)

आदि काल से ऋषि मुनियो की
साधन भूमि रहा जो भारत,
उसके भस्मावृत शरीर मे
ढँकी अग्नि ऋत चित् की भास्वत।
जड, जीवन, मन को अतिक्रम कर
शाश्वत के पा अतर्दर्शन
रुका हुआ वह, भू जीवन की
स्थितियों का हो सके उन्नयन।

भक्ति, ज्ञान, श्रद्धा, तप, सयम
भू की मर्यादाएँ प्राक्तन,
त्याग, धैर्य, निष्काम कर्म ही
लोक प्रेम, सेवा के साधन।

आत्म तोष मय सात्विक जीवन
परपरा सतो की पावन,—
मध्य युगों से रहा उपेक्षित
भू जीवन मूल्यो का वितरण।

(८)

उसी धरा पर उदय हुए थे
जन नायक, जगवद्य महात्मन्
जिनके निश्छल स्फटिक हास्य से
मौन गुजरित जन मन प्रागण।
देव विनय, श्रम शुभ्र वेश मय,
आत्म शक्ति के पर्वत अविजित,
वे फिर से चेतन के वर से
जड को करने आए सस्कृत।

लोक पुरुष पहचान गये थे
प्रथम दृष्टि मे भारत का मुख,
बढते भौतिक युग प्रवाह मे
मिले न जन हित श्रेय शाति सुख।
रक्त नेत्र पश्चिम मे उनको
दिखा भव्य प्रासाद विभव का,
पशु बल के भुज दड पर खडा
जो निवास था युग दानव का।

(९)

प्रथम युद्ध के खर ताडव से
जन भू अतर था मर्माहत,
भव सेवा हित लिया धीर ने
सत्य अहिंसा का पवित्र व्रत।
पशुबल से हो मनुज पराजित,
सह न सका युग मानव का मन,
विश्व मुक्ति हित छेडा निर्भय
देश मुक्ति का वह नैतिक रण।

इगित पा, सदियो का खँडहर
जाग उठा फिर जीवन मोहित,
एक—भिन्न मत भूमि युगो की
जन बल मे हो उठी संगठित।

उन्हे इष्ट था भौतिक मद को
आत्मिक बल से करना शासित,
धरा चेतना के विकास को
नैतिक सस्कृति के रख आश्रित।

पर, नैतिकता को अतिक्रम कर
भौम मनुज को होना विकसित,—
धरा वृक्ष फल मानव जीवन
उसे पक्व होना, रस पूरित।
मनुश्चक्षु मे विहँस रहा नव
धरा चेतना का रूपातर,
जड मे चेतन, तन मे आत्मा
मूर्त हो रही, पूर्ण रूप धर।

(१०)

प्रथम भेट मे मिला हृदय को
सूक्ष्म स्पर्श, दृग विस्मय प्रेरित,
स्फुरित इद्रधनु अर्चि विनिर्मित
हुआ मनोमय वपु उद्भासित।
श्रद्धार्पित हो किया हृदय ने
प्रभु को भू जीवन इच्छा फल,
प्रकट हुई मानव आत्मा के
ज्योति मच पर शक्ति तपोज्वल।

विश्व चेतना मे जब नव गुण
होते उद्भव हेतु अवतरित,
लोक अस्मिता मे सघर्षण
करना पडता उन्हे अतद्रित।
गत शुभ अशुभ विवर्धित होते
विश्व प्रगति के युग से प्रेरित,
समदिक् सवर्धन मे रहता
ऊर्ध्व उन्नयन भी अतर्हित।

(११)

क्षेत्र बनाने आए थे वह
नव मानवता के हित विस्तृत,
भौतिक युग की दुर्मद गति को
बना सौम्य, सयत, मनुजोचित।

नवोन्माद था भौतिकता का
मनुष्यत्व था आत्म पराजित,
वणिको का साम्राज्यवाद था
भू देशो को दुह कर जीवित।

भौतिक पशुता से लोहा ले
मनुज हृदय करना था विगलित,
पूर्ण अहिंसक बन मानव को
भू दानव करना था सस्कृत।
पराधीनता मे भी जिसकी
मुक्त रही नित आत्मा शाश्वत
अणु मृत भव जन के मगल हित
उस भू को होना था जाग्रत्।

(१२)

वह पहिला ही असहयोग था
बापू के शब्दो से प्रेरित
बिदा छात्र जीवन को दे मैं
करने लगा स्वय को शिक्षित।
बाहर था नव युग सघर्षण
भीतर अतर्मन का मंथन,
पथ दर्शक था केवल ईश्वर,
पद नत करना था आरोहण।

(१३)

इन्ही दिनो मोहाध क्षुब्ध मन
मुक्त हो गया भव बधन से,
बिला गई हो भौतिक सत्ता
गुठन सा उठ गया नयन से!
दृढ प्रस्तर प्रासाद पिता का
मेघ खडवत् लीन गगन मे
बता गया,—जड मे जीवन की
नीव न गहरी, वह चेतन मे।

दुर्विपाक घटता भू पथ पर,
चलते स्वय फिसल जाते पग,—
सहसा प्रात उठ कर जाना
अब घर द्वार नही, निर्जन मग।

ज्ञात नही कब हुआ, क्या हुआ
स्वजनो के हित दुख का कारण, –
वृद्ध जनक थे, पक्व निधन था,
अत्र मै था, मन था, दुख का वन ।

पिता, बहिन, भाई का तन धर
मरण मूर्त हो आया सम्मुख,
कैसा निष्ठुर परिवर्तन था
वही अग सब,–बाहु, वक्ष, मुख ।
मृत्यु न गुह्य रही किशोर भय
गुठन हटा हुई दृग्गोचर,
अश्रु ग्रथित सित पट से हँसती
जीव नियति थी दारुण सुदर ।

(१४)

इसी समय कालाकाँकर के
स्नेह द्वार खुल गए अचानक,
शाति वास था मुझे अपेक्षित
जीवन का था पाथ गया थक ।
गगा तट था, श्यामल वन थे,
तरु प्राणो मे भरते मर्मर,
जल कल कल, खग कलरव करते,
प्रकृति नीड था जनपद सुदर ।

टेसू के पावक वन मे युग
बीता, खग पशु तरु थे सहचर,
मनन अध्ययन रत रहता मन,
भीटे पर नक्षत्र था सुघर ।
'गुजन-ग्राम्या' का था युग पट,
प्रकृति मनोरम, भू जन निर्धन,
सरल हृदय, अति नम्र आचरण,
जीवित तुलसी कृत रामायण ।

गृह सम्मुख हँसता सूर्योदय
मगल कनक कलश-सा उठ कर,
'ग्राम्या' की 'खिड़की से' दिखते
पार्श्व दृश्य सब परिचित सुदर ।

ताड - नीम के पेड क्षितिज मे
तने अह् - से, झुके शील नत,—
गगा उर के सित पालो के
जल विहार अब हुए स्वप्नवत्।

रक्त पलाशो की प्रिय मधुऋतु
आम्र मौर मद भृग गुजरित,
इद्रधनुष मेघो के पावस
मोरो के पिच्छो पर नर्तित,
साँझ प्रात भाते जाडो के
चल रेशम कुहरो से आवृत,
शरद चाँदनी के पखो पर
उडते गध भरे वन पुलकित।

(१५)

मानस तल मे ऊपर नीचे
चलता तब सघर्षण अविरत,
तम पर्वत, सागर प्रकाश का
मथित रहते शिखरो मे शत।
करवट लेता भावी नव युग
गत भू मन को कर क्षत विक्षत,
भय सकट, आशा, सुख दुख से
सकुल था प्रभविष्णु अनागत।

दुखती घायल मन. शिराएँ
जग के आघातो से निष्ठुर,
स्वप्नो के स्वर्दूत उतरते
सुख विस्मित, आदोलित कर उर।
अविदित भय से कँपता अतर
स्वर्गिक सकेतो से पोषित,
स्वर्ग नरक मानुष तन मन मे
प्रलय मचाते विश्व विजय हित।

मुँह तक तम से भर जाता मन
उपचेतन आवेगो से श्लथ,
कुचल सूक्ष्म भावों को देता
भव चक्रो का युग विकास रथ।

तम प्रकाश की युग सध्या मे
होता उर मे मौन अवतरित
'ज्योत्स्ना' का जीवन प्रभात नव
भू पर श्री सुख शोभा कल्पित !

(१६)

मन के राजा थे सुरेश - से
सुहृद, शील के स्वच्छ सरोवर,
श्री प्रकाश गृह दीप शिखा थी, –
दोनो के प्रति उपकृत अतर !
भाई बहिन, सखा मत्री हम
प्रेम डोर मे गुँथे परस्पर, –
कुँवर स्नेह से देते आदर,
उनका घर मेरा ही था घर !

कालाकाँकर के भूपति थे
देशभक्त, गाधी जी मे रत,
नम्र, स्वाभिमानी, जन सेवक,
बापू रहते थे अभ्यागत !
जल वेणी के बाहु पाश में
राज भवन था गंगा तट पर,
नृप जन प्रिय थे, जीर्ण राज्य था
जर्जर सामती भू पजर !

मै कृतज्ञ उस ग्राम राज्य का
जहाँ कटे सुख से सकट क्षण,
वे मानस मथन के दिन थे –
भरा सुनहली स्मृतियो से मन !
(देश दासता मुक्त हुआ अब
ओ ग्राम्या के स्नेह प्राण जन,
सर्व प्रथम, नव युग प्रभात मे
सुख स्वर्णिम हो श्रीहत प्रागण !)

(१७)

जन स्वतन्त्रता के उस रण ने
किया विश्व चेतस् आकर्षित,
भारत की ऐतिह्य देन वह
नव युग पृष्ठो पर स्वर्णांकित !

रक्तहीन रण क्षेत्र रही भू
आहत नही हुआ मानव तन,
रुधिर - स्रवित हो उठा धरा उर
कँपा सभ्यता का पाहन मन।

निश्चय रे वह समर नही था
वह था सस्कृति पर्व सनातन,
अमृत स्पर्श मानव आत्मा का
जड पशुता को करता चेतन।
पर, मानव पशु खर नख द्रष्ट्रा
शृगी वन पशु से नृशस मन,
स्थापित स्वार्थो हित नित शकित
मनुज रूप मे दानव भीषण।

(१८)

मनुज वृत्तियो मे था युग रण,
पाप पुण्य मे, घृणा प्रेम मे,
दभ शील, अन्याय न्याय मे,
आत्म स्वार्थ औ' लोक क्षेम मे।
शनै सौम्य आत्मिक स्पर्शो से
वज्र धरा उर होता विगलित,—
नव भौतिकता नयी शक्ति थी
लोक क्षेम सवर्धन के हित।

भौतिक गति से आध्यात्मिक जग
हुआ ऊर्ध्व के सँग भू वितरित,
जैव चेतना से अनुप्राणित
हुए गहन मन के स्तर दीपित।
नित नव वैज्ञानिक खोजो से
हुई मनुज क्षमता शत वर्धित,
नव जीवन रचना सभव थी
जड चेतन को कर सयोजित।

(१९)

सत्यो की कर शोध पूर्व ने
किया तत्व का रूप निरूपित,
तथ्यो को खोजा पश्चिम ने
विकसित तन्त्र दिया भू जन हित।

सत्य तथ्य, विज्ञान ज्ञान, दो
पक्ष, एक बहु के द्योतक नित,
लोक श्रेय, जीवन उद्भव हित
रहे विषम सम चरण समन्वित।

भौतिक गतियो के विकास का
दिया मार्क्स ने जीवन दर्शन,
वैज्ञानिक जन तत्र जगत के
सम्मुख रख, जन भावी दर्पण।
सप्रति, सह अस्तित्व, शील रत,
विश्व शाति का केवल साधन,
वर्ग हीन हो जन समाज , पर,
व्यक्ति मुक्ति का हो न अपहरण।

(२०)

साम्य क्राति ने आ, की युग की
धनिक सभ्यता की गति कुठित,
जग जीवन की बाह्य परिस्थिति
विश्व प्रगति हित बनी सतुलित !
आर्थिक पद्धति मे विरोध थे
युद्धो मे धन जन की दुर्गति,
सामूहिक स्थिति मे न सुलभ थी
व्यक्ति मुक्ति गत आत्मिक परिणति!

विश्व युद्ध का गूँजा दारुण
फिर विषण्ण निर्घोष गगन मे,
दिखा सभ्यता उर का घातक
विष व्रण जग के सकट क्षण मे।
अहो भाग्य, विद्वेष भूल कर
मिले सिह वृष ऋक्ष परस्पर,
जन्म मरण का प्रश्न रहा वह
मानव सस्कृति का,—शुभ दुष्कर।

(२१)

युग की भौतिकता के मुख पर
देख मृत्यु छाया, विषाद घन,
एकागी जीवन विकास के
विमुख हो उठा अतर्मुख मन।

भौतिक आर्थिक उन्नति ही का
प्रश्न न था अब जग के सम्मुख,
क्षुधा काम से तृप्त,—बुभुक्षित
मनुष्यत्व था रे आत्मोन्मुख!

सस्कृति पीठ न हो क्यो जन भू
उतरी मन मे स्वर्ण प्रेरणा
पखो मे ले लोकायन का
स्वप्न, पर न साकार वह बना!
ज्योति, कला, सस्कृति, जीवन के
द्वार न तब खुल पाए भू पर,
हृदय द्वार थे राग द्वेष से
युग के मुँदे, घिरा तम बाहर!

(२२)

नव मानवता को नि सशय
होना रे अब अत केन्द्रित,
जन भू स्वर्ग नही युग सभव
बाह्य साधनो पर अवलबित!
वैयक्तिक सामूहिक गति के
दुस्तर द्वन्द्वो मे जग खडित,
ओ अणुमृत जन, भीतर देखो,
समाधान भीतर, यह निश्चित!

देख रहा मै, विश्व सभ्यता
आज देह मन ही में सीमित,
हृदय हीन मानवता जाती
अध गर्त की ओर पराजित!
निश्चय, निज प्रच्छन्न शक्तियाँ
ऊर्ध्व मनुज को करनी जागृत,
आत्म ज्ञान से शून्य मनुज मन
शिखा रहित मृण्मय दीपक मृत!

चद्र चूड भौतिक सौधो मे
घूक रहेगे या युगाध जन?
खँडहर तुम्हे नही दिखते क्या
भैरव नीरवता के निर्जन!

विश्व क्राति का यह दारुण क्षण
हुआ युगो के बाद उपस्थित,
भू जीवन मन को अतिक्रम कर
नव मानव को होना विकसित।

ऐसे ही सक्राति काल मे
अशुभ और शुभ मे छिडता रण,
सहज न भरता आसुर असि का
धरा चेतना का गहरा व्रण।
सत् से असत्, असत् से सत् फिर
कृच्छ्र जन्म लेता भव भावक,
दारुण सुदर विश्व सत्य रे,
पावक मे जल, जल मे पावक।

(२३)

देश काल गत मानस ही मे
मानव की चेतना न सीमित,
वैश्व ह्रास मे अतर्वेत्ता
चेता आते लोक श्रेय हित।
सारथि श्री अरविन्द रहे तब
ऐसे भगवत् द्रष्टा भू पर,
विश्व ग्लानि कर गए विलय जो
अति मानस से धर्म हानि भर।

प्रात. रवि सा स्फुरत् रश्मि स्मित
था भगवत् चैतन्य तपोज्वल,
भू मानस मे पूर्ण प्रस्फुटित
अत स्वर्णिम हो सहस्र दल।
ज्योति पख उस दिव्य दृष्टि ने
दीपित अतर्भुवन कर दिए,
ऊर्ध्व स्पर्श के स्वर्ण तीर से
भू मन के जड पाश हर लिए।

(२४)

नए भुवन का जन्म हुआ था
जो अतश्चैतन्य अगोचर,
विश्व ध्वस बल से रखता जो
अत. रचना शक्ति महत्तर।

अशुभ असुर से अतिशय शुभ वह
विजयी होगी ज्योति तमस पर,
मर्त्य लोक को नव जीवन का
पिला स्वर्ण सजीवन निर्जर।

पर, वह रे अध्यात्म सचरण
जिसे जगत् मे होना मूर्तित,
स्थूल सूक्ष्म को नव प्रकाश मे
जीवन मे होना सयोजित।
शुद्ध बने गाधीजी साधन,
साध्य सिद्ध युग के योगेश्वर,
देता जड विज्ञान उपकरण,–
गढना भू जन को नव चेतन।

[चार]

भारत अब स्वाधीन हो चुका,
(शेष अभी मानवता का रण।)
बहिरतर गृह रचना कर नव
उसे सँजोने भू दिक् प्रागण।
महीयसी घटना यह युग की
जन भू के जीवन मगल हित,—
यह अधिमानम भूमि धरा की
जहाँ शाति तप बल से अर्जित।

(२)

स्वर्ग दूत की नर बलि दे फिर
रक्त पूत क्या हुए धरा कण?
भ्राति मुक्त हो सका शप्त क्या
मध्य युगो का शील रुग्ण मन?
नम्र अहिसक को हिसा की
क्रूर बिदा! रे दैव दग्ध क्षण!
हिसा यदि उठ जाय धरा से
तो जन भू का भरे आर्द्र व्रण।

ऐसे ही आए थे ईसा
सिर पर काँटो का किरीट धर,
दिव्य प्रेम के देवदूत - से
स्वर्ग राज्य का लाए थे वर।

द्रष्टा थे, कवि हृदय, फूल मे
पढ़ते थे वे प्रभु के प्रवचन,
अशुभ न रोको—सर्व क्षेम रत
रहो, परम साहसिक थे वचन।

मनुज हृदय खग, विद्ध तभी से
चढा क्रूर तम की सूली पर,
आसुर शर का रिक्त सिक्त क्षत
भरना मर्त्य धरा का दूभर।
देश जाति की मोह भित्तियाँ
रोके भू मानव विकास क्रम,
मुक्त नही चेतना, त्रस्त मन,
मँडराता सिर पर यम,—अणु बम।

(३)

अतरिक्ष युग अब दृग सम्मुख,
उपग्रहो मे परिभ्रमण कर
चंद्र, भौम, उशना के प्रागण
छूने को, लो, दिग् विजयी नर।
सर्वक्षेम के स्वर्ण बीज क्या
बोएगा वह जन धरणी पर?
मन को यह विश्वास न होता,
जीवन शकित जग का अतर।

भीम विरोधी शिविरो मे अब
बँटा भाग्य-हत भू जीवन मन,
होड लगी भीषण अस्त्रो मे
आग्नेयो ब्रह्मास्त्रो का रण।
द्वन्द्व छिडा अब सृजन प्रलय मे
वैज्ञानिक युग का अभिवादन।
दग्ध धरा मानस मे घिरती
महामृत्यु छायाएँ प्रतिक्षण।

(४)

अन्न वस्त्र गृह के अभाव मे
नग्न कुरूप बहिर्जग जीवन,
सर्वक्षेम का स्वर्ग दूर रे
घिरे अविद्या से दरिद्र जन।

भू देशो मे द्रोह भयकर
विज्ञानाऽमृत बना गरल वत्,
कामधेनु बहु यत्र सुलभ,—पर
मानव तृष्णा फन खोले शत।

नाश उगलने को ज्वाला गिरि
अग्नि प्रलय का यह नव प्लावन,
सोच रहा मानव भविष्य पर
नाश छोर पर खडा मूढ मन।
युग जीवन मन के अतर्गत
समाधान सूझता न सभव,
आत्म पराजित मानव के हित
बहिर्विश्व मे भी रे परिभव।

(५)

अतर्भुवनो के नभ मे यदि
विचरण करे बहिर्मुख युग मन
ज्ञात सत्य हो उसे अखडित
एक निखिल बहिरतर जीवन।
इद्रिय विमुख मनुज आत्मा ज्यो
द्वार रहित मृत गृह तमसावृत,
आत्म हीन मानवता त्यो ही
दानवता की प्रतिमा कुत्सित।

भू खडो मे भग्न, विभाजित
बहिर्मुखी युग मानव का मन,
स्थापित स्वार्थो मे शत खडित
मानव आत्मा का हत प्रागण।
देश खड से भू मानव का
परिचय देने का क्या क्षण यह ?—
मानवता मे देश जाति हो
लीन, नए युग का सत्याग्रह।

(६)

मध्य युगो की नैतिकता के
पूर्वग्रहो से पीडित भू मन,
अति भौतिक तृष्णा प्रमाद से
लक्ष्य भ्रष्ट युग का जग जीवन।

बाह्य नियत्रण से भी समधिक
आज चाहिए आत्म सयमन,
शाति प्रतिष्ठित हो जग मे तब
जब हो बहिरतर सयोजन।

विविध ज्ञान विज्ञान समन्वित
विश्व तत्र हो साधन-विकसित,
भेद मुक्त हो दृष्टि हृदय की,
पूरित हो भू जीवन इच्छित।
प्रीति युक्त जन, शील युक्त मन,
उपचेतन प्रागण रुचि सस्कृत,
मनुज धरा को छोड कही भी
स्वर्ग नही सभव, यह निश्चित।

भू विकास मानव स्तर पर रे
चेतन मनसो पर अवलबित,
बहिरतर उन्नति हो युगपत्
मिटे दैन्य तन मन का गर्हित।
बागडोर जीवन की थामे
भू जन, हो परिवार नियोजित,
ज्योतिवाह बन सके नवागत,
हृष्ट पुष्ट स्मित, शिक्षित, सस्कृत।

अति मानव, सामूहिक मानव
ये युग के अतिवाद भाव स्थित,
सहज राशि गुण सार ग्रहण कर
मानवता विकसित होती नित।
सतत दूर के तीर सुनहले
जन मन को करते आकर्षित,
सूक्ष्म मन सिद्धात बदल कर
स्थूल जगत मे होते मूर्तित।

आज विशेषीकरण समाजी-
करण साथ चल रहे धरा पर,
महत् धैर्य से गढने सबको
मन के मदिर, जीवन के घर।
यह दीक्षा का युग न कला मे—
बृहत् लोक शुभ से हो प्रेरित
भू रचना के स्वर्णिम युग के
कला शिल्प स्वर शब्द हो अमित।

संस्कृति का जब वृत्त संचरण
होता क्रमश पूर्ण प्रस्फुटित,
तब भावो के सूक्ष्म रह स्तर
गुह्य अर्थ निज करते व्यंजित।
ऐसे युग होते दीक्षा युग,
मत्र, तत्र, शैली मे विकसित,
युग जीवन–आदर्श, नीति, विधि,
दर्शन मे हो उठता केन्द्रित।

(७)

युद्ध क्षेत्र अब नही बाह्य जग,
बाहर का रण हुआ समापन,
प्रणत प्रकृति मानव के सम्मुख,
विकसित भू जीवन के साधन।
अतर के मानव से लडना
लोक व्रती को आज प्राण पण,
भीतर की भित्तियाँ चूर्ण हो,–
आलोकित हो जन भू प्रागण।

अत क्षमता सतत अपेक्षित
जन भू जीवन के विकास हित,
बाह्य शक्तिमत्ता का प्रवचन
अणु अस्त्रो में आज पराजित।
भू सघर्षण प्रभु पद पूजन
यदि वह जन मगल हित प्रेरित,
स्थायी शुभ के लिए चाहिए
शील शुद्ध साधन मनुजोचित।

भू पर सस्कृत इद्रिय जीवन
मानव आत्मा को रे अभिमत,
ईश्वर को प्रिय नही विरागी,
सन्यासी जीवन से उपरत।
आत्मा को प्राणो से बिलगा
अधिदर्शन ने की जग की क्षति,
ईश्वर के सँग विचरे मानव
भू पर, अन्य न जीवन परिणति।

मनुज ऐक्य हो खड-धरा पर
ईश्वर के चरणो पर स्थापित,
मातृ लोक सत्ता मे मूर्तित—
बहुविधि जन रुचिया हो आदृत।
मुक्त समातर रेखाओ - से
व्यक्ति समाज, एक बहु विकसित
लोकोदय मे मिलें परस्पर,—
भू जीवन मगल से प्रेरित।

कवि उपदेष्टा नही,—और फिर
मूढ़ नही जन, ढीठ न यह मन,
मनुज प्रेम का लाया स्वर्णिम
मूर्त भागवत पावक पावन।
दृढ श्रद्धा विश्वास,—स्वय ही
जन भू आशा के चिर जीवन,—
जीवन चर्वित ज्ञान नही रे
आत्म मुक्त आनद सचरण।

(९)

पचदशोपरि। सात वर्ष मैं
रहा नाभसी से सबधित,
गीति नाट्य से, स्वरित शब्द से
रहे प्राण आकठ गुजरित।
वह जन शिक्षा माध्यम सक्षम,
कवि रुचि मुक्त, समय क्रम बधन,
विद्युत् ध्वनि लहरो पर वाहित
विश्व यत्र मन, तुझे शत नमन।

पूर्ण नही कर सका अभी तक
मैं प्रणिहित कवि कर्म धरा पर,
मानव उर मे अकित करने
गुह्य सत्य के अलिखित अक्षर।
आखर केवल कूल,—चेतना
जिन्हे डुबाती भर नव प्लावन,—
जन मन तृण पिजर मे रखना
श्री स्वर्णिम भगवत् पावक कण।

(१९)

मध्य वयस का शरद मनोरम
सौम्य गगन अब प्राजल प्रागण,
जीवन स्वप्नो मे शोभा रत
मधु के स्वर्णिम पावक का मन।
जग जीवन के मेघ घुमड कर
प्राणो मे झर अनुभव श्यामल
इद्रधनुष स्मित अतरिक्ष नव
खोल गए मानस मे उज्वल।

व्यक्ति विश्व के सघर्षण से
निखर उठा मन मे नव मानव,
जो विकास पथ मे अब भू पर
अनर मे ले अक्षय वैभव।
जन्म पीढियो मे ले नव-नव
मर्त्य अमर को होना विकसित,
भू जीवन-मन को अतिक्रम कर
स्वर्ग धरा पर रचना जीवित।

(११)

नए हृदय का जन्म हुआ अब
स्वर्ग पद्म शोभित भू मानस,
पार्थिव इद्रिय दल से परिवृत
पावक रज पुट मे भगवत् रस।
जीवन शोभा की सरसी मे
हँसता वह आनद नाल पर,
इच्छाओ के स्वर्णिम मधुकर
उपकृत, तृप्त,—अमृत मधु पीकर।

अक्षय रस का सिन्धु उमडता
लोट रही लहरे लहरो पर,
मदिर शीत लपटो मे पुलकित
अतल हर्ष मे मज्जित अतर।
निखिल निषेधो को अतिक्रम कर
मुक्ति ज्वार पर कर आरोहण,
बहिर्भ्रमण करता अत स्थित
मन, इद्रिय रथ धावित अनुक्षण।

रग स्पर्श रस गध स्वर रचित
रूप हर्म्य मरकत मणि दीपित,
इद्रधनुष वर्णों का ऊपर
नील गोल शत रश्मि प्रज्वलित।
केन्द्र निखिल स्वर्णिम द्वारो का
हृदय कक्ष, अत श्री ज्योतित,
बहिरतर की बहुमुख गतियाँ
होती नित जिससे परिचालित।

(१२)

मन के गाते सोपानो पर
विचरण कर जाने कब भू पर
उतर पडा मै जीवन मोहित
मधु स्वप्नो से उर डाली भर।
सम्मुख खडी विहँसती निश्छल
नव जीवन चेतना प्रौढ बन,
फूलो की सौन्दर्य चद्रिका,
अमित नील दृग, अतल सिन्धु मन।

वह अपनी स्वर्गिक गरिमा मे
प्रकट हुई अब बाहर भीतर,
विश्व एकता के मदिर मे
आत्म एकता की अक्षय वर।
दे स्वर्णिम चैतन्य अग्नि नव
(जो नवनीत हिमालय भास्वर।)
भू जन मे वितरण करने को
मुझे कह गई,—स्मित इगित कर।

कोटि सूर्य जलते रे उज्वल
उस माखन पर्वत के भीतर,
मनुष्यत्व नव, बहिर्दीप्त वह
अत सस्कृत, आत्म मनोहर।
लोक प्रेम वह, मनुज हृदय वह
इद्रिय मन जिसमे सयोजित,
अणु विनाश को अतिक्रम कर वह
निज रचना-प्रियता मे जीवित।

सामाजिकता के कर पुट में
प्राणो का पावक अभिषेकित,
निज मनुजोचित गरिमा मे वह
अतः शोभित, शील सयमित!
काम द्वेष से मुक्त लोक वह
दीप्त प्राण जिसमे नारी नर
आत्म नग्न नक्षत्रो - से हँस
प्रीति ज्योति बरसाते भू पर!

(१३)

आत्मा, मुक्ति, निवृत्ति मुझे सब
रिक्त चित्रपट लगे शुभ्रतर,
स्नेह वर्तिका हीन शिखा-से
शून्य गगन मे टँगे ब्रह्मवर!
मृद् भाजन विज्ञान,—सुरा के
बदले जिसमे भर क्षेमाऽमृत
जड चेतन से करना अद नव
हीरक दल भू जीवन निर्मित!

(१४)

कल्याणी सी, शस्य हरित छवि,
पक्व फलो से भर उर अचल,
सुरधनु बाँधे घन कवरी मे,
वितर हास्य से जीवन मगल,—
बोली वह, बौद्धिक दर्शन से
जीवन दर्शन पट दिग् विस्तृत,
उसके भीतर जड, आत्मा, मन,—
धरा पुष्प वह स्वर्ग बीज स्मित!

वह समग्र, मन सीमित, उसको
खडित कर नित करता चित्रित,
ह्रास विकास मयी गतियो से
सामाजिक दर्शन बस परिचित!
धर्म नीति श्रुति स्मृति सत्यो को
कर्म वचन मन को वह अविदित,
ज्ञान भक्ति, विज्ञान शक्ति से
अति, अमेय, अज्ञेय, अखडित!

रूप मूर्त ये प्रेम चेतना
सृजन हर्ष से निज सचालित
जन्म मरण के गोपन स्वर्णिम
द्वारो मे आती जाती नित।
भावहीन जन उसे खोजते
सुख दुख द्वन्द्वो से कर विरहित,
प्रीति युक्त मन उसको पाते
जीवन द्वन्द्वो मे अर्तहित।

स्वय पूर्ण वह, स्वत प्रस्फुटित,
मानव मूल्यो से अति विकसित,
पाप पुण्य गति मे भगवत् गति,
तम प्रकाश उर मे आत्म-स्थित।
मन से पर जीवन लक्ष्मी को
चिर श्रद्धा आस्था कर अर्पित
शात सौम्य,—उत्तर वेला मे
कर्म निरत मन भू जीवन हित।

(१५)

दिशा काल के हरित हर्म्य मे अनुक्षण
सुनता हूँ पद चाप तुम्हारी नि स्वर,
तुमसे आ, तुममे ही लय होते नित
सृजन हर्ष से प्रेरित विश्व चराचर।
आज रुपहले अतर हिम शिखरो पर
सुनता मै स्वर्णिम रथ चक्रो का स्वर,
उतर रहे भावी के भुवन अगोचर
सप्त अश्व रवि कवि पखो पर भास्वर।

पंक्ति-सूची